आलोचना

रामचन्द्रिका

लेखक
पुरुषोत्तमदास भार्गव, एम० ए०, साहित्यरत्न

किताब महल : इलाहाबाद

आमुख

आचार्य केशवद." की 'रामचन्द्रिका' की पृथक रूप से कोई आलोचना पुस्तक न होने के कारण हिन्दी के विद्यार्थियों को असुविधा होती थी। बी० ए० और साहित्यरत्न के विद्यार्थियों के अध्ययन-कार्य में मेरी यह धारणा और भी दृढ़ हुई। विद्यार्थियों के नित्यप्रति के आग्रह ने मुझसे यह कार्य करा ही लिया।

कवि की रचनाओं पर विचार करते समय उसके आसपास की परिस्थितियों की अवहेलना नहीं की जा सकती। आलोच्य ग्रंथ की समीक्षा जितनी सहिष्णुता और सहानुभूति के साथ की जायगी, आलोचक उतना ही कवि की आत्मा को परख सकेगा। प्रस्तुत पुस्तक में मैंने इसी सिद्धान्त का आश्रय लिया है। केशवदास की काव्यात्मा को समझने में कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय विद्वान समालोचक स्वयं करेंगे।

मोहन निवास
लश्कर (ग्वालियर
१-१-१९४८)

पुरुषोत्तमदास भार्गव

विषय-सूची

१

रामचन्द्रिका की पृष्ठभूमि

कविता हृदय की रागात्मक मनोवृत्तियों का शेप सृष्टि के साथ तादात्म्य स्थापित करती है। हृदय को उद्वेलित करने वाले विचारों में जब अत्यन्त तीव्रता आ जाती है, उस समय कवि उन्हें अक्षरों का आकार प्रदान कर देता है। हृदय की सुकुमार मनोवृत्ति की कलात्मक अभिव्यक्ति में ही काव्यत्व है। हिन्दी भाषा में काव्य-प्रणयन प्रारंभ होने के समय से ही भारत का राजनीतिक क्षेत्र संघर्ष, स्पर्द्धा और वैमनस्य के कंटकों से आच्छादित हो गया। युद्धस्थल को प्रस्थान करने वाले राजपूत वीरों के हृदय में उत्साह और वीरता की भावना को प्रखर बनाने के लिये कवियों की वीर रसोद्रेक पूर्ण वाणी से आकाश मंडल गूँज उठा। वीरों के साथ साथ वीर रस पूर्ण कविता करने वाल कवियों को भी राजाश्रय प्राप्त होने लगा। इस युग में राजस्थानी भाषा में वीर रस की भाव एवं ओज पूर्ण कविता हुई; किन्तु भावावेश में कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की श्लाघा में अतिशयोक्ति को प्रश्रय देते हुए ऐसी उक्तियाँ भी प्रकट कीं, जिससे उन काव्य-ग्रंथों का ऐतिहासिक महत्व पूर्णतः नष्ट हो गया है। परिस्थिति-जन्य आवश्यकताओं के अनुरूप कविता करना ही उन कवियों को अभिप्रेत था; अपने आश्रयदाताओं के ऐश्वर्य और शौर्य की प्रशंसा प्रकट करने के हेतु ही उन्होंने कविता को माध्यम बनाया था।

मुसलमान आक्रान्ताओं के कारण भारतवर्ष की राजनीतिक आर्थिक और धार्मिक परिस्थिति और भी विषम हो गई। छोटे छो राजपूत राज्य क्रमशः यवन आक्रमणकारियों द्वारा विजित कि जाने लगे। उस काल में हिन्दुओं की राजनैतिक स्वतंत्रता का केवल अपहरण नहीं हुआ, अपितु उनका दैनिक जीवन दयनीय हो गया। विधर्मियों ने हिन्दू जाति को नष्ट क के लिये हिन्दू राष्ट्र के साथ हिन्दू संस्कृति को भी नष्ट-भ्र करना प्रारंभ किया। हिन्दू रमणी रत्नों का अपहरण नित्य का घटना बन गई। देव मन्दिर नष्ट किये जाने लगे। हिन्दु में संगठन की न्यूनता थी इसलिए बहुसंख्यक होते हुए भी वे प दलित किए गये। जो राजपूत राजा शेप रहे, उन्होंने मुगलों अधीनता स्वीकार कर ली। उनमें मुगलों से लड़ने की न तो शक्ति ही थी और न साहस।

इस निराशा और निराश्रितावस्था में हिन्दुओं का ध्या ईश्वर की ओर गया। वह सर्व-शक्तिमान परमेश्वर ही दयनी वस्था में उन का एक मात्र अवलम्ब था। इसी अनुकूल वातावर में मध्यमिककाल में आचार्यों ने भगवद्भक्ति की पतित-पावन निर्मल स्रोतस्विनी प्रवाहित की, जिनमें निमज्जन करके भक्त ह उन्मत्त होकर मयूर की भाँति नाचने लगे।

भक्ति की इस सरिता ने साहित्य के क्षेत्र को भी आप्ला किया। किसी ने ज्ञानमार्गी सिद्धान्तों को अपनी वाणी का वि बनाया तो किसी ने मानवीय प्रेम के चरमोत्कर्ष में ईश्वरी का दर्शन पाया। इस निर्गुणवाद की प्रेममयीशाखा ने समाज के व्यक्तियों को अधिक प्रभावित किया। मानवीयता ने और राज्य की सीमा का अतिक्रमण करके यह प्रमाणित कर दि कि दया, दाक्षिण्य और प्रेम किसी एक धर्म तक ही सी नहीं है; बल्कि इसका एक ही सूत्र समस्त प्राणी-मात्र के हृदय

व्याप्त है। इस भावना का प्रसार मुसलमान कवियों ने हिन्दी में कविता करके ही नहीं, हिन्दुओं के घरों में चिरकाल से प्रचलित गाथाओं को कविता का विषय बना कर भी किया।

निर्गुणवाद की धारा में साधारण जनता को वह स्थूल आधार उपलब्ध न हुआ, जिससे वे उसकी भावना को हृदयंगम करते। वह निर्विकार और अनादि ब्रह्म उनकी जिज्ञासा की तृप्ति न कर सका; लेकिन जब रामानन्द और महाप्रभुवल्लभाचार्य ने उत्तरी भारतवर्ष में क्रमशः राम और कृष्ण की सगुण भक्ति का प्रचार किया तो उपासना का स्थूल आधार प्राप्त हो जाने के कारण जनता इस विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुई।

व्रजभाषा काव्य की आठ प्रसिद्ध वीणाओं ने, जिसमें सूर का स्वर सब से सुरीला और ऊँचा था, कृष्ण के माधुर्य-मय रूप, मुरली के सुन्दर स्वर और रास के सौन्दर्य एवं सरस वातावरण का ऐसा चित्रोपम और मनोमोहक दृश्य अंकित किया कि संसार के संकटों को कुछ क्षण के लिये विस्मृत करके जनता उस रूप-माधुरी में आसक्त हो गई। कृष्ण के जीवन में माधुर्य था। यमुना तट, वंशीवट और गो-चारण की घटनाओं में प्रकृति के रमणीय स्थलों का इतना समावेश था कि उस रम्य वातावरण में कृष्ण के बाल एवं यौवन काल के सौन्दर्य की सफल अभिव्यंजना हुई है।

राम की सगुण भक्ति को अपनी कविता का माध्यम बना गोस्वामी तुलसीदास ने धर्म के मार्ग को ही प्रशस्त नहीं किया; बल्कि शक्ति, शील और सौन्दर्य समन्वित राम का ऐसा आदर्शपूर्ण चरित्र अंकित किया कि जिसके चरण-चिह्नों पर चलकर संसारी जीव सफलता के साथ जीवन व्यतीत करते हुए आध्यात्मिक उन्नति भी कर सकते हैं। जीवन की विविध समस्याओं का राम के जीवन में समावेश करके तुलसीदास

हिन्दी में इस युग के प्रवर्तक आचार्य केशवदास जी माने जाते हैं। यद्यपि सम्वत् १५६८ में कृपाराम रस-निरूपण कर चुके थे; किन्तु उनके द्वारा जो परिपाटी चलाई गई उसका अनुकरण आगे न हुआ। केशवदास ने 'रीति' को काव्य में जो महत्व प्रदान किया उसे आगे के कवियों ने भी अपनाया। केशवदास ने भामह और उद्भट द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को स्वीकार किया लेकिन आगे के रीतिवादी कवियों ने विश्वनाथ और दण्डी द्वारा निरूपित सिद्धान्तों का अनुसरण किया। उन्होंने केशवदास द्वारा समर्थित सिद्धान्तों का अनुकरण नहीं किया परन्तु आचार्य केशवदास की कविता में इतना सौकर्य था उनके व्यक्तित्व में इतनी महानता थी कि उनको जो मान प्राप्त हुआ वह हिन्दी के किसी भी अन्य कवि को प्राप्त नहीं हुआ। 'कवि प्रिया' और 'रसिक प्रिया' पढ़-पढ़ कर कितने ही व्यक्ति उस समय कवि बन गये। कवि-कर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिये उक्त दोनों पुस्तकों का अध्ययन माध्यमिक काल में आवश्यक समझा जाता था।

राजकीय वातावरण में वैभव, विलास और आडम्बर का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। आचार्य केशवदास कवि ही नहीं राजा इन्द्रजीतसिंह के गुरु और मित्र भी थे :—

'गुरु कर मान्यो इन्द्रजित।
तन मन कृपा विचारि॥

गाँव दिये इक बीस तक।
ताके पाँव पखारि'॥

इन ऐश्वर्य-सम्पन्न परिस्थितियों का प्रभाव केशवदास की कविता पर भी पड़ना स्वाभाविक था। सुख और वैभव की गोद में जिसका लालन-पालन हुआ हो और जो स्वयं भी राजसुखों

का अनुभव करता हो, वह जीवन की करुण एवं दुःखमय परिस्थितियों से उदासीन ही रहेगा। राजसभा में जिन आडम्बर पूर्ण परिस्थितियों की प्रचुरता होती है—वाक्यों को बना सजा कर कहना, व्यवहार और कार्य में एक विशेषता रखना—उनका प्रत्यक्ष प्रभाव केशवदास की कविता पर पड़ा। शृंगारमयी सुन्दर कृतियों को प्रतिपल देख-देखकर कवि के हृदय में शृंगारमयी भावनाओं का ही प्रस्फुटन होगा। यही कारण है कि रीति काल के इस प्रथम आचार्य की कृतियों में शृंगारिकता एवं वैभव सम्पन्न अवस्था से उद्भूत होने वाली दर्प और ओजपूर्ण वाक्यावलियों का स्वच्छन्द प्रयोग हुआ है।

रीतिकाल में कविता करना ही कवियों को अभिप्रेत न था, वे अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन भी करना चाहते थे। यही ही नहीं वे कविता करने के लक्षणों की रचना करके आचार्यत्व के गौरव को भी प्राप्त करना चाहते थे। इस इच्छा की पूर्ति के लिये संस्कृत के ग्रन्थों में बतलाये गये लक्षणों का उन्होंने दोहों में अनुवाद किया और उन लक्षणों के उदाहरण में सवैया, कवित्त, घनाक्षरियों की रचना की। रीतिकाल में उक्त छन्दों का ही विशेष कर प्रयोग हुआ। केवल केशवदास ने ही रामचन्द्रिका में इतने प्रकार के छन्दों का समावेश किया जिनका प्रयोग हिन्दी के किसी अन्य कवि ने नहीं किया है।

केशवदास कवि ही नहीं आचार्य भी थे। उन्होंने एक नवीन युग का निर्माण किया, जिसमें काव्य के अलंकार पक्ष की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। उनके सिद्धान्तों ने उनके समय में प्रचलित काव्य प्रणालियों पर विजय प्राप्त की।

भक्ति काल में आराध्य देव की उपासना के हेतु ही काव्य प्रणयन होता था। भक्त कवियों की भक्ति-भावना वाणी का आवरण पहनकर कविता के रूप में प्रकट हुई। केशवदास

भी हिन्दी के प्रसिद्ध भक्त कवियों के समकालीन थे। जिस भक्ति की निर्मल धारा में सूर और तुलसी जैसे कवियों ने हिन्दी भाषियों को निमज्जित किया, उसी भावना के भावमय प्रकटीकरण के हेतु केशवदास ने भी राम सम्बन्धी काव्य की रचना की। एक ओर राजाश्रयता के परिणामभूत हिन्दी में शृंगारिक कविताओं का युग प्रारंभ हो चुका था तो दूसरी ओर भक्ति की वह अन्तःसलिला अब भी कहीं कहीं दिखलाई दे जाती थी। यद्यपि वह युग शृंगार और अलंकार का था पर भक्ति भावना का प्रभाव भी विद्यमान था। रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य का विषय राधा और कृष्ण को ही बनाया किन्तु उसमें पारलौकिक भावना नहीं, सांसारिक भावना—विलासिता—की ही प्रधानता थी। इस साहित्यिक वातावरण में जब एक ओर भक्ति युग समाप्त होने लगा तो दूसरी ओर 'कामिनी और कांचन' को वरेण्य माना जाने लगा। उस भक्ति और शृंगार के सन्धि युग में आचार्य केशव का आविर्भाव हिन्दी कविता के क्षेत्र में हुआ। रीतिकालीन भावना के प्रवर्त्तक केशवदास ने लक्षण ग्रन्थ 'कवि प्रिया' और 'रसिक प्रिया' की रचना की तथा आचार्यत्व प्राप्त किया और रामभक्ति की भावना से अनुप्राणित होकर 'रामचन्द्रिका' की रचना की।

'रामचन्द्रिका' की रचना के कारण ग्रंथारंभ में स्वयं कवि ने दिये हैं। केशवदास की जीवनी पर प्रकाश डालने वाले जो बहिर्साक्ष्य हैं, वे भ्रमोत्पादक हैं। मूल गुसाईं-चरित में बाबा बेनीमाधव दास ने केशव के सम्बन्ध में यह लिखा है कि एक अवसर पर केशव तुलसीदास से मिलने के लिये चित्रकूट गये। तुलसीदास के शिष्यों ने जब केशव के आने का समाचार सुनाया तो तुलसीदास ने यह कहा कि 'प्राकृत कवि केशवदास को आने दो।' केशव ने जब यह वाक्य सुना तो उन्होंने अपना

अपमान समझा। उन्होंने समझा कि तुलसीदास को रामचरित-मानस की रचना का गर्व है और इसीलिए उन्होंने एक रात्रि के भीतर ही रामचन्द्रिका की रचना की और दूसरे दिन वे तुलसीदास से मिले :—

कवि केशवदास बड़े रसिया। घनश्याम सुकुल नभ के बसिया॥
कवि जानि कै दरसन हेतु गये। रहि बाहिर सूचन भेज दिये॥
सुनिकै जु गुसाईं कहै इतनो। कवि प्राकृत केशव आवन दो॥
फिरिगे झट केशव सो सुनिकै। निज तुच्छता आपुइ ते गुनि कै॥
जब सेवक टेरेउ गे कहिकै। हौं भेटिहौं कालिह विनय गहिकै॥
रचि राम सु-चन्द्रिका रातिहि में। जुरै केसव जू असि घाटहि में॥
सतसंग जमी रस रंग मची। दोउ प्राकृत दिव्य विभूति पची॥
मिटि केसव को संकोच गयौ। उर भीतर प्रीति की रीति रयौ॥

(मूल गुसाइ चरित)

उक्त कथन में तथ्यांश कुछ भी प्रतीत नहीं होता। महाकवियों के साथ किसी न किसी माहात्म्य की उद्भावना कर ली जाती है। इसीलिए यह प्रकट किया गया कि केशव ने केवल एक रात्रि के भीतर ही 'रामचन्द्रिका' की रचना कर दी। तुलसीदास जी के व्यंग को सुनकर रामचन्द्रिका की रचना नहीं हुई। केशव ने रामचन्द्रिका के प्रारंभ में स्वयं लिखा है :—

बालमीकि मुनि स्वप्न महँ दीन्हों दर्शन चारु।
केशव तिनसों यों कह्यौ क्यों पाऊँ सुख सारु॥

केशवदास की इस प्रार्थना पर महर्षि वाल्मीकि ने यह उत्तर दिया कि राम नाम से ही सुख की प्राप्ति होगी।

राम, नाम। सत्य, धाम॥
और, नाम। कौन काम॥

केशव ने पुनः मुनि से यह प्रश्न किया कि दुःख कैसे टरेगा। तो मुनि ने कहा कि हरि जू दुःख का हरण करेंगे।

दुःख क्यों टरि है ?
हरि जू हरि हैं।

वाल्मीकि मुनि ने फिर उस अवर्णनीय हरि के माहात्म्य को केशव को सुनाया और यह भी कहा कि जब तक तू राम का गुण गान न करेगा तब तक वैकुंठ की प्राप्ति न होगी :—

न राम देव गाइहै।
न देव लोक पाइहै॥

जब यह उपदेश देकर महर्षि वाल्मीकि अन्तर्ध्यान हो गये, तब उसी समय से केशवदास ने रामचन्द्र को अपना इष्टदेव बनाया :—

मुनिपति यह उपदेश दे जबहीं भये अदृष्ट।
केशवदास तहीं कर्‌यो, रामचन्द्र जू इष्ट॥

कवि द्वारा प्रस्तुत किये गये अन्तर्साक्ष्य से यह निश्चय रूप से पुष्ट हो जाता है कि बाबा बेनीमाधवदास ने 'रामचन्द्रिका' की रचना का जो कारण बतलाया है, वह भ्रमात्मक है। वाल्मीकि मुनि से उपदेश प्राप्त करने के उपरान्त कवि 'रामचन्द्रिका' की रचना में प्रवृत्त हुआ। वाल्मीकि मुनि के इस उपदेश का यह आशय भी लिया जा सकता है कि केशवदास ने रामचरित्र के वर्णन में वाल्मीकि रामायण को ही आधार माना है।

केशवदास ने रामचन्द्रिका की रचना का प्रारंभ सम्वत् १६५८ कार्तिक मास शुक्ल पक्ष बुधवार को किया। रामचन्द्रिका के आरंभ में उन्होंने लिखा है :—

सोरह से अट्ठावने, कार्तिक सुदि बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, तब लीन्हो अवतार॥

रामचन्द्रिका की कथावस्तु

पहिला प्रकाश

दोहा :—यहि पहिले परकाश में, मंगल चरण विशेष ।
ग्रन्थारंभ रु आदि की, कथा लहहिं बुध लेख ॥

ग्रन्थारंभ में गणेश वन्दना, सरस्वती वन्दना के उपरान्त कवि ने श्रीराम वन्दना की है। वंश परिचय एवं ग्रंथ रचना काल देने के उपरान्त ग्रन्थरचना के कारण उल्लिखित हैं; इस प्रकार प्रस्तावना समाप्त करके कथारंभ किया गया है। सूर्यवंश के शिरोमणि राजा दशरथ के चार पुत्र हुए—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। सरयू नदी के किनारे, अवधपुरी है वहाँ विश्वामित्र का आगमन हुआ। सरयू नदी का वर्णन, राजा दशरथ के हाथियों का वर्णन, वाटिका वर्णन, अवधपुरी का वर्णन करते हुए विश्वामित्र जी राजा दशरथ के दरबार में पहुँचे।

दूसरा प्रकाश

दोहा :—या द्वितीय परकाश में, मुनि आगमन प्रकास ।
राजा सों रचना वचन, राघव चलन विलास ॥

राजसभा में विश्वामित्र के प्रवेश करते ही चारण ने प्रशस्ति-वाचन किया। राजा दशरथ के वैभव को देखकर मुनि विश्वामित्र चमत्कृत हुए। राजा दशरथ ने अभ्यर्थना करके उनके आगमन का कारण पूछा। विश्वामित्र ने यज्ञ-रक्षा के हेतु राजकुमारों की याचना की। राजा दशरथ ने बालकों की अल्पवयस्कता को प्रकट करते हुए यज्ञरक्षण के हेतु ससैन्य स्वयं चलने की इच्छा प्रकट की, इस पर विश्वामित्र को क्रोधित देखकर वशिष्ठ जी ने

रामचन्द्र को भेजने का आदेश दिया। राजा दशरथ राम के विछोह से अत्यन्त द्रवीभूत हुए। विश्वामित्र मुनि राम और लक्ष्मण को लेकर यज्ञस्थल की ओर चले गये।

तीसरा प्रकाश

दोहा:—कथा तृतीय प्रकाश में, वन-वर्णन शुभ जानि
रक्षण यज्ञ मुनीश को, श्रवण स्वयंवर मानि।

वन वर्णन, और मुनि आश्रम के विशद वर्णन के उपरान्त राम और लक्ष्मण द्वारा यज्ञ-रक्षण कार्य का वर्णन है। जब ऋषि गण यज्ञ कार्य में लीन हो गये उस समय ताड़का आकर यज्ञ का विध्वंस करने लगी। राम ने बाण तो सन्नद्ध कर लिया, लेकिन स्त्री समझकर वे उसे मारने से विरत रहे। तब ऋषि ने कहा कि यह बड़ी क्रूर कर्मा है इसे अवश्य मारा जावे। तदुपरान्त राम ने ताड़िका को मार डाला। यज्ञ परिपूर्ण हो जाने पर धनुप यज्ञ की वार्ता समारम्भ हुई। धनुप यज्ञ-स्थल के वर्णन में सुमति और विमति नाम के दो वन्दीजन धनुष-यज्ञ में सम्मिलित हुए राजाओं का परिचय देते हैं। इस के पश्चात जब राजागण धनुप को न उठा सके तब राजा जनक को बड़ा क्षोभ होता है।

चौथा प्रकाश

दोहा :—कथा चतुर्थ प्रकाश में, बाणासुर संवाद।
रावण सो, अरु धनुष सों दसमुख बाण विषाद ॥

धनुप यज्ञ-स्थल में जब रावण और बाण उपस्थित हुए तो उस समय सभी नर-नारि अत्यन्त भयभीत हुए। धनुप को तोड़ने के सम्बन्ध में उन दोनों में वाद-विवाद होने लगा। बाणासुर यह समझकर यज्ञस्थल छोड़कर चला गया कि 'यह धनुप मेरे गुरु का (शिव) है और सीता मेरी माता हैं।'

रावण ने भी अपनी प्रतिज्ञानुसार जब एक राक्षस को आर्तस्वर में क्रन्दन करते हुए सुना, तब वह भी यज्ञस्थल छोड़कर चला गया।

पाँचवाँ प्रकाश

दोहा :—यह प्रकाश पंचम कथा, राम गवन मिथिलाहि।
उद्धारण गौतम घरणि, स्तुति अरुणोदय आहि॥
मिथिलापति के वचन अरु, धनु भंजन उर धार।
जैमाला दुन्दुभि अमर, वर्षन फूल अपार॥

जब धनुष यज्ञ में उपस्थित राजा धनुर्भंग न कर सके; तो सब व्यक्तियों को बहुत सन्देह होने लगा, उस समय एक त्रिकालदर्शी ऋषि पत्नी एक ऐसे चित्र को लेकर आई जिसमें सीता जी के साथ एक सुन्दर राजकुमार का चित्र भी अंकित था। धनुष यज्ञ की वार्ता को सुनकर विश्वामित्र जी राम और लक्ष्मण को लेकर मिथिला को चले। मार्ग में रामचन्द्र जी ने गौतम की स्त्री अहिल्या का उद्धार किया। जिस समय रामचन्द्र जी ने नगर में प्रवेश किया उस समय प्रातःकालीन सूर्य आकाश में उदित हो रहा था। उस नवोदित बालरवि की सुन्दरता पर मुग्ध होकर रामचन्द्र जी उसकी शोभा का वर्णन करने लगे। राम के आगमन का समाचार पाकर राजा जनक शतानन्द ब्राह्मण को लेकर उनकी अगवानी के हेतु आ गये। विश्वामित्र ने राजा जनक को राम और लक्ष्मण का परिचय दिया। विश्वामित्र की आज्ञा पाकर रामचन्द्र ने धनुष को तोड़ दिया और सीता जी ने वरमाला रामचन्द्र जी को पहिना दी।

छठवाँ प्रकाश

दोहा :—छठे प्रकाश कथा रुचिर, दशरथ आगम जान।
लगनोत्सव श्रीराम को, ब्याह विधान बखान॥

शतानन्द विप्र ने राजा जनक को यह परामर्श दिया कि राजा दशरथ के चारों पुत्रों के साथ अपनी पुत्रियों का विवाह करो। तब राजा जनक ने लग्न लिखाकर राजा दशरथ के पास भेजी। राजा दशरथ बरात सजाकर आये। द्वार-पूजन कराके राजा जनक ने सब बरातियों को पहिरावन दिये। परिक्रमा के अवसर पर सब बराती सज्जित होकर मंडप के नीचे बैठे। वशिष्ठ और शतानन्द ऋषि ने मिलकर शाखोच्चार पढ़ा। राजा दशरथ से एक दिन और ठहरने के लिये प्रार्थना करने के हेतु जनक शतानन्द ब्राह्मण को आगे लेकर जनवासे पहुँचे। पारस्परिक शिष्टाचार वर्णन करने के उपरान्त राजा जनक ने अपना मन्तव्य प्रकट किया। जेंवनार के अवसर पर स्त्रियों ने रामचन्द्र को गालियाँ गाईं। दूसरे दिन प्रातःकाल पलकाचार हुआ। पलके पर बैठे हुए राम और सीता अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हुए। राजा जनक ने भिन्न भिन्न प्रकार का दायजा दिया। अत्यन्त मूल्यवान दायजा प्राप्त करके राजा दशरथ ने भी ब्रह्मर्षि, राजाओं एवं याचकों को अमित वस्तुओं का दान दिया।

सातवाँ प्रकाश

दोहा :—या प्रकाश सप्तम कथा, परशुराम सम्वाद।
रघुवर सों अरु रोष तेहि, भंजन मान विषाद॥

विश्वामित्र जी चले गये और जनक भी बरात को पहुँचा कर लौट गये, उस समय अयोध्या की ओर जाती हुई सेना के अग्रिम भाग से परशुराम जी मिले। परशुराम जी के क्रोधी स्वरूप को देखकर दथरथ की सेना में भगदड़ मच गई। योद्धा गण प्राण बचाकर भागने लगे। वामदेव ऋषि से परशुराम जी ने यह पूछा कि शिवजी के धनुष को किस ने तोड़ा है? कामदेव ने परशुराम जी के उत्तर में यह कहा कि श्रीराम ने धनुष

को तोड़ा है। तब परशुराम जी को अत्यन्त क्रोध हुआ। अन्त में स्वयं महादेव जी ने आकर राम और परशुराम में बीच बचाव किया। तदुपरान्त रामचन्द्र ने बरात सहित अयोध्या की ओर प्रस्थान किया।

आठवाँ प्रकाश

दोहा :—या प्रकाश अष्टम कथा, अवध प्रवेश बखानि।
सीता बरन्यो दशरथहिं, और बन्धुजन मानि॥

अयोध्या नगरी के सब स्थान अति शोभा से रंजित हैं। जहाँ तहाँ हर्ष-सूचक चिह्न—तोरण, वन्दनवार, कदलीखंभ आदि—बनाये गये हैं। नगर के मकानों पर बहुत ऊँची पताकाएँ फहरा रही हैं। प्रत्येक फाटक पर आठ आठ रक्षक हैं। गलियाँ अत्यन्त सुन्दर, स्वच्छ एवं धूल रहित हैं। प्रत्येक गृह में घण्टों का शब्द हो रहा है; बीच बीच में शंख और झालर भी बज रहे हैं। नगर की स्त्रियाँ बरात को देखने के लिये मकानों की उच्चतम अट्टालिकाओं पर चढ़ गई हैं। अटारी पर चढ़ी हुई स्त्रियाँ कोई तो हाथ में दर्पण लिये हुए हैं। कोई स्त्री नीलाम्बर धारण किये हुए मन का हरण कर रही है। कोई स्त्री अत्यन्त सुन्दर फूलों की वर्षा कर रही है। कोई फल, फूल और लावा डाल रही है। रामचन्द्र जी भीड़ युक्त उस जन समूह में हाथी पर सवार होकर निकले। रामचन्द्र जी भरत का हाथ पकड़े हुए राजदरबार में गये फिर वधू सहित राजकुमार कौशल्या के भवन गये। इस समय आमोद प्रमोद-रत जनता वाद्य बजा रही थी और दान आदि दिये जा रहे थे।

नवाँ प्रकाश

(अयोध्या कांड)

दोहा :—यह प्रकाश नवयें कथा राम गवन बन जानि।
जनकनंदिनी को सुकृत, बरनन रूप बखानि॥

राजा दशरथ ने राम और लक्ष्मण को तो घर रख लिया और भरत एवं शत्रुघ्न को ननिहाल भेज दिया। उन्होंने एक दिन अत्यन्त प्रसन्न होकर वशिष्ठ जी से यह परामर्श किया कि वे किस दिन रामचन्द्र को राजपद समर्पित कर दें। यही बात भरत की माता कैकयी ने सुन ली और उसके हृदय में यह विचार उठा कि राम को बनवास दिलाया जाय। इसलिए उसने राजा दशरथ से दो वरदान—(१) भरत को राजपद दिया जाय (२) राम को १४ वर्ष का वनवास—माँग लिये। राजा दशरथ को कैकयी के ये वचन वज्र के समान लगे। राम वनवास के समाचार ने जनता में हलचल मचा दी। सब लोग दुःखी हुए। रामचन्द्र जी अपनी माता कौशल्या के भवन में गये और यह सन्देशा सुनाया कि वह वन जा रहे हैं। कौशल्या यह सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुई। उन्होंने राम के साथ वन जाने का विचार प्रकट किया, तब रामचन्द्र जी ने माता को पातिव्रत्यधर्म का उपदेश दिया। राम तब सीता जी के निवास स्थान पर गये और उसे अयोध्या में ही रहने का आदेश दिया किन्तु सीता ने वन जाने का आग्रह किया। लक्ष्मण को भी राम ने समझाया पर वे भी न माने; अन्त में राम, सीता और लक्ष्मण को लेकर वन को चले गये। राम वन-गमन का समाचार सुनकर राजा दशरथ ने अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये। पंथ में जाते हुए राम, लक्ष्मण और सीता को देखकर ग्राम-निवासी भिन्न भिन्न प्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। इस प्रकार मार्ग में ग्रामवासियों को दर्शन देते हुए रामचन्द्र जी चित्रकूट पर्वत पहुँच जाते हैं।

दशवाँ प्रकाश

दोहा :—यहि प्रकाश दशमें कथा, आवन भरत स्वधाम।
राज भरन अरु तासु को, बसिबो नन्दीग्राम॥

भरत ने आकर अयोध्या को श्री-विहीन देखा। माता कैकयी

के महल में जाकर पिता और भाई का समाचार पूछा। भाई के वनगमन और पिता की मृत्यु के समाचार को सुनकर वे अत्यन्त दु:खी हुए तत्पश्चात वे कौशिल्या के यहाँ पहुँचे और इस निंद्य-कार्य में अपना सहयोग न होने का शपथपूर्वक प्रमाण देने लगे। कौशिल्या ने कहा कि भरत तुम भ्रातृ प्रेमी हो, तुम्हें किसी प्रकार का खटका न होना चाहिये। तदुपरान्त भरत ने सरयू के किनारे दशरथ की अन्त्येष्टि की। वल्कल वस्त्र पहिनकर भरत राम से मिलने के लिये चले। भरत की तुमुल वाहिनी के कारण जंगल के पशु और पत्ती इधर उधर भागने लगे। लक्ष्मण ने यह समझा कि भरत राम पर आक्रमण करना चाहते हैं। इसपर वे भरत को मार डालने के लिये उद्यत हो गये। भरत ने अपनी सेना को आश्रम से दूर ही छोड़ दिया और वे राम के चरणों में जा गिरे। माताएँ भी विह्वला होकर राम से मिलीं। राम को जब पितृ-मरण का समाचार मिला तो उन्होंने गंगा तट पर जाकर शुद्धि-क्रिया की। भरत ने राम से अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना की। भरत जब भागीरथी के किनारे गये, तब भागीरथी ने यह उपदेश दिया कि हे भरत तुम्हें हठ न करना चाहिये और राम तुमसे जो कहें उसका अनुगमन करो। तब भरत जी राम की पादुका लेकर तथा राम और सीता की प्रदक्षिणा करके अयोध्या वापिस लौट आये।

ग्यारहवाँ प्रकाश

दोहा :—एकादशें प्रकाश में, पंचवटी को वास।
सूर्पणखा के रूप को, रघुपति करिहैं नास॥

रामचन्द्र जी चित्रकूट का निवास छोड़ और आगे चले तथा अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुँचे। राम, लक्ष्मण और सीता को अपने आश्रम में देखकर अत्रि ऋषि ने अपने जीवन को

कृत-कृत्य जाना। सीता जी अत्रि की पत्नी अनुसूया के पास गयीं और उनका चरण-स्पर्श किया। अनुसूया ने सीता को भाँति भाँति के उपदेश दिये। अत्रि के आश्रम से राम सीता और लक्ष्मण सहित अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचे। अगस्त्य मुनि ने राम का श्रद्धा सहित सत्कार किया। रामचन्द्र ने अगस्त्य मुनि से उस स्थान के सम्बन्ध में पूछा, जहाँ वे पर्ण-कुटी बनाकर निवास करने लगे। अगस्त्य के कथनानुसार रामचन्द्र जी ने पंचवटी के पास पर्णशाला बनाई। दंडक वन और गोदावरी नदी की प्राकृतिक सुषमा से रामचन्द्र अत्यन्त प्रभावित हुए। सीता जी वीणा बजाकर रामचन्द्र के हृदय को प्रफुल्लित करने लगीं। जब राम और सीता इस प्रकार आमोद प्रमोद मय जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय राम के शरीर की सहज सुगन्धि से अनुप्राणित होकर शूर्पणखा राम के पास आई और अपनी संभोगेच्छा को प्रकट किया। राम ने कहा कि मेरे तो पत्नी है, तुम लक्ष्मण के पास जाओ। लक्ष्मण ने यह कहा कि दासी बनने से क्या लाभ? तुम्हें तो राम से ही अपनी इच्छा—करना चाहिये। अब शूर्पणखा सीताको खाने के लिये दौड़ी, राम का संकेत पाकर लक्ष्मण ने तुरंत शूर्पणखा के नाक और कान काट डाले।

बारहवाँ प्रकाश

दोहा :—या द्वादशं प्रकाश खर, दूषण त्रिशिरा नास।
सीताहरण विलाप सु-ग्रीव मिलन हरि त्रास॥

शूर्पणखा अपने भाई खर दूषण के पास गई और उन्हें रणहेतु सजाकर श्रीराम के पास लिवा लाई। रामचन्द्र ने उन सबों को एक बाण ही में मार डाला। राम ने खरदूषण की सेना के चौदह-हजार राक्षसों को भी सहज ही में मार गिराया।

तदुपरान्त शूर्पणखा रावण के पास गई और उसके समक्ष उस ने सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा की। शूर्पणखा की दुर्गति देख कर रावण के हृदय में क्रोध हुआ और वह मारीच के पास पहुँचा और उससे सहायता करने को कहा। मारीच ने यह कहा कि राम को साधारण मनुष्य मत समझो, वे तो चौदह भुवनों में व्याप्त हैं। रावण को यह सुनकर अत्यन्त क्रोध हुआ। तब भयभीत होकर मारीच उसके साथ चल पड़ा।

रामचन्द्र जी नें सीता जी से यह कहा कि हे सीते! मैं पृथ्वी के भार का हरण करना चाहता हूँ अतएव तुम अपने शरीर को तो अग्नि में रखो और छाया शरीर धारण करके मृग की अभिलाषा करो। उसी समय एक स्वर्ण का हिरण आया, रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण को सीता के पास रखकर स्वयं पर्वतों को लांघते हुए हरिण मारने के लिये चले गये। जब राम ने उस हरिण पर शराघात किया तब वह मृग 'हा लक्ष्मण' कह कर गिरा। सीता जी ने लक्ष्मण से जाने को कहा; तब लक्ष्मण धनुष की नोंक से एक रेखा द्वार पर खींचकर चले गये। अब उपयुक्त अवसर जानकर भिक्षुक के छद्म-वेष में रावण आया। सीता ने उसे भिक्षुक समझ कर भिक्षा देने के हेतु बुलाया और वह छद्म-वेषी रावण सीता का हरण करके ले गया। सीता आकाश मार्ग में विलाप कर रही थीं। जटायु ने उनके रोने को सुनकर उन्हें छुड़ाना चाहा; परन्तु रावण ने जटायु को पंख-हीन कर दिया। रावण सीता को लंका ले गया। मार्ग में सोता जी को तीन वानर बैठे हुए दिखायी पड़े उन के पास उन्होंने अपने उत्तरीय और मणि-नूपुर फेंक दिये। रामचन्द्र जी सीता के वियोग में अत्यन्त दुःखित होकर उन्हें इधर उधर ढूँढ़ने लगे। राम ने गृद्धराज जटायु को पड़ा हुआ देखा। उसने सब समाचार राम को सुनाया। गृद्धराज का दाह करके राम आगे चले। तब कबन्ध ने उनको लक्ष्मण सहित खींच लिया।

जब उसने राम और लक्ष्मण को खाना चाहा तब राम ने बाण से उसके दोनों हाथों को काट डाला। कवन्ध ने यह कहा कि जब आप गोदावरी से आगे जायँगे तब सुग्रीव मिलेगा, वह सीता का समाचार सुनावेगा। राम ने जब एक नदी के किनारे चकवा चकवी को देखा तब सीता वियोग से क्षुब्ध हुए। प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ राम को सीता के विछोह में कष्टदायक सिद्ध हुए।

(किष्किन्धा कांड)

जब रामचन्द्र जी ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे तो उन्होंने वहाँ पाँच वानरों को देखा। जब सुग्रीव ने राम को देखा तब उसने उन दोनों भाइयों को नर और नारायण ही समझा। हनुमान के पूछने पर राम ने अपना परिचय दिया। हनुमान ने अपना परिचय देते हुए कहा कि इस पर्वत पर सुग्रीव रहते हैं उनके साथ उनके चार मन्त्री हैं। वालि नामक वानर ने उसकी स्त्री को छीन लिया है। यदि आप उसे स्त्री सहित राज्य दिला देंगे तो हम सीता का पता बतला देंगे। सुग्रीव ने राम को सीता के उत्तरीय और आभूषण समर्पित कर दिये। फिर उस ने राम से सात ताल वेधने की प्रार्थना की, रामचन्द्र ने सहज ही में बाण-वेधन कर दिया।

तेरहवाँ प्रकाश

दोहाः—या तेरहवें प्रकाश में, वालि बध्यो कपिराज।
वर्णन वर्षा शरद को, उदधि उल्लंघन साज॥

सुग्रीव और वालि में युद्ध हुआ, इसी समय राम ने क्रोधित हो कर एक बाण वालि के मारा, वह राम-राम कहता हुआ पृथ्वी में गिरा। होश आने पर उसने राम से अपने वध का कारण पूछा। तब राम ने यह कहा कि तुम इस अपघात का बदला कृष्णावतार में लोगे। राम ने अंगद को युवराज पद दिया। वर्षा ऋतु में राम

को सीता विरह के कारण अत्यन्त दुख हो रहा है। शरद काल आने पर राम सीता प्राप्ति के प्रयास में लीन होते हैं। जब लक्ष्मण किष्किन्धा जाकर सुग्रीव को सीता-शोधन का स्मरण दिलाते हैं तब वह हनुमान को सीता की खोज करने का आदेश देता है।

सुन्दर कांड

हनुमान जी समुद्र को लांघकर लंका पहुँचे। मार्ग में सुरसा और सिंहिका मिली; उन्हें हनुमान जी ने मार डाला। जब वे लंका में प्रवेश करने लगे तब लंका नाम की राक्षसी ने उनका मार्ग रोका। इस पर उन्होंने उसके एक थप्पड़ मारी जिससे वह मर गई। हनुमान जी ने रावण को देखा। अशोक वाटिका में विरह-मग्ना सीता का साक्षात्कार किया। उसी समय रावण आया उसने शब्द-लाघव से सीता को प्रलोभित किया किन्तु पति-परायणा सीता ने उसे अपमानित करते हुए वाक्य कहे। तब अवसर जानकर हनुमान जी ने मुद्रिका सीता के पास गिरा दी। मुद्रिका को देखकर सीता को आश्चर्य हुआ। अब हनुमान जी वृक्ष से नीचे उतर आये और वे सब घटनाएँ कह सुनाई जिससे नर और वानर में मैत्री हुई। हनुमान जी ने सीता को राम की दशा सुनायी और फिर सीता जी का शीशमणि आभूषण लेकर, वाटिका को उजाड़कर तथा राक्षसोंको मारकर, फल, मूल का भक्षण करने चले गये।

चौदहवां प्रकाश

दोहा :—या चौदहे प्रकाश में ह्वैहे लंका दाह।
सागर तीर मिलान पुनि, करिहैं रघुकुल नाह॥

हनुमान ने जब वाटिका का विध्वंस करके अक्षयकुमार को मार डाला, तब रावण ने मेघनाद से यह कहा कि वानर

जीवित न जाने पावे। मेघनाद हनुमान जी को विधिपाश में बाँध कर रावण के पास ले गया। तब रावण ने हनुमान से परिचय माँगा। रावण ने क्रोधित होकर हनुमान को क्षत-विक्षत करने की आज्ञा दी। विभीषण ने राजनीति बतलाते हुए रावण को यह परामर्श दिया कि दूत का वध करना अनीति है, तब हनुमान की पूँछ में कपड़ा बाँधकर और तेल डालकर आग लगा दी गयी। हनुमान ने तब लंका के घर घर में आग लगा दी। लंका-निवासी त्राहि-त्राहि करते हुए भागने लगे। उस अग्नि दाह में केवल विभीषण का घर बचा। हनुमान ने अपनी पूँछ को समुद्र में बुझाया और फिर सीता के चरणों में मस्तक नवाया। सीता से बिदा लेकर हनुमान राम के पास चले। समुद्र के किनारे उन्हें बालि आदि वानर मिले। फिर सब ने उद्यान के फल फूलों का भक्षण किया। जब वाटिका-रक्षक सुग्रीव के पास उपालम्भ लेकर पहुँचे तब सुग्रीव को यह विश्वास हुआ कि हनुमान सीता की खोज कर आये हैं; इसीलिये उन्हें इतना साहस हुआ है। हनुमान जी ने सीता का समाचार रामचन्द्र को सुनाया और उनकी शीशमणि रामचन्द्र को अर्पित की। सीता की दशा बताते हुए उन्होंने यह भी कहा कि यदि एक मास के भीतर सीता की मुक्ति न करायी गयी तो आरत-उद्धारक का जो यश है वह निस्सार पड़ जायगा।

विजयादशमी के दिन राम ने लंका-अभियान के लिये प्रस्थान किया। रामचन्द्र की विशाल वानर सेना मार्ग में खेल कूद करती गयी। सेना सहित रामचन्द्र जी ने समुद्र के किनारे पहुँच कर पड़ाव डाला।

पन्द्रहवाँ प्रकाश

दोहा :—या प्रकाश दस पंच में, दस सिर करै विचार।
मिलन विभीषण सेतु रचि, रघुपति जैहैं पार॥

रावण अपने मन्त्रियों से परामर्श ले रहा है। प्रहस्त ने यह कहा कि हे देव! शंकर ने आपको ऐसा वरदान दिया है जिसके बल से आपने सब लोकों को अपने वश में कर लिया है। आपके पुत्र ने इन्द्र को जीत लिया है; तब ये नर वानर आपको कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। कुम्भकर्ण ने यह कहा कि हे रावण तुमने उस समय सलाह न ली जब सीता को चुरा के लाये। अब जब आपत्ति आ पड़ी तब पूछने चले हो। मन्दोदरी ने भी रावण के कुकृत्य का विरोध किया। मेघनाद ने तब अत्यन्त गर्वोक्ति के साथ यह कहा कि यदि मुझे आज्ञा प्राप्त हो जाय तो मैं समस्त संसार को नर और वानर से हीन कर दूँगा। तब विभीषण ने रावण से यह निवेदन किया कि कुंभकर्ण और मेघनाद राम को जीत नहीं सकते अतः शीघ्रातिशीघ्र सीता को लेकर तुम राम की शरण में जाओ। इस पर क्रोधित होकर रावण ने विभीषण के लात मारी, इस पर अपने साथियों को लेकर राम की शरण में चला गया। राम के भाई विभीषण को शरण में आया जानकर राम ने मन्त्रियों से सलाह ली; तब हनुमान ने यह कहा कि विभीषण राम भक्त है। विभीषण ने भी आर्त होकर राम से दुःख निवेदन किया तब राम ने उसे शरण दान दिया। सेतु बन्धन कराके राम ने सेना सहित समुद्र को पार किया और वानर सेना ने लंका को चारों ओर से घेर लिया।

सोलहवाँ प्रकाश

दोहा :—यह वर्णन है षोडशे, केशवदास प्रकाश।
रावण अंगद सों विविध, शोभित बचन विलास॥

राम ने अंगद को दूत बनाकर रावण को सभा में भेजा। रावण के राज दरबार का वैभव अपार था। वहाँ देवताओं का

अपमान किया जा रहा था। उसे देखकर अंगद को क्रोध हुआ और वे राक्षसों को धक्का देते हुए, राज सभा में प्रविष्ट हुए। अंगद ने वार्तालाप में राम के शौर्य को रावण के समक्ष प्रदर्शित किया। रावण ने अंगद को यह प्रलोभन दिया कि यदि तुम अपने पिता के वधिक (राम) को मारना चाहो तो मैं तुम्हारी सहायता करूँगा और तुम्हें किष्किन्धा का राज्य दे दूँगा। अंगद ने राजनीति-युक्त उत्तर दिये और अन्त में रावण के मुकुट लेकर राम के पास लौट आये।

सत्रहवाँ प्रकाश

दोहा :—या सत्रहवें प्रकाश में, लंका को अवरोधु
शत्रु चमू वर्णन समर, लक्ष्मण को परमोधु

रावण के मस्तक के मुकुट को लेकर अंगद राम के चरणों में आ गिरे, राम ने उस मुकुट को विभीषण के मस्तक पर लगा दिया। तदुपरान्त सेना को लेकर चारों दिशाओं से लंका पर चढ़ाई की गई। रावण ने भी लंका के रक्षण की तैयारी की। द्वार-द्वार पर युद्ध होने लगा। वन्दर और भालु कोट के कंगूरों पर चढ़ गये। मेघनाद जब परकोटे से बाहर निकला तब उसने माया से सर्वत्र अन्धकार फैला दिया। राम और लक्ष्मण को नागपाश में बाँध लिया। गरुड़ ने आकर उनको नागपाश से मुक्त किया। धूम्राक्ष राक्षस को हनुमान ने मार डाला और अकंपनादि राक्षसों को अंगद ने मार डाला। जब अकम्पन और धूम्राक्ष मर गये तब रावण ने महोदर से मन्त्रणा ली। उसने राजनीति का उपदेश दिया। राजा और मन्त्री के क्या कर्त्तव्य हैं, उनका विवेचन किया। रावण की ओर से जो राक्षस वीर लड़ने के लिये आये; उनका परिचय विभीषण ने राम को दिया। जब रावण ने युद्ध स्थल में विभीषण को देखा तब उसने शक्ति का प्रहार

किया। उसे हनुमान ने पूँछ में पकड़कर रोक लिया। जब रावण ने ब्रह्मशक्ति चलाई तो उसे लक्ष्मण ने अपने ऊपर झेल लिया। शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण मूर्छित हो गये। रावण लक्ष्मण को उठाकर ले जाने लगा तब हनुमान ने उसके मुष्टिका मारी, जिस से रावण कुछ देर के लिये मूर्छित हो गया। रामचन्द्र ने जब लक्ष्मण को मूर्छितावस्था में देखा तब उनको अत्यन्त दुःख हुआ, और वे विलाप करने लगे। विभीषण ने यह कहा कि यदि सूर्योदय से पूर्व संजीवनी बूटी आ जाय तो लक्ष्मण के प्राण बच सकते हैं। तब हनुमान शीघ्रता से गये और द्रोणगिरि को ही उठा लाये। जब संजीवनी औषधि का प्रयोग किया गया, तब लक्ष्मण की मूर्छा जागी और उठकर उन्होंने यह कहा कि 'लंकेश न जीवित जाइ घरै' भाई लक्ष्मण को राम ने छाती से लगा लिया और राम की सेना में खुशियाँ छा गई।

अठारहवाँ प्रकाश

दोहा :—अष्टादशें प्रकाश में केशवदास कराल।
कुम्भकर्ण को वर्णिवो मेघनाद को काल॥

रावण ने जब यह सुना कि लक्ष्मण मूर्छा से जाग गये हैं तब उसे अत्यन्त निराशा हुई; और उसने मन्त्रियों को यह आदेश दिया कि अब तुरन्त ही कुंभकर्ण को जगा दिया जाय। विविध उपचार के उपरान्त कुंभकर्ण की निद्रा भंग हुई। रावण ने युद्ध का सम्पूर्ण समाचार कुंभकर्ण को सुनाया। कुंभकर्ण ने उत्तर में यह कहा कि रामचन्द्र को केवल मनुष्य न समझो। वे साक्षात् विष्णु भगवान हैं और वानर यशस्वी देवता हैं। रावण ने क्रोधित होकर कहा कि हे कुंभकर्ण तुम भी मेरे शत्रु राम से उसी प्रकार जा मिलो, जिस प्रकार विभीषण जा मिला है। मन्दोदरी ने रावण को यह समझाया कि युद्ध के समय भाइयों से झगड़ना

अच्छा नहीं है। मन्दोदरी ने यह भी कहा कि राम सर्वशक्तिमान ब्रह्म हैं। तुम उनसे सन्धि कर लो। रावण ने कहा कि वालि के छोटे अपराध को भी जिस राम ने नहीं क्षमा किया वे मेरे घोर अपराधों को क्योंकर क्षमा करेंगे, इसीलिये अब तो युद्ध होना चाहिये। कुंभकर्ण फिर युद्ध के लिये चला गया। जब वह युद्धस्थल में आया तब चारों ओर हाहाकार मच गया। अन्त में राम ने बाण-प्रहार से कुंभकर्ण का वध कर दिया।

इसके बाद इन्द्रजीत निकुँभिला में यज्ञ साधन करने के लिये गया। विभीषण ने राम से यह प्रार्थना की कि यदि मेघनाद ने यज्ञ को पूर्ण कर लिया तो हमारी पराजय निश्चित है; अतः यज्ञ पूर्ण होने के पूर्व ही मेघनाद को मारना आवश्यक है। लक्ष्मण को यह कार्य सौंपा गया। बाण-प्रहार से लक्ष्मण ने मेघनाद का सिर काट डाला। वह सिर रावण की अँजुलि में जा गिरा।

उन्नीसवाँ प्रकाश

दोहा:—उनईसवें प्रकाश में, रावण दुःख निदान।
जुझैगो मकराक्ष पुनि, ह्वैहै दूत विधान॥
रावण जैहै गूढ़ थल, रावर लुटै विशाल।
मन्दोदरी कढ़ोरिबो, अरु रावण को काल॥

मेघनाद के मस्तक को अपनी अंजुलि में देखकर रावण को अत्यन्त दुःख हुआ। समस्त राज परिवार में शोक छा गया। महोदर ने यह प्रार्थना की कि शोक का परित्याग करके शत्रु को धराशायी करने का कार्य किया जावे। मन्दोदरी ने कहा कि लंका के कठिन गढ़ को कोई नहीं जीत सकता इसलिये सीता को लौटा दो तब शत्रु को मार सकोगे। तब मकराक्ष युद्ध के लिये जाता है, जो मारा जाता है। मकराक्ष के मारे जाने पर रावण ने राम-

चन्द्र जी के पास दूत भेजा। दूत के लौट आने पर मन्दोदरी ने यह कहा कि यदि तुम लड़ने की शक्ति नहीं रखते तो मैं युद्धस्थल को जाती हूँ। रावण युद्धस्थल को जाने के पूर्व यज्ञ करता है। वानरों ने उस यज्ञ का विध्वस किया। राम ने युद्ध में रावण को मार गिराया। राम ने विभीषण को रावण के शव की अन्त्येष्टि क्रिया करने का आदेश दिया।

बीसवाँ प्रकाश

दोहा:—या बीसवें प्रकाश में, सीता मिलन विशेषि।
ब्रह्मादिक अस्तुति गमन, अवधपुरी कों लेपि ॥

प्राग वरणि अरु वाटिका, भरद्वाज की जानि।
ऋषि रघुनाथ मिलाप कहि, पूजा करि सुख मानि ॥

रामचन्द्र जी ने हनुमान को लंका इसलिये भेजा कि वे सीता जी को वस्त्राभूषण से अलंकृत करके ले आवें। सीता ने अपनी आत्म-शुद्धि की परीक्षा के हेतु अग्नि में प्रवेश किया। तब इन्द्र, वरुण, यमराज, सिद्धगण, कुवेर, ब्रह्मा रुद्र राजा दशरथ को साथ लेकर वहाँ पहुँचे। अग्निदेव ने यह कहा कि सीता पवित्र हैं,. राम तुम इसे स्वीकार करो। तब राम ने सीता को अंक से लगाया। ब्रह्मादि देवता जब स्तुति करके लौट गये तब रामचन्द्र जी पुष्पक विमान पर ससैन्य चढ़कर अयोध्या लौटे।

पंचवटी होते हुए राम जब प्रयाग पहुँचे तब भरद्वाज ऋषि ने उनकी अर्चना की।

इक्कीसवाँ प्रकाश

दोहा:—इकईसएं प्रकाश में, कह ऋषि दानविधान।
भरत मिलन कपि गुणन कों, श्रीमुख आप बखान ॥

रामचन्द्र जी ने भरद्वाज मुनि से यह प्रश्न किया कि दान किस वस्तु का दिया जाय और उसका पात्र कौन है? तब भरद्वाज मुनि ने विस्तार पूर्वक दान-धर्म का उपदेश दिया। रामचन्द्रजी ने हनुमान से यह कहा कि तुम भरत के पास जाओ। हम आज ऋषि के यहाँ ही भोजन करेंगे। हनुमान जी ने भरत को शोकावस्था में और मुनि-वेश में चरण पादुकाओं की स्तुति करते हुए देखा। हनुमान जी ने श्रीराम का समाचार भरत को सुनाया। भरत अत्यन्त प्रसन्न हुए। श्रीराम के स्वागत के हेतु अयोध्यापुरवासी सज्जित होकर खड़े हैं। श्रीराम ने अपने भाइयों से भेंट की। श्रीराम ने फिर समस्त वानरों का परिचय कराया। फिर श्रीराम भरत से मिलने के लिये नन्दीग्राम गये। भरत ने उनके चरणों का स्वयं अपने हाथ से प्रक्षालन किया। फिर भरत ने श्रीराम को उनकी पादुका लौटा दी।

बाइसवाँ प्रकाश

दोहा:— या बाइसें प्रकाश में, अवध पुरीहिं प्रवेश।
पुरवासिन मातान सों, मिलिबो राम नरेश॥

जब पुरवासियों ने राम-आगमन के सुखद समाचार को सुना तो वे दौड़े हुए आये। श्रीराम की पूजा प्रति द्वार पर हुई। श्रीराम अपनी माताओं से मिले। फिर समस्त वानरों और विभीषण आदि को निवास देने का प्रबन्ध भरत और शत्रुघ्न ने किया।

तेइसवाँ प्रकाश

दोहा:—या तेइसैं प्रकाश में, ऋषि जन आगम लेखि।
राज्य-श्री निन्दा कही, श्रीमुख राम विशेषि॥

एक समय रामचन्द्र जी बैठे हुए थे। उस समय ऋषिगणों का

आगमन हुआ। ऋषियों ने राम को उदासीन देखकर उनके शोक का कारण पूछा ; तब श्रीराम ने राज्य श्री की निन्दा की।

चौबीसवाँ प्रकाश

दोहा:—चौबीसवें प्रकाश में, राम विरक्ति बखानि।
विश्वामित्र वशिष्ठ सों, बोध कर्यौ शुभ आनि ॥

श्रीराम ने कहा कि राज्य-श्री तो दुःखदायिनी है ही, इस संसार में भी सुख नहीं है। बचपन, यौवन एवं वृद्धावस्था में में अनेकों क्लेशों को सहना पड़ता है। श्रीराम ने विरक्ति मूलक ज्ञान का उपदेश दिया। श्रीराम के वचन सुनकर समस्त सभा ने साधुवाद दिया।

पच्चीसवाँ प्रकाश

दोहा:—कथा पचीस प्रकाश में, ऋषि वशिष्ठ सुख पाइ।
जीव उधारन रीति सब, रामहि कह्यौ सुनाइ ॥

वशिष्ठ ने श्रीराम की स्तुति की। राम नाम के माहात्म्य का वर्णन किया और ब्रह्म की अचिन्त्यनीय सत्ता का निरूपण किया है।

छब्बीसवाँ प्रकाश

दोहा:—कथा छबीस प्रकाश में, कह्यौ वशिष्ठ विवेक।
राम नाम को तत्व अरु, रघुवर को अभिषेक ॥

श्रीराम की स्वीकृति प्राप्त करके वशिष्ठ ने भरत से अभिषेक की सामग्री संकलित करने के लिये कहा। उसी समय शत्रुघ्न ने राम नाम का माहात्म्य प्रदर्शित करने के लिये वशिष्ठ जी से प्रार्थना की। रामचन्द्र के तिलकोत्सव के लिये विधानोक्त सामग्रियाँ दूरस्थ प्रदेशों से मँगाई गईं। श्रीराम सीता सहित एक सुन्दर सिंहासन पर बैठे। ब्रह्माजी ने प्राप्त मुहूर्त-घटिका में स्वयं अपने

हाथ से राम जी का अभिषेक किया। इस अवसर पर श्रीराम ने अपने प्रियजनों को उपहार स्वरूप भिन्न-भिन्न वस्तुएँ प्रदान कीं।

सत्ताइसवाँ प्रकाश

दोहा:—सताइसें प्रकाश में, रामचन्द्र सुखसार।
ब्रह्मादिक अस्तुति विविध, निजमति के अनुहार॥

ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, पितर, अग्नि, वायु, देवगण, ऋषिगण आदि ने श्रीराम की स्तुति किया।

अट्ठाइसवाँ प्रकाश

दोहा:—अट्ठाइसें प्रकाश में, वर्णन बहुविधि जानि।
श्री रघुबर के राज को, सुर नर को सुख दानि॥

श्रीरामचन्द्र के राज्य में सर्वत्र आनन्द और उल्लास ही दिखलाई देता है। प्रजा सुख और वैभव से सम्पन्न है। नदियाँ आदि सब जल से आपूरित हैं। न किसी को वियोग है और न रोग। रामचन्द्र का राज्य ११००० वर्ष तक रहा और उस समय स्वर्ग और नरक के रास्ते बन्द थे—किसी की मृत्यु नहीं होती थी।

उन्तीसवाँ प्रकाश

दोहा:—उन्तीसवें प्रकाश में, वरणि कह्यौ चौगान।
अवध दीप्ति शुक की विनित, राज लोक गुणगान॥

रामचन्द्र जी चौगान का खेल खेल रहे हैं। जब राम सेना चौगान से लौटकर गलियों में से निकलती है उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो समुद्र के सेतु से टकराकर उत्साहपूर्वक नदियों के प्रवाह उलटे बह चले हैं। उसी समय सन्ध्या हो गई और नगर में दीपक जलने लगे। उस समय अयोध्या नक्षत्रों

की नगरी सी प्रतीत होती थी। भिन्न-भिन्न प्रकार की अग्नि क्रीड़ाओं से आकाश मंडल व्याप्त हो रहा था। रामचन्द्र जी के शयनागार राजमहल का अत्यन्त ओजस्वी रूप कवि ने वर्णन किया है।

तीसवाँ प्रकाश

दोहा :—या तीसएँ प्रकाश में, वरन्यो बहुविधि जानि।
रंग महल संगीत अरु, रामशयन सुख दानि॥

पुनि शारिका जगाइयो, भोजन बहुत प्रकार।
अरु वसन्त रघुवंशमणि, वर्णन चन्द्र उदार॥

रामचन्द्र के रङ्ग महल की शोभा का वर्णन शेषनाग भी नहीं कर सकते। जब रामचन्द्र उस रंगमहल में आये तब अनेक षोडशवर्षीया नवयुवतियाँ सज्जित होकर आईं वे नृत्य और गान करने लगीं। उनका संगीत अत्यन्त श्रुतिमधुर था और वे भिन्न-भिन्न राग रागनियों को गाने में अत्यन्त निपुण थीं। रामचन्द्रजी अत्यन्त सुन्दर शैय्या पर शयन करते हैं और प्रातःकाल होते ही भाट और चारण स्तुति गान करते हैं। इसके आगे रामचन्द्र जी की प्रातः से लेकर सायंकाल तक की दिन-चर्या का वर्णन है।

इकतीसवाँ प्रकाश

दोहा :—इकतीसयें प्रकाश में; रघुवर बाग पयान।
शुक मुख सियदार्शीन को, वर्णन विविध विधान॥

प्रातःकाल होते ही सब रनिवास वाटिका में गया। रामचन्द्र घोड़े पर बैठ कर गये। बाग़ में पहुँचकर श्रीराम जी स्त्रियों के साथ वाटिका विहार करने लगे। यहाँ स्त्रियों के नख-शिख का व्यापक चित्रण किया गया है।

बत्तीसवाँ प्रकाश

दोहा :—बत्तीसवें प्रकाश में, उपवन वर्णन जानि।
अरु बहु विधि जल केलि को, करेहु राम सुखदानि॥

जब स्त्रियों ने रामचन्द्र को देखा तब सीता ने राम से यह कहा कि हमें वह बाग दिखलाइए, जो आपने अभी लगवाया है। उस बाग में मोर प्रसन्न होकर बोलते हैं। कोयल के समूह सुन्दर शब्द करते हैं। भिन्न भिन्न वृक्ष और लताएँ फल और फूल से सज्जित हो रही हैं। उस बाग में कृत्रिम पर्वत और नदी है। उसके मध्य में एक सुन्दर सरोवर है जिसमें सुन्दर कमल प्रस्फुटित हो रहे हैं। उसमें श्रीराम ने अनेक भाँति से जल-क्रीड़ा की, तब उससे तृप्त होकर स्त्रियों सहित वे जलाशय से बाहर निकले। इस प्रकार जल-क्रीड़ा करके राम सब समाज सहित रनिवास को वापिस लौटे।

तेंतीसवाँ प्रकाश

दोहा :—तेंतीसयें प्रकाश में, ब्रह्मा विनय बखानि।
शम्बुक वध सिय त्याग अरु, कुश-लव जन्म सों जानि॥

जब रामचन्द्र सुग्रीव, विभीषण आदि मित्रों तथा भाइयों और ब्राह्मणों सहित राजसिंहासन पर बैठे थे उस समय मुनि और देवताओं को साथ लिए हुए ब्रह्माजी आये। श्रीराम ने उनका आदरपूर्वक स्वागत किया। ब्रह्माजी ने तब यह कहा कि आप सब लोगों को मोक्ष दे रहे हैं अतः सृष्टि रचना में बाधा हो रही है। तब रामचन्द्र जी ने हँसकर कहा कि मेरी इच्छा ही प्रधान है; वह कभी अन्यथा नहीं हो सकती। उन्होंने ब्रह्मा जी से कहा कि तुम्हारे पुत्र सनक सनन्दनादि मेरे भक्त हैं। जब श्रीराम ब्रह्मा जी से वार्तालाप कर रहे थे उसी समय एक ब्राह्मण अपने मरे हुए बेटे को लेकर विलाप करता हुआ आया।

तब यमराज—जो ब्रह्मा जी के साथ आये थे—ने पिता के जीवन काल में उस पुत्र की मृत्यु का यह कारण बतलाया कि शूद्र की तपस्या से राज्य में बालकों की मृत्यु होती है। अधिकतर ब्राह्मणों के ही पुत्र मरते हैं। अतः आपके राज्य में कोई शूद्र तपस्या करता है। राम ने देव और मुनियों को तो विदा किया और स्वयं पुष्पक विमान पर बैठकर शूद्र की खोज में चले।

जब राम शूद्र के वध के लिये चले गये, तब ब्रह्माजी सीता के पास पहुँचे और यह प्रार्थना की कि आप ऐसा कार्य कीजिये, जिससे राम वैकुंठ चलें। सीता की मौन-स्वीकृति पाकर ब्रह्मा तो ब्रह्मलोक को गये और श्रीराम ने उधर शूद्र का शिरच्छेदन किया।

एक समय राम ने अत्यन्त प्रसन्न होकर सीता से एक वर माँगने को कहा। सीता ने कहा कि य द आप मुझे वर ही देना चाहते हैं तो मुझे अनुमति दीजिये कि मैं गंगा तट निवासी सब मुनियों को वस्त्र दान कर आऊँ। तब रामचन्द्र ने कहा कि कल प्रातःकाल ही तुम ऋपियों को वस्त्रदान करने के लिये चली जाना।

जब श्रीराम भोजन करके सोने लगे तब अर्ध-रात्रि के समय गुप्तचर ने आकर प्रणाम किया। उसने वह सब वार्ता राम को सुनाई जिसे एक व्यक्ति कह रहा था। जब तीनों भाई प्रातः काल वन्दना करने आये तब राम न तो हँसे और न बोले। जब सबने इस अप्रसन्नता का कारण जानना चाहा तो श्रीराम ने गुप्त-चर के द्वारा कही हुई बात सुना दी। श्रीराम की बात सुनकर भरत को बड़ा क्षोभ हुआ। जब भरत और शत्रुघ्न वहाँ से चले गये तब राम ने लक्ष्मण को सीता को जंगल में छोड़ आने का आदेश

दिया। अब लक्ष्मण सीता को लेकर वन में चले गये। जब सीता और लक्ष्मण गंगापार हो गये, तो उन्हें एक भयंकर जंगल दिखाई पड़ा जहाँ न कोई मनुष्य ही था और न पशु ही। वहाँ ऋषियों के निवास के कोई चिह्न न थे। सीता ने पूछा कि यहाँ तो मुनि-आश्रम नहीं है। तब लक्ष्मण रोने लगे। लक्ष्मण को रोते देख सीता मूर्छित हो गईं। उस दशा में लक्ष्मण सीता को अकेली छोड़कर चले गये। उस समय वाल्मीकि मुनि ने आकर संजीवन मंत्र पढ़कर सीता पर जल छिड़का, सचेत होने पर सीता ने उनका परिचय पूछा। तब मुनिने अपना परिचय दिया और सीता को अपने आश्रम में ले गये। वहाँ सीता के दो पुत्र हुए—एक का नाम था लव, दूसरे का नाम था कुश। वाल्मीकि मुनि ने पहिले तो उन्हें अध्ययन कराया, पुनः धनुर्वेद विशेष रीति से पढ़ाया। सब अस्त्र और शस्त्र दिये और उन्हें चलाने के सब मन्त्र भी सिखाये।

चौंतीसवाँ प्रकाश

दोहा :—आयो स्वान फिराद कों, चौंतीसवें प्रकाश।
अरु सनाढ्य द्विज आगमन, लवणासुर को नाश॥

एक दिन श्रीराम राजसभा में बैठे थे। वहाँ कितने ही राजा, ऋषि, मन्त्री और मित्र भी थे। उस समय एक कुत्ते ने द्वार पर आकर दुन्दुभी बजाई। लक्ष्मण ने तुरन्त बाहर आकर उससे कारण पूछा। कुत्ते ने कहा कि राम के राज्य में मुझे अत्यन्त दुःख हुआ है अतः मैं राम से निवेदन करने आया हूँ। तब लक्ष्मण ने कहा कि हे श्वान तुम राजसभा में चलकर अपने दुःख को प्रकट करो। राज सभा में जाकर कुत्ते ने यह कहा कि एक ब्राह्मण ने बिना अपराध ही मुझे मारा है। तब कुछ व्यक्ति उस ब्राह्मण को लेने के लिये भेजे गये। राम ने उस ब्राह्मण से प्रश्न किया कि इस कुत्ते को बिना कारण क्यों मारा है? ब्राह्मण

ने उत्तर दिया कि यह कुत्ता मार्ग में सो रहा था। मैं भोजन के लिये शीघ्रता से जा रहा था इसलिए इसके चोट पहुँच गई। तब राम ने अन्य ब्राह्मणों से यह पूछा कि इस ब्राह्मण को कौन सा दण्ड देना चाहिये। ब्राह्मणों ने यह कहा कि इस ब्राह्मण को यह शिक्षा देकर छोड़ दीजिए कि भविष्य में वह बिना दोष किसी पर पाद-प्रहार न करे। तब श्रीराम ने कुत्ते से ही दण्ड बतलाने के लिये कहा। कुत्ते ने कहा कि हे राम! यदि आप मेरा मत चाहते हैं तो इस ब्राह्मण को मठपति बना दीजिये। राम ने उस ब्राह्मण को महन्त बना दिया। सभासदों ने कुत्ते से यह पूछा कि उस ब्राह्मण को महन्त बनवाने में तुम्हारा क्या हेतु है? कुत्ते ने कहा कि कन्नौज में एक मठधारी था, जो विष्णु मन्दिर का अधिकारी था। जिस दिन मन्दिर में कोई धनिक आता था उस दिन तो वह ठाकुर जी का सिंगार करता था और जिस दिन कोई धन चढ़ाने वाला न आता था उस दिन ठाकुर जी को पलँग पर से भी न उठाता था। इस प्रकार उसने बहुत द्रव्य एकत्रित कर लिया और नित्य भोग-विलास में लीन रहता था। एक दिन उसके यहाँ एक अतिथि आया। उसके लिये अच्छे अच्छे सुस्वादु भोजन बनाये गये। उसे परोसने के लिये मेरे पिता को बुलाया गया। उसको खाना परोसने में कुछ घी मेरे पिता के नाखून में लग गया। उसे भोजन कराकर जब पिता घर आये तब मैं रो रहा था। माता ने दूध भात खाने को दिया। पिता ने अंगुली उस दूध में डाली तो वह घी पिघल गया। इस प्रकार वह घी मेरे पेट में चला गया। उसके दोष से मैंने अनेकों नरकों के कष्ट सहे हैं। अनेकों योनियों में भ्रमता हुआ अब अयोध्या में कुत्ते का जन्म लिया है। जब मठधारी का द्रव्य खाने से मेरी यह दशा हुई है तो जो स्वयं मठधारी होते हैं उनकी क्या दशा होती होगी, इसका अनुमान

किया जा सकता है। उस ब्राह्मण का दोष तो थोड़ा ही था पर मैं ने उसे घोर दण्ड दिलवाया है।

कुत्ते ने एक और कथा सुनाई। बनारस में एक बड़ा बली राजा था। उसका नाम सत्यकेतु था। उसने धर्म-द्रव्य के बाँटने का अधिकारी एक ब्राह्मण को बना दिया। वह उस धर्मार्थ निकाले गये द्रव्य में से धन चुराया करता था और उसे विलास में खर्च करता था। इस प्रकार उस धर्मार्थ द्रव्य का दशांश ही अन्य ब्राह्मण पाते और बाकी सब धन वह ब्राह्मण खा जाता था। एक दिन जब वह राजा युद्ध में मारा गया तब यमराज के दूत यमराज के पास ले गये। उन्होंने उससे यह प्रश्न किया कि जो आपने पाप और पुण्य किये हैं उनमें से आप किसका फल पहिले भोगना चाहते हैं। राजा ने कहा कि मुझे तो यह मालूम भी नहीं है कि मैंने कोई पाप भी किया है धर्मराज ने कहा कि धर्माधिकारी ने जो द्रव्य का अपहरण किया उसका पाप तुम्हारे ऊपर है। उस सत्यकेतु राजा को केवल संसर्ग से दोष लगा था। उसने स्वयं कोई पाप नहीं किया था। फिर भी उसे नरक का कष्ट भोगना पड़ा। जब उसके पाप क्षीण हो चुके तो अब उसने अयोध्या में एक डोम के यहाँ जन्म लिया है।

इतने में ही द्वारपाल ने सूचना दी कि मथुरा निवासी कई ब्राह्मण खड़े हैं। क्या आज्ञा है? श्रीराम ने बड़े आदर से उन्हें सभा में बुलाया। श्रीराम ने कहा कि आपके आगमन से हमारे सब स्थान शुद्ध हो गये। आपका चरणोदक पाकर हमारा राज्य महल पवित्र हो गया। तब श्रीराम ने उनके आगमन का कारण पूछा। ब्राह्मणों ने कहा कि आप लवणासुर का वध कीजिए। श्रीराम ने उनकी रक्षा का वचन दिया। शत्रुघ्न को श्रीराम ने यह आदेश दिया कि वह लवणासुर का वध करें।

श्रीराम की आज्ञा पाकर शत्रुघ्न लवणासुर को मारने के लिये चले। यमुना के किनारे शत्रुघ्न और लवणासुर में युद्ध हुआ। जैसे ही लवणासुर ने महादेव का त्रिशूल हाथ में लिया शत्रुघ्न ने उसका मस्तक काट डाला। वह सिर महादेव के हाथों में जाकर गिरा। शत्रुघ्न की इस वि.य पर देवताओं ने पुष्प वृष्टि की और दुन्दुभी बजाई।

पैंतीसवाँ प्रकाश

दोहा :—पैंतीसवें प्रकाश में, अश्वमेध किय राम।
मोहन लव शत्रुघ्न कृत, है है संगरधाम॥

एक समय रामचन्द्र ने वशिष्ठ जी से अश्वमेध यज्ञ करने की मन्त्रणा की। वशिष्ठ जी ने यह परामर्श दिया कि बिना पत्नी के यज्ञ नहीं किया जा सकता अतः सीता की एक स्वर्ण प्रतिमा बना ली जावे। अस्तबल से एक श्वेतवर्ण का सुन्दर घोड़ा छाँट लिया गया। उस घोड़े को रोली और अक्षतों से पूजा गया और उस के मस्तक पर पट्टी बाँधी गई। उसकी रक्षा के लिये चतुरंगिणी सेना शत्रुघ्न के नेतृत्व में भेजी गई। जिस ओर वह घोड़ा जाता था, उसी दिशा में वह सेना जाती थी। विभिन्न प्रदेशों में विचरण करता हुआ वह घोड़ा वाल्मीकि मुनि के आश्रम में पहुँचा। लव ने जब उसके मस्तक की पट्टिका पर लिखे श्लोक को पढ़ा तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने उस घोड़े को बाँध लिया। उसी समय सेना ने आकर उन ऋषि कुमारों को घेर लिया लेकिन लव ने उन सबों को मार कर भगा दिया। सेना को भागते हुए देखकर शत्रुघ्न आये। लव ने बड़े कौशल के साथ शत्रुघ्न से युद्ध किया। शत्रुघ्न ने तब उस बाण का प्रयोग किया जो श्रीराम ने लवणासुर को मारने के लिये उन्हें दिया। उस बाण के प्रहार से लव मूर्छित हो गया। शत्रुघ्न

मूर्छित लव और घोड़े को लेकर चले। ऋषि कुमारों ने इस घटना की सूचना सीता को दी। सीता को महान् कष्ट हुआ। अब कुश ने माता के चरणों की शपथ खाकर प्रतिज्ञा की कि वह लव को छुड़ाकर लावेगा। कुश की ललकार सुनकर शत्रुघ्न लौटे। कुश के बाण-प्रहार से शत्रुघ्न मूर्छित हो गये। शत्रुघ्न के मूर्छित हो जाने पर सब सेना युद्ध स्थल छोड़कर भाग गई। कुश और लव प्रेमपूर्वक मिले और घोड़े को एक पेड़ की जड़ से बाँध दिया।

छत्तीसवाँ प्रकाश

दोहा :—छत्तीसवें प्रकाश में, लक्ष्मण मोहन जान।
आयसु लहि श्रीराम को, आगम भरत बखान॥

युद्ध से भागे हुए सैनिक अयोध्या आये, उस समय श्रीराम यज्ञ मंडप में थे। उन्होंने युद्ध का सब वृतान्त रामचन्द्र जी को सुनाया। सैनिकों के द्वारा कहे गये समाचार को सुनकर श्रीराम बड़े क्षुब्ध हुए। लक्ष्मण को बुलाकर घोड़े की खबर लेने का आदेश दिया। लक्ष्मण की अत्यन्त विशाल सेना को देखकर लव और कुश ने भी अपने शस्त्रास्त्र सँभाल लिये। लक्ष्मण की सेना के बहुत से सैनिकों को उन मुनि बालकों ने मार गिराया। लक्ष्मण भी युद्ध करने लगे लेकिन यज्ञोपवीतधारी अल्पायु मुनि कुमारों को देखकर उनकी क्रोध की भावना तीव्र नहीं हो सका। कुश ने एक अत्यन्त प्रखर बाण छोड़ा, जिसकी चोट से व्याकुल होकर लक्ष्मण रथ पर जा गिरे।

लक्ष्मण को आने में देर देखकर श्रीराम भरत से युद्धस्थल में जाने के लिये कहते हैं। उसी समय युद्ध से भागे हुए सैनिक आ गये और यह कहा कि उन ऋषि कुमारों ने लक्ष्मण का प्राणान्त कर दिया। भरत ने सीता परित्याग से उत्पन्न हुए क्षोभ को प्रकट

किया और कहा कि ये मुनिकुमार हमारे पापों के ही फल हैं। मैं भी उस युद्धस्थल पर जाकर प्राणोत्सर्ग कर दूँगा। तब अंगद, विभीषण और जामवन्त आदि को लेकर भरत युद्धस्थल की ओर गये।

सैंतीसवाँ प्रकाश

दोहा :—सैंतीसवें प्रकाश में लव कटु बैन बखान।
मोहन बहुरि भरत्थ को लागे मोहन बान॥

उस भयंकर युद्ध स्थल को भरत, जामवन्त और हनुमान ने देखा। उसी समय सुन्दर दो ऋषिकुमार आ गये। भरत ने उनसे अनुनय किया कि ऋषियों को तो यज्ञ कराना चाहिये उसमें विघ्न-बाधा न पहुँचाना चाहिये। कुश ने अत्यन्त क्रोधित होकर उत्तर दिया तब सुग्रीव को बड़ा क्रोध हुआ। लव ने बिना नोक के बाण का प्रहार किया, जिससे सुग्रीव आकाश में उड़ गये। जब विभीषण लड़ने के लिये आये तब लव ने उनसे कितने ही व्यंग वाक्य कहे। भरत से भी घनघोर युद्ध हुआ। मोहन बाण लगने से भरत मूर्छित होकर गिर पड़े।

अड़तीसवाँ प्रकाश

दोहा :—अड़तीसएँ प्रकाश में, अंगद युद्ध बखान।
भाज सैन रघुनाथ के, कुश लव आश्रम जान॥

जब भरत को लौटने में विलम्ब हुआ तो श्रीराम स्वयं युद्ध स्थल को गये। राम को आता हुआ देखकर मुनिकुमार पुनः लड़ने के लिये आ गये। अपने रूप की अनुहार देखकर राम ने उन बालकों का परिचय पूछा। बालकों ने जब परिचय देने में असमर्थता प्रकट की तो राम ने यह कहा कि मैं उस समय तक युद्ध नहीं करूँगा जब तक तुम अपने माता पिता का नाम न बतला दोगे। बालकों ने कहा कि मिथिलेश की पुत्री सीता

के हम पुत्र हैं और महर्षि वाल्मीकि ने हमें शिक्षा प्रदान की है। हम अपने पिता का नाम नहीं जानते। राम ने यह समझ लिया कि ये मेरे बालक हैं अतः उन्होंने शस्त्रास्त्र फेंक दिये और अंगद को लड़ने का आदेश दिया। अंगद को लव ने कितनी ही कटूक्तियाँ सुनाईं। बाणों के प्रहार से अंगद का सब शरीर विद्ध हो गया। लव ने एक बाण मारकर अंगद को ऊपर उछाल दिया और वह एक गोले के समान आकाश में लुढ़कने लगे। लव ने बार बार बाण के प्रहार से अंगद को आकाशचारी बना दिया। अब संत्रस्त होकर अंगद ने दीन स्वर से लव की विनय किया तब दयार्द्र होकर उन्होंने अंगद को छोड़ दिया। जब सब सेना नष्ट हो गई तब राम रथ पर जाकर लेट गये। लव और कुश ने रणभूमि में से अच्छे अच्छे मणि, आभूषण और मुकुट बीन लिये और घोड़े सहित हनुमान और जामवन्त को पकड़कर वे सीता के पास पहुँचे तब सीता ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें गोद में बैठा लिया।

उन्तालीसवाँ प्रकाश

दोहा :—नवतीसवें प्रकाश सिय, राम संयोग निहारि।
यज्ञ पूरि मत्र सुतन को, दीन्हों राज्य विचारि॥

जब सीता ने देवरों के आभूषणों को पहिचाना और हनुमान के शरीर को देखा तब रोकर कहने लगीं कि तुमने तो मुझको ही विधवा कर दिया। तुमने अपने पिता और पिता के भ्राताओं को युद्ध में मार डाला है। यह कहकर सीता अपने पुत्रों पर क्रोधित हुई। तब कुश ने कहा कि इसमें मेरा दोष नहीं है तुमने हमें यह कब बतलाया था कि हमारे पिता का नाम राम है। मुझे देखकर राम तो रथ पर सो रहे हैं। हमने उनको नहीं मारा है। माँ! तुम धैर्य धारण करो। इसी समय महर्षि वाल्मीकि आ गये उन्होंने सीता को सान्त्वना दी। फिर वे सब

युद्धस्थल में गये। बालकों के पराक्रम देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब सीता ने उन सब मृतकों को जीवित कर दिया। सीता को पुत्रों सहित वाल्मीकि ने राम के चरणों पर डाला। राम को जैसे ही अपने पुत्रों और पत्नी सीता का मिलन हुआ देवताओं ने पुष्प वर्षा की; अब सीता, कुश, लव और अश्वमेध के घोड़े को साथ लेकर श्रीराम अयोध्या वापिस आये। भाई लक्ष्मण और शत्रुघ्न अयोध्यावासियों की भीड़ को हटाते चले।

श्रीराम यज्ञस्थल में पहुँचे। सीता ने अपने दोनों पुत्रों सहित कौशल्यादि सासों के चरणों का स्पर्श किया। माताओं को अत्यन्त आनन्द हुआ। यज्ञ को समाप्त करके श्रीराम ने अनेक वस्तुओं का दान किया।

श्रीराम ने अपने और अपने भाइयों के बेटों को पृथक् पृथक् प्रदेशों का राजा बनाया। श्रीराम ने उनको राजनीति का उपदेश दिया और यह भी शिक्षा दी कि राज्य का रक्षण किस प्रकार करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्रणा देकर श्रीराम ने उन सबों को विदा किया और स्वयं भ्राताओं सहित अयोध्या का राज्य करने लगे।

अन्त में कवि ने रामचरित्र-माहात्म्य और 'रामचन्द्रिका' के पाठ का माहात्म्य वर्णन करके पुस्तक को समाप्त किया है।

२

महाकाव्य और केशव का दृष्टिकोण

कविता के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य में संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों का ही अधिकतर अनुसरण किया जाता रहा है, माध्यमिककाल में तो काव्यकारों को इन लक्षण ग्रन्थों में दिये गये नियमों का पालन करना अनिवार्य ही था, साहित्य दर्पणकार पंडित विश्वनाथ ने महाकाव्यों के सम्बन्ध में लिखा है "महाकाव्य की कथा सर्गों में विभक्त होना चाहिये और उसका नायक देवता या उच्च कुल का क्षत्री, जो धीरोदात्तादिगुणों से युक्त हो, होना चाहिये उसमें शृंगार, वीर तथा शान्त रस की प्रधानता हो, प्रारम्भ में मंगलाचरण या वस्तु-निर्देश हो, दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन हो, प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हो केवल सर्गान्त में अन्य वृत्त का प्रयोग किया जावे, सर्ग न तो छोटे हों और न बहुत बड़े, सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, प्रातःकाल, मध्यान्हकाल, पर्वत, जंगल तथा सागर का वर्णन हो।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः
शृंगारवीरशान्तानामेको अंगी रस इष्यते
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसाने अन्यवृत्तकैः
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह
सन्ध्या सूर्येन्दु रजनी प्रदोष ध्वान्तवासराः
प्रातर्मध्याह्न मृगयशैलर्तुवन सागराः

रामचंद्रिका में उक्त नियमों का पूर्ण रूप से पालन हुआ है, मर्यादा पुरुषोत्तम राम में उच्च भावनाओं और कुलीनता का सुन्दर समन्वय हुआ है। इस ग्रन्थ में ३९ प्रकाश (सर्ग) हैं और प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों के साथ-साथ इसमें शृंगार, वीर और शान्त रसों का अच्छा परिपाक हुआ है।

प्रबन्ध कल्पना तथा चरित्र-चित्रण

रामायण की प्रसिद्ध कथा तथा उनके पात्रों की जो चरित्रगत विशेषताएँ हैं उनमें परिवर्तन किया जाना प्रायः असम्भव है। रामायण के भिन्न-भिन्न पात्रों ने अपने विशिष्ट चरित्र की अमिट छाप जनता के हृदय-पटल पर ऐसी अंकित कर दी है कि उसमें किया गया कोई परिवर्तन न तो ग्राह्य हो सकता है और न आकर्षक ही। कतिपय काव्यकारों ने कविता की सुविधा की दृष्टि से घटनाओं के क्रम में या पात्रों के चरित्रों में कुछ परिवर्तन किये हैं, किन्तु चिर-परम्परा से चली आती हुई भावना को मोड़ने की शक्ति उन परिवर्तनों में नहीं है। केशवदास में भी राम के चरित्र में कुछ परिवर्तन कथा भाग को संक्षिप्त करने के लक्ष्य से किये गये हैं। कदाचित् वस्तु-वर्णन में केशवदास का चित्त नहीं रमा और वे कथा के इतिवृत्तात्मक अंश को शीघ्रातिशीघ्र कहकर अवकाश पा जाना चाहते हैं। इसीलिये जहाँ प्रसंगानुकूल कथा विस्तार होने का अवसर उपस्थित हुआ केशवदास ने उस कथा के प्रवाह को रोकने के लिये किसी अन्य पात्र को वहाँ उपस्थित कराकर उस कथा के प्रवाह को समाप्त किया है। (१) महादेव के धनुष भंग हो जाने पर जब परशुराम और रामचन्द्र में झगड़ा बढ़ जाने की संभावना होती है तो उसके निराकरण के लिये केशव ने उस स्थल पर स्वयं महादेव को उपस्थित करा दिया है और इस प्रकार परशुराम का क्रोध शान्त हुआ।

"राम राम जब कोप कर्‌यो जू
लोक-लोक भय भूरि भर्‌यो जू
वामदेव तब आपुन आये
राम देव दोऊ समझाये"

(२) अयोध्याकाण्ड की अत्यन्त मर्मस्पर्शिनी घटनाओं में राम और भरत का चित्रकूट मिलन प्रमुख है। तुलसीदास जी ने इस अवसर पर धर्मनीति, लोकनीति, और राजनीति के मार्मिक चित्र उपस्थित किये हैं। वात्सल्य एवं ममता के अत्यन्त कारुणिक एवं हृदय द्रावक चित्र रामचरितमानस में इस स्थल पर अंकित किये गये हैं, किन्तु केशवदास जी ने गंगाजी द्वारा भरत को शिक्षा दिलाने का प्रसंग रखकर अति सूक्ष्मता से भरत मिलाप की घटना को समाप्त किया है। उनका हृदय उस साधना में लीन न हुआ, जिसके फलस्वरूप वे जीवन के लोक-पक्ष के साथ गंभीर सहानुभूति प्रकट करते। धार्मिक संकट—जो राम और भरत दोनों के हृदयों में समान रूप से व्याप्त था—को वहन करने की केशव में न तो रुचि थी और न शक्ति ही।

भागीरथी रूप अनूपकारी। चन्द्राननी लोचन कंजधारी॥
वाणी बखानी सुख तत्त्व सोध्यो। रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यो॥
उठो हठी होहु न, काज कीजै। कहै कछु राम सो मान लीजै॥
यहि कहि कै भागीरथी। केशव भई अदृष्ट॥
भरत कह्यौ तब राम सों। देहु पादुका इष्ट॥

३. जनकपुर में स्वयम्वर के अवसर पर रावण और वाणासुर सीता स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये उपस्थित होते हैं, केशवदास यह उचित नहीं समझते कि इन दोनों राक्षसों की उपस्थिति दृश्य के अंत तक रहे, इसलिए उन्होंने रावण से यह प्रतिज्ञा कराई है कि :—

" अब सिय लिये बिन हौं न टरौं।
कहुँ जाहुँ न तौं लग नेम धरौं॥
जब लौं न सुनौं अपने जन को।
अति आरत शब्द हते तन को॥"

उसी समय एक राक्षस आकर करुण-क्रन्दन करता है; फिर तो —

" रावण के वह कान पर्यो जब
छोड़ स्वयंवर जात भयो तब"

यहाँ पर केशवदास ने सीता स्वयंवर की घटना को आकस्मिक रूप से बदल देने की चेष्टा की है, 'प्रसन्नराघव' नाटक के आधार पर ही केशवदासजी ने रावण को स्वयंवर से इस प्रकार हटाने का कौशल किया है।

केशवदासजी की प्रवृत्ति राजनीति और कूटनीति के प्रदर्शन की ओर थी। इसी कूटनीति में इनके पात्र अत्यन्त प्रवीण हैं। कभी-कभी केशवदास जी ने इस कूटनीति का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ऐसे पात्रों द्वारा कराया गया है जिसके कारण उन पात्रों की शालीनता पर अनुचित आघात पड़ता है। भरत के प्रति राम के हृदय में निश्छल एवं अगाध प्रेम था वे ही राम जब भरत के ऊपर संदेह प्रगट करते हुए लक्ष्मण से अयोध्या में रहकर भरत के कार्यों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने के लिए कहते हैं तो यह कूटनीति का प्रदर्शन चाहे भले ही हो लेकिन उदार हृदय राम की ऐसी भावनायें औचित्य की कसौटी पर ठीक नहीं समझी जा सकतीं।

" धाम रहौ तुम लक्ष्मण राज की सेव करौ।
मातनि के सुनि तात सो दीरघ दुख हरौ॥
आय भरत्थ कहा धौं करे जिय भाय गुनो।

जो दुख देइ तो ले उरगौ यह बात सुनो,"॥

भरत पर संदेह प्रगट कराकर केशव ने राम के उस प्रशस्त चरित्र में तो परिवर्तन किया किन्तु इसका नितान्त ध्यान न रखा कि उस परिवर्तन से राम की सज्जनता में कितना व्याघात पड़ सकता है। रामचन्द्रिका में राम का चरित्र मानस की अपेक्षा कितना विकृत कर दिया गया है, यह विचारणीय है।

राजनीति-कुशल रावण सीता के हृदय को राम से विमुख और अपनी ओर प्रेरित करने के लिये विदग्धतापूर्ण वाक्यावलि का प्रयोग करता है। इस स्थल पर राजनीति-पटु केशव ने ऐसी वाक्यावलियों का प्रयोग कराया है जिनका उन परिस्थितियों में किया जाना अत्यंत स्वाभाविक है। श्लेष के प्रयोग के द्वारा रावण राम के चरित्र को सीता के समक्ष इस विकृत रूप से प्रस्तुत करता है जिससे सीता राम से उदासीन हो जाये :—

"सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै।
इतो सोचतो राम काजै न कीजै॥
तुम्हैं देवि दूषै हितू ताहि मानै।
उदासीन तो सो सदा ताहि जानै॥
महा निर्गुणी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै"॥

इन्द्रजीतसिंह के दरबार में रहने के कारण केशवदास को कूटनीति का वैयक्तिक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध हुआ था। भिन्न-भिन्न प्रकारों से अपने हित साधन के उपाय राजनीति-कुशल भलीभाँति जानते हैं। राज दरबारों में वार्तालाप करने की एक विशेष विधि होती है और राज दरबार की मर्यादा का ध्यान प्रत्येक व्यक्ति को रखना अनिवार्य हो जाता

हैं। अंगद रामचन्द्र का दूत बनकर रावण के दरबार में उपस्थित हुआ। उस अवसर पर रावण ने ऐसा प्रयत्न किया कि जिससे राम के दल में फूट पड़ जावे। उसने अंगद से कहा कि राम ने किस प्रकार छल करके उसके पिता का वध किया है अब यदि अत्यंत बलशाली पुत्र होकर के भी तुम अपने पिता बालि के वध का प्रतिशोध न लो तो अत्यन्त खेदजनक बात है :—

"तोसे सपूतहिं जाइ के बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अँगद सँग ले मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपु मारे" ॥

रावण ने अंगद के हृदय में केवल विद्वेष की भावना ही प्रज्वलित करने का प्रयत्न नहीं किया अपितु यह भी आश्वासन दिया कि यदि अंगद अपने पिता के वधिक से बदला लेना चाहें तो वह समस्त सेना देकर उसकी सहायता करेगा। इस प्रकार केशव ने भिन्न-भिन्न स्थलों पर अपनी कूटनीतिज्ञता का अच्छा परिचय दिया है अन्यथा प्रबंध के विशिष्ट स्थलों को छोड़कर केशव की वृत्ति कथा वर्णन में न रम सकी। उन्होंने बीच-बीच में रामचरित्र सम्बन्धी अनेकों घटनाओं को या तो छोड़ दिया है या चलते रूप से उनका संकेत मात्र ही कर दिया है। कथा का विभाजन कांडों में न होकर प्रकाशों में है पर कथा का विस्तार अनियमित है। उसमें प्रबन्धात्मकता नहीं है। प्रारम्भ में न तो रामावतार के कारण ही दिये गये हैं और न राम के जन्म का ही विशेष विवरण है। राजा दशरथ का परिचय देकर और रामादि चारों भाइयों के नाम गिनाकर विश्वामित्र के आने का वर्णन कर दिया गया है। ताड़का और सुबाहु-वध आदि का वर्णन संकेत रूप में ही है। जनकपुर में धनुप यज्ञ का वर्णन सांगोपाँग है। केशव का सम्बन्ध राज दरबार से होने के कारण, यह वर्णन स्वाभाविक एवं विस्तृत

है। सीता की अग्नि परीक्षा (प्रकाश २०) तक तो यत्किंचित रूप से कथा का निर्वाह किया गया है, किन्तु आगे के वर्णन जैसे रामकृत राज्य-श्री निन्दा तथा राम की दैनिक क्रियाओं का दिग्दर्शन कराने में कथा का प्रवाह अवरुद्ध सा हो गया है। यहाँ तक कि यदि २४ वाँ तथा २५ वाँ प्रकाश इस ग्रंथ से निकाल दिये जायें तो भी कथा प्रसंग में कोई बाधा न आवेगी।

कथा की दृष्टि से रामचन्द्रिका में प्रसंगों का नियमित विस्तार नहीं है। जहाँ अलकार कौशल का अवसर अथवा वाग्विलास का प्रसंग मिला है वहाँ तो केशवदास ने विस्तार पूर्वक वर्णन किया है और जहाँ कथा की घटनाओं की विचित्रता है, वहाँ कवि मौन हो गया है। अतः रामचन्द्रिका की कथावस्तु में काव्य-चातुर्य स्थान-स्थान पर देखने को तो अवश्य मिलता है, पर चरित्र-चित्रण या कथा की प्रबन्धात्मकता के दर्शन नहीं होते।

केशव के चरित्र-चित्रण में हमें न तो लोक शिक्षा का आदर्श मिलता है और न कोई धार्मिक या दार्शनिक सिद्धान्त ही। तुलसीदास ने जिस प्रकार विश्लेषणात्मक पद्धति पर पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है, जिस प्रकार उन्होंने मनुष्य की साधारण से साधारण परिस्थितियों का देवत्व के साथ मधुर उत्कर्ष कराया है तथा जीवन के व्यापक एवं सर्वांगीण चित्र को अंकित किया है, वह हमें केशव में दृष्टगोचर नहीं होता, इनकी कथावस्तु पर प्रसन्न राघवनाटक और हनुमन्नाटक का अत्यधिक प्रभाव है पर वस्तु का निर्वाह विशेष रूप से वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही किया गया है।

परशुराम संवाद की योजना केशवदास जी ने वाल्मीक रामा-

यण के आधार पर बरात के लौटने पर ही की है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में इस प्रसंग में एक सुन्दर परिवर्तन किया है। धनुभंग हो जाने के कारण स्वयंवर में उपस्थित हुए कतिपय राजाओं में यह विवाद होने लगा कि वे ही सीता जी का वरण करेंगे भले ही शिव के धनुष को रामचन्द्रजी ने क्यों न तोड़ा हो। क्रोधावेश में वे कहने लगे "हमहि अछत को कुँवरिहि ब्याहा" इस प्रकार के द्वंद्व की शांति तुलसीदास जी ने परशुराम के आगमन के द्वारा कराई है। राम का विवाह सम्पन्न हो जाने के पश्चात् उसमें ऐसे प्रसंगों का समावेश करना जो हृदय में यह व्याघात पहुँचा दे कि सीता का स्वयंवर सानन्द समाप्त हो जाने पर भी ऐसी विपत्ति का संगठन बाकी रह गया, रस की दृष्टि से उचित नहीं है राम के विवाह हो जाने के पश्चात उसमें किसी प्रकार की कठिनाई का उपस्थित होना हृदय की कोमल भावना स्वीकार नहीं कर सकती।

प्रबंध कवि के लिए यह अनिवार्य है कि वह कथा की क्रमबद्धता का पूर्ण ध्यान रक्खे। कथा के वर्णन में एक भी ऐसे प्रसंग का समावेश नहीं होना चाहिए जिससे या तो कथा का कोई सम्बन्ध न हो और न वस्तु सम्बन्धी किसी प्रमुख घटना का लोप ही कराया जाये अन्यथा पाठक को कथा के सूत्र को मिलाने में अत्यंत कठिनाई होगी।

केशवदास ने रामचन्द्रिका में केवल उन्हीं स्थलों का अंकन विस्तार के साथ किया है जो उनकी वृत्ति के लिए रुचिकर है अन्यथा अन्य घटनाओं का या तो पूर्ण अभाव ही है और या उनका केवल निर्देश ही। .. कारण है कि उनके पात्रों में सजीवता नहीं आने पाई है। एक घटना में पाठक निमग्न

ही नहीं हो पाता कि शीघ्र ही दूसरा प्रसंग आ जाता है दशरथ राम को राज्य देने का विचार कर रहे हैं।

दशरत्थ महा मन मोद रये। तिन बोलि वशिष्ठ सों मंत्र लये॥
दिन एक कहौ सुभ सोभ रयो। हम चाहत रामहिं राज दयो॥
यह बात भरत्थ की मातु सुनी। पठऊँ बन रामहिं बुद्धि गुनी॥
तेहि मन्दिर मों नृप सों विनयो। वर देहु हुतो हमको जु दियो॥
नृप बात कही हँसि हेरि हियो। वर माँगि सुलोचनि मैं जु दियो॥
(कैकयी) नृप तासुविसेस भरत्थ लहैं। वरषैं वन चौदह राम रहैं॥

और :—

उठि चले विपिन कहँ सुनत राम। तजि तात मात तिय बन्धु धाम

केवल सात पंक्तियों ही में केशव में राम वन गमन की कथा का वर्णन कर दिया है। कैकयी का चरित्र ऐसे वर्णन के कारण अत्यन्त निम्नकोटि का हो गया है।

इससे यह ध्वनित होता है कि केकयी का शायद राम से स्वाभाविक विरोध था। केशवदास ने इस प्रसंग में मंथरा की कोई कल्पना नहीं की। रामचरित मानस में तुलसीदास ने इस प्रसंग में स्त्रियोचित भावनाओं एवं मनोवेगों का अत्यंत प्रगल्भता के साथ चित्रण किया है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र जी (रामचन्द्रिका में) जब राजभवन का त्याग करके वन को जाते हैं उस समय न तो वे शोक-संतप्त पिता से विदा लेने जाते हैं और न पुत्र-वियोग से दुखी माता कौशल्या के पास, और प्रत्युत वे सीधे वन-पथ पर लक्ष्मण और जानकी के साथ जाते दिखायी पड़ते हैं।

"विपिन मारग राम विराजहिं,
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहिं।

केशव ऐसे प्रसंगों पर मानों यह अनुमान कर लेते हैं कि पाठक कथावस्तु से तो परिचित है ही, केवल काव्य-चमत्कार

विशेष स्थलों पर प्रकट कर देना उचित है। बीच-बीच में कुछ प्रसंगों को छोड़ देने के कारण पात्रों के चरित्रों पर भी आघात पहुँचा है। विराध को देखकर सीता भयभीत होती हैं इस छोटे से अपराध के कारण ही राम उसे मार डालते हैं। इस कारण राम का चरित्र एक साधारण संसारी जीव का सा हो गया है।

विपिन विराध बलिष्ठ देखियो। नृप तनया भयभीत लेखियो।
तब रघुनाथ बाण कै हयौ। निज निरवाण पंथ को ठयौ॥

सीता तथा कौशिल्या के चरित्र में भी केशवदास जी ने परिवर्तन किया है, किन्तु यदि केशवदास जी द्वारा वर्णित भावनाओं के आधार पर सीता और कौशिल्या का चरित्र माना जावे तो वे एक साधारण स्त्री के रूप में ही दिखाई देती हैं। उनमें उस महानता तथा हृदय-गांभीर्य के दर्शन नहीं होते जो रामचरित-मानस में हैं। सीता की सुकुमारता देखकर तथा यह जानकर कि मेरी अनुपस्थिति में सीता माता-पिता की सेवा करेंगी और उन्हें धैर्य प्रदान करेंगी। राम उन्हें वन को साथ नहीं ले जाना चाहते। उस समय सीता संयत भाषा में यही कहती हैं कि मैं,

सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं,
मारग-जनित सकल श्रम हरिहौं।
पाँव पखारि बैठ तरु छाँही,
करिहौं वायु मुदित मन माहीं॥

(तुलसीदास)

लेकिन केशवदास ने वन में साथ-साथ जाते हुए सीता तथा राम का जो वर्णन किया है उसके द्वारा सीता का चरित्र रीतिकालीन राधा के समान ही हो गया है। केशवदास जी की शृंगारिक भावना अत्यन्त प्रबल थी अतः ऐसे मर्यादित स्थलों पर भी उन्होंने अपनी

वासनामूलक भावनाएँ प्रकट कर दी हैं। ये भावनाएँ इन स्थलों पर न तो उपयुक्त ही हैं और न आवश्यक ही।

कवितावली में तुलसी ने वन को जाती हुई कोमलांगी सीता का वर्णन किया है लेकिन वहाँ किसी ऐसी भावना का चित्रण नहीं, जो अमर्यादित हो।

पुर तें निकसीं रघुवीर वधू,
धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जल की,
पुट सूख गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक
पर्ण कुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की,
अँखियाँ अतिचारु चलीं जल च्वै।

केशव ने वन गमन में परिश्रान्त सीता तथा राम का वर्णन किया है। रामचन्द्र तो वल्कल वस्त्र के अंचल से सीता पर पंखा झलते हैं और सीता जी चंचल चारु 'दृगंचल' से उनकी ओर देखती हैं।

मग को श्रम श्रीपति दूर करें,
सिय को शुभ वलकल अंचल सों।
श्रम तेउ हरें तिनको कवि केशव,
चंचल चारु दृगंचल सों॥

और,

मारग की रज तापति है अति,
केशव सीतहि सीतल लागति।
प्यौ पद पंकज ऊपर पाइन,
दे जु चलै तेहि ते सुखदायिनि॥

पतिपरायणा सीता का पति के चरण-चिह्नों पर चरण रख

कर चलना प्रेम की भावना का अभिव्यंजक भले ही हो पर उस में सौम्यता एवं मर्यादा नहीं है। इसी विषय को तुलसी ने कितनी सुन्दरता के साथ वर्णित किया है :—

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता,
धरहिं चरन मग चलहिं सभीता।
राम सीय पद पंक बराये,
लखन चलहिं मग दाहिन बाँये॥

रामचरित मानस की विवेकिनी कौशिल्या राम बनवास के समय सहिष्णुता, हृदयगांभीर्य तथा विमल विचारों को प्रकट करती हैं। मनुष्य के जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित होती हैं जब दो समान धर्मों में द्वन्द्व होता है उस समय विशाल हृदय व्यक्ति ही यह निर्धारित कर सकते हैं कि उन्हें कौन सा कार्य करना चाहिये। राम के वनगमन का समाचार पाकर कौशिल्या अपने कर्त्तव्य का निर्णय नहीं कर सकीं। उनके मन में भाँति-भाँति के संकल्प विकल्प आ रहे हैं :—

राखि न सकहि न कहि सक जाहू,
दुहूँ भाँति उर दारुण दाहू।
राखउँ सुतहिं करउँ अनुरोधू,
धर्म जाहि अरु बंधु विरोधू॥

इन धार्मिक द्वन्द्वों के पश्चात् कौशिल्या अपने हृदय की कोमल भावनाओं को दबाकर यह कहती हैं :—

तात जाहुँ बलि कीन्हेउ नीका,
पितु आयसु सब धर्म क टीका।
जो पितु मातु कहेउ बन जाना,
तो कानन सत अवध समाना।

लोक-संग्रह का भाव रखने वाली कौशिल्या के इस चरित्र को

केशव ने रामचन्द्रिका में परिवर्तित कर दिया है। राम वन-गमन का समाचार पाकर वे साधारण स्त्री की भाँति क्रोधित होकर कहती हैं :—

रह्यो चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु,
न देखि सकैं तिनके उर दाहु।
लगी अब बाप तुम्हारेहि बाय,
करै उलटी बिधि क्यों कहि जाय।

कौशिल्या अयोध्या को छोड़कर राम के साथ वन जाने का भी अनुरोध करती हैं।

मोहि चलौ बन संग लिये। पुत्र तुम्हें हम देखि जिये।
औधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज भरत्थ करै॥

माता अपने पुत्र के सुख के लिये अधिक प्रयत्नशील रहती है और ऐसी परिस्थिति में कौशिल्या ने जो बातें कही हैं वे माता के हृदय के प्रेम की प्रचुरता की तो द्योतक हैं परंतु उक्त उद्वेग-जनक विचार कौशिल्या के उज्वल चरित्र के प्रतिकूल ही हैं। किसी उच्च आदर्श की रक्षा के लिये निज स्वार्थ का बलिदान उज्वल चरित्र और उन्नत विचारों का ही द्योतक है।

दशरथ, भरत तथा लक्ष्मण के चरित्रों का विकास 'राम चन्द्रिका' में नहीं किया गया है।

प्रिय पुत्र राम को वन भेजने के समय दशरथ को कितनी असह्य वेदना हुई तथा किस प्रकार राम के वियोग-जन्य दुख की ज्वाला में दशरथ ने अपना शरीर भस्मसात कर दिया, इसकी ओर केशव का ध्यान नहीं गया। राम वन-गमन की कथा अतिसंक्षेप में वर्णित होने से दशरथ के चरित्र का अंकन न हो सका।

लक्ष्मण का चरित्र सम्पूर्ण रामायण में एक विशिष्ट महत्व

रखता है। जिस प्रकार रामचन्द्र शालीनता तथा मर्यादापालन के लिये प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार लक्ष्मण पूर्ण कर्मवादी तथा उग्र स्वभाव के लिये प्रख्यात हैं। तुलसीदास जी ने लक्ष्मण के इस स्वभाव के कारण राम के चरित्र को और भी उज्ज्वल बना दिया है। लेकिन रामचन्द्रिका में लक्ष्मण को अपना चरित्र प्रकट करने का अवसर ही उपलब्ध नहीं हुआ है। परशुराम संवाद में भरत लक्ष्मण का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा राम वनवास के समय भी वे राम से केवल थोड़ा अनुनय-विनय करते हैं। लक्ष्मण के स्वभाव की उग्रता तथा चंचलता कहीं भी प्रदर्शित नहीं की गई है। जो लक्ष्मण भाग्य पर विश्वास करना कायरों का कार्य समझते थे उन्हीं लक्ष्मण को जब राम घर में रहने का उपदेश देते हैं तो वे आत्म-हत्या करने को उद्यत हो जाते हैं।

शासन मेटो जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ।

भरत के चरित्र में अवश्य कुछ परिवर्तन किया गया है। वे परशुराम संवाद में उपस्थित हैं। परशुराम की गर्वोक्ति को सुनकर विचलित होकर यह कहने लगते हैं :—

चंदन हूँ में अति तन घसिये, आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारे नृपति सहारे, सो जस लै किन जुग जुग जीजै।

जब राम ने जनप्रवाद को सुनकर सीता देवी के निष्कासन का विचार किया और भरत से यह कार्य करने को कहा तो भरत ने इस गर्ह्य कार्य को करने से तुरन्त ही इन्कार कर दिया।

"वो माता वैसे पिता, तुम सो भैया पाय।
भरत भयो अपवाद को, भाजन भूतल आय"॥

सीता-निर्वासन के प्रसंग पर भरत और शत्रुघ्न को अत्यधिक-

क्रोध हो रहा है, लेकिन यह अप्रिय कार्य राम के द्वारा ही किया जा रहा है इसीलिये वे शान्त हैं अन्यथा तीव्र विरोध करते। अतः वे राम के पास से हट जाते हैं।

"और होय तो जानिये, प्रभु सों कहा बसाय।
यह विचारि कै शत्रुघ्न, भरत गये अकुलाय।

केशवदास ने भरत को स्वतन्त्र बुद्धि एवं स्थिर विचार वाले के रूप में अंकित किया है। अधर्म का कार्य चाहे वह राम के द्वारा ही क्यों न किया गया हो भरत उसका विरोध किए बिना नहीं मानते। निरपराधिनी सीता को केवल जनप्रवाद के कारण ही निर्वासित करके राम ने एक महापाप किया था। स्वयं राम ने उसे स्वीकार किया है 'सीय-त्याग पाप से हिये सुहौं महा डरौं।' जब लव और कुश राम के द्वारा भेजी गई समस्त सेना का विध्वंस कर डालते हैं, उस समय भरत यही कहते हैं कि सीता को निकालकर हमने जो महापाप किया है उसी का दण्ड अब हमें न दो बालकों द्वारा मिल रहा है। लक्ष्मण जिस दिन से सीता को अकेला बन में छोड़ कर आये उसी समय से वे अपने कलंकित शरीर का त्याग करना चाहते थ और उपयुक्त स्थल पाकर ही अब उन्होंने प्राण विसर्जन कर दिये हैं।

"लक्ष्मण सीय तजी जब ते वन।
लोक अलीकन पूरि रहे तन॥
छोड़न चाहत ते तब ते तन।
पाप निमित्त कर्‌यौ मन पावन॥

भरत स्वयं राम से प्रश्न करते हैं कि कौन सा ऐसा अपराध था जिसके कारण उन्होंने सीता का परित्याग किया।

पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता॥

वे उस राम—जिसने ऐसा पातक किया है—के साथ रह कर दोष के भागी नहीं बनना चाहते प्रस्तुत युद्धस्थल में प्राण त्याग कर इस कलंक से मुक्त होना चाहते हैं :—

हौं तेहि तीरथ जाय मरौंगो ।
संगति दोष अशेष हरौंगो ।

भरत के इस चरित्र के द्वारा केशव ने राम के द्वारा सीता निर्वासन के कार्य की निन्दा की है। महाकवि भवभूति ने भी 'उत्तर रामचरित' नाटक में वासन्ती के द्वारा इस विचारधारा को प्रगट कराया है।

कथावस्तु के मार्मिक स्थलों की पहिचान करना श्रेष्ठ कवियों का ही विषय है रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने राम के जीवन की अत्यन्त मर्मस्पर्शिनी घटनाओं को चुन-चुन कर रखा है। केशवदास ने दशरथ मरण, राम वनयात्रा, सीता विरह आदि जो राम के जीवन की अत्यन्त करुणापूर्ण परिस्थितियाँ हैं उनको यथोचित स्थान नहीं दिया। सच तो यह है कि इन करुण परिस्थितियों में चमत्कारवादी केशव को पांडित्य प्रदर्शन करने का संयोग न था, इसलिये इन स्थलों की ओर उनका ध्यान न गया। यह कहना समीचीन नहीं है कि तुलसी ने इन कारुण्यपूर्ण अवस्थाओं का अत्यन्त प्रौढ़ एवं हृदयहारी चित्र अंकित कर दिया था इसलिये केशव ने इन दशाओं का वर्णन न किया। यदि केशव के हृदय में यह भावना होती तो वे तुलसीदास जी के ग्रन्थों की उपस्थिति में रामचरित संबंधी रचना ही न करते। प्रबन्ध काव्य में कथावस्तु का निरन्तर प्रवाह होना चाहिये। मुख्य कथावस्तु से सम्बन्ध रखने वाले प्रसंगों का समावेश ही उसमें किया जा सकता है। जिन प्रसंगों का सम्बन्ध प्रमुख कथा से नहीं है, उनको समाविष्ट करने का प्रयास प्रबन्ध कवि न

करेगा। कथावस्तु का विकास इस स्वाभाविकता एवं रोचकता के साथ किया जायगा जिससे पाठक का हृदय उन घटनाओं में निमज्जित हो जाय। वह घटना उसे वास्तविक प्रतीत होने लगे। जिस रस को लेकर उस प्रसंग की अवतारणा की गई है, उसकी पूर्ण निष्पत्ति होनी चाहिये। अपनी कथावस्तु के निर्देश में प्रबन्ध कवि एक शब्द भी ऐसा प्रयोग न करेगा, जिससे घटना की रोचकता नष्ट हो जावे और आगे होने वाले क्रिया-कलाप उसे केवल कौतूहलपूर्ण ही प्रतीत हों उनमें रस-निमज्जित करने की क्षमता न हो।

तुलसीदास जी ने रामायण में राम की मानवीय लीलाओं का वर्णन करते समय पाठकों को बार-बार यह स्मरण दिलाने का ध्यान रखा है कि राम तो वास्तव में परब्रह्म हैं, वे तो मानवों को आदर्श चरित की शिक्षा देने के लिये पृथ्वी पर आये हैं। जब सीता-हरण के उपरान्त राम विलाप करते हैं तो उस समय कवि पाठकों को यह चेतावनी देता है :—

पर दुःख हरण शोक दुख नाहीं।
भा विषाद तिनके मन माहीं॥
पूरण काम राम सुखराशी।
मनुज चरित कर अज अविनाशी॥

सीता-विरह के कारण राम के हृदय में जो विषाद और शोक हुआ उसे तुलसीदास ने इस ढंग से प्रकट किया है जिस से राम के पूर्ण ब्रह्म होने का भी आभास पाठकों को मिल जाता है।

केशवदास ने राम के देवत्व का वर्णन स्थान-स्थान पर किया है। वाल्मीकि द्वारा उपदेश दिये जाने पर कवि ने 'सोई परब्रह्म श्री राम हैं, अवतारी अवतारमणि' को अपना इष्टदेव

माना। सीता की अग्नि-परीक्षा तथा राम के राजतिलक के अवसर पर ब्रह्मादि देवताओं द्वारा की गई स्तुति में राम के विष्णुत्व का पूर्ण प्रतिपादन हुआ है। रामचन्द्रिका में कहीं-कहीं कवि ने इस प्रकार के विचार प्रकट किये हैं जिससे पाठकों का हृदय उस घटना में लीन नहीं होता। यदि कारुणिक परिस्थितियों का चित्रण करना है, तो प्रत्येक शब्द और वाक्य में इतनी क्षमता होनी चाहिये कि वे पाठक को रसलीन कर सकें। रोते हुए व्यक्ति को देखकर (व्यक्ति के) हृदय में समवेदना की भावना जागृत होना स्वाभाविक ही है, किन्तु यदि उस समवेदना करने वाले व्यक्ति को पहले ही यह ज्ञात हो जावे कि वह व्यक्ति तो झूठमूठ रो रहा है, तो उसकी सहानुभूति, वीप्सा और क्रोध में परिणित हो जायगी।

शूर्पणखा को विरूप करने के उपरान्त रामचन्द्रजी ने सीता से यह कहा :—

राजसुता इक मन्त्र सुनौ अब।
चाहत हौं भुव भार हर्यौ सब॥
पावक में निज देहहिं राखहु।
छाय शरीर मृगै अभिलाखहु॥

राम ने सीता से निजस्वरूप-अग्नि में समर्पित करने के लिये और छाया शरीर से मृग की अभिलाषा करने के लिये कहा। इस कथन से आगे की जो घटनाएँ वर्णित हैं उनमें रस-मग्न करने की शक्ति नहीं रही। सीताहरण की घटना ऐसी प्रतीत होती है, मानों राम ने ही इसकी पूर्व योजना की हो। इसी प्रकार जब सीता विलाप करती हैं तो पाठक के हृदय में करुणा की भावना जागृत नहीं होती। पाठक यह समझता है कि वास्तविक सीता का अपहरण नहीं हुआ यह तो सीता देवी का छाया-

शरीर है जिसे रावण राक्षस उठाये ले जा रहा है। इस प्रकार के वार्तालाप से प्रसंग की रोचकता सर्वथा नष्ट हो गई है और उसका रस भी नष्ट हो गया है।

लव कुश संग्राम में राम की सेना के बड़े-बड़े वीर पराजित होते हैं। लक्ष्मण, हनुमान और अंगद, जिन्हें अपने पुरुषार्थ का बड़ा गर्व था वे उन दो अल्पवयस्क मुनि कुमारों द्वारा परास्त कर दिये गये। वीर रस का सुन्दर समावेश इस प्रसंग में किया गया है; किन्तु जब युद्धस्थल पर जाते समय भरत ने यह कहा कि अपनी सेना के व्यक्तियों के गर्व को नष्ट करने के लिये आपने यह कौतुक किया है तब श्रीराम मौन धारण करते हैं जिससे आगे का युद्ध खिलवाड़ सा प्रतीत होता है, उसमें रस-मग्न करने की क्षमता नहीं है :—

वानर राक्षस रिच्छब तिहारे।
गर्व चढ़े रघुवंशहि भारे॥
ता लगि कै यह बात बिचारी।
हौ प्रभु संतत गर्व प्रहारी॥

सीता के निर्वासन की घटना राम के जीवन की अत्यन्त कारुण्यपूर्ण घटना है। लोकानुरंजन के किये अलीक-प्रवाद के कारण ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने जगद्वन्दनीय सीता को निष्कासित किया। रामचन्द्रिका में ब्रह्मा जी ने सीता से यह प्रार्थना की कि उन्हें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे राम ब्रह्म-लोक को लौट चलें।

राम चले सुनि शूद्र की गीता।
पंकजयोनि गये जहँ सीता॥
देवन को सब कारज कीन्हो।
रावण मारि बड़ो यश लीन्हो॥

मैं विनती बहु भाँतिन कीनी।
लोकन की करुणारस भीनी॥
माँगत हौं वरु मोम्हँ दीजै।
चित में और विचार न कीजै॥
आजु ते चाल चलौ तुम ऐसे।
राम चलैं वयकुंठहिं जैसे॥

ब्रह्मा के निवेदन पर वर्णित सीता निष्कासन की कथा में करुण रस की प्रतिपत्ति नहीं हो पाती। राम ने अत्यन्त प्रसन्न होकर सीता से एक वरदान माँगने के लिये कहा :—

एक समय रघुनाथ महामति।
सीतहि देखि सगर्भ बढ़ी रत॥
सुन्दरी माँगु जो जी मह भावत।
मो मन तो निरखैं सुख पावत॥

तब सीता ने निवेदन किया :—

जो तुप होत प्रसन्न महामति।
मारि बढ़ै तुम ही सों सदा रति॥
जो सब ते हित मोपर कीजत।
ईश दया करिकै वरु दीजत॥
हैं जितने ऋषि देव नदी तट।
हों तिनको पहिराय फिरौं पट॥

इस प्रकार स्वयं सीता भी वन में जाने के लिये उत्सुक हैं। इसी के उपरान्त गुप्तचर ने एक जन-प्रवाद की घटना राम को सुनायी और प्रातःकाल सीता का निर्वासन हुआ।

कारुणिक परिस्थितियों में ला॰॰ ॰ाने के लिये कवि को यह आवश्यक है कि वह घटनाओं एवं परिस्थितियों को इस प्रकार से चित्रित करे, जिससे वे सत्य प्रतीत हों। सीता और

राम की कारुणिक परिस्थितियों को वैसे तो केशवदास जी ने संक्षेप में ही वर्णित किया है और वहाँ भी कुछ प्रसंग ऐसे ला उपस्थित किये हैं जिससे उन करुण से करुण दृश्यों में भी पाठकों का हृदय लीन नहीं हो पाता।

४

केशव का प्रकृति निरीक्षण

प्रकृति के प्रति केशव के हृदय में अनुराग न था। हमारे प्राचीन कवि प्रकृति को उद्दीपन के रूप में ही ग्रहण करते आये हैं उसको आलम्बन बनाने की चेष्टा उन्होंने कम की है। वस्तु परिगणन शैली पर ही अधिकांश रूप में इन कवियों ने प्रकृति का वर्णन किया है। हृदय की रागात्मक सत्ता के साथ प्रकृति का सामंजस्य उपस्थित नहीं किया गया है। संस्कृत साहित्य में जिस संश्लिष्ट पद्धति का पालन होता आया था उसे हिन्दी के कवियों ने बहुत कम मात्रा में ग्रहण किया। कालिदास की उक्ति "जन पद वधू लोचने पीयमानः" में लक्षणाशक्ति से मेघ के साथ हृदय साम्य उपस्थित किया गया है। इस प्रकार कवि ने सहानुभूतिपूर्वक बाह्य प्रकृति एवं अन्तः प्रकृति के साथ आत्मीयता प्रदर्शित की है। केवल तुलसी, सूर, जायसी ही प्रकृति के साथ आत्मीयता प्रगट कर सके हैं, परन्तु इन कवियों ने भी कथानक के बीच-बीच में गौण रूप से ही प्रकृति की ओर ध्यान दिया। केशव अलंकारवादी कवि थे। उनका दृष्टिकोण संकुचित था। मानव हृदय की कुछ वृत्तियों का अध्ययन तो केशव ने किया पर प्रकृति की उल्लासपूर्ण सामग्री से वे उदासीन ही रहे। आलंकारिक रूप में ही अधिकांशतः प्रकृति का चित्रण किया गया है। भाव के उद्रेक में प्रकृति वर्णनों से सहायता नहीं ली गई। प्रकृति के जितने चित्र केशवदास ने अंकित किये हैं उनसे यह प्रगट नहीं होता कि केशवदास में प्रकृति निरीक्षण

के प्रति अनुराग था। अयोध्या के उपवन, पंचवटी वर्णन तथा अगस्त्य मुनि के आश्रम के वर्णनों में उपमानों की खोज में ही केशव की प्रतिभा उलझी रही। प्रस्तुत विषय की रमणीयता में उनका मन न लगा।

साहित्य शास्त्रियों ने यह आदिष्ट किया है कि प्रबन्ध-काव्य की रचना करते समय प्राकृतिक दृश्यों का निरूपण अवश्य किया जाय। प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल तथा विभिन्न ऋतु वर्णन के साथ साथ नदी, सरोवर और वीथिका का वर्णन हो कथावस्तु को रोचक बनाते हुए प्रसंगानुकूल प्रबन्ध कवि उक्त दृश्यों की योजना करके प्रकृति के प्रति अपने हृदय की रागात्मक मनोवृत्ति की अभिव्यंजना करते हैं। माध्यमिक काल में हिन्दी के कवियों ने प्रकृति के पदार्थों का प्रयोग बहुधा उपमानों के रूप में ही किया है। प्रकृति का संश्लिष्ट और स्वच्छन्द चित्रण नहीं किया गया। रामचन्द्रिका मे केशवदास जी ने प्राकृतिक दृश्यों का प्रचुर प्रयोग किया है। यद्यपि जहाँ तक दृश्यों का प्रश्न है कवि ने उन्हें स्थान स्थान पर नियोजित किया है, किन्तु प्रकृति का वर्णन करते समय कवि ने नेत्र और हृदय से काम नहीं लिया, वहाँ तो बुद्धि-वैभव है। कवि ने प्रकृति का रूप अंकित करना प्रारंभ किया नहीं कि उसकी आलकारिक मनोवृत्ति जागृत हो जाती थी और फिर कवि प्रकृति का चित्रण न करके सादृश्यमूलक पदार्थों को ढूँढ़ ढूँढ़कर उपस्थित करने में लग जाता था। हिन्दी के प्रबन्धकारों ने अपने काव्य में प्राकृतिक स्थलों का उतना समावेश नहीं किया जितना केशवदास ने रामचन्द्रिका में किया है; किन्तु केशव के प्रकृति के चित्रों में प्रकृति का वास्तविक और सजीव चित्रण नहीं किया गया है।

प्रथम प्रकाश ही में जब विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा कराने के

हेतु सहायता प्राप्त करने के लिये अयोध्या आते हैं, तो कवि ने उन समस्त प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है जिन्हें कि मार्ग में आते हुए विश्वामित्र ने देखा। रामचन्द्रिका में केवल उन्हीं प्रसंगों का विस्तार के साथ वर्णन होना चाहिये जो राम की कथा से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखें। केशव ने ग्रन्थ के प्रारंभ में न तो राम जन्म का ही वर्णन किया है और न राजा दशरथ का पूर्ण परिचय ही। कवि ने अति संक्षेप में दशरथ और उनके पुत्रों का परिचय दे दिया है परन्तु विश्वामित्र द्वारा देखी गई प्राकृतिक शोभा का कवि ने अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णन किया है। सरयू नदी, राजा दशरथ के हाथी, बाग, अवधपुरी, आदि का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

प्रथम प्रकाश के दो तिहाई भाग में प्राकृतिक वर्णन ही किया गया है। सरयू नदी को देखकर विश्वामित्र कहते हैं—

'मुनि आये सरजू सरित तीर।
तहँ देखे उज्ज्वल अमल नीर॥
नव निरखि निरखि द्युति गति गंभीर।
कछु वर्णन लागे सुमति धीर'॥

नेत्रों द्वारा देखी गई सरजू नदी की शोभा का वर्णन विश्वामित्र ने नहीं किया, अपितु ऐसी वाक्यावलियाँ प्रकट कराई गई हैं जिनमें विरोधाभास का लालित्य प्रकट किया गया है :—

अति निपट कुटिल गति यदपि आप।
तउ देत शुद्ध गति छुवत आप॥
कछु आपुन अध अधगति चलन्ति।
फल पतितन कहँ ऊरध ऊलन्ति॥

यद्यपि सरजू नदी स्वयं तो टेढ़ी चाल वाली है परन्तु औरों को पानी छूते ही सूधी गति (स्वर्गवास) देती है। स्वयं तो नीचे

की ओर चलती है, परन्तु पापियों को ऊँचे जाने का फल देती है (देवलोक भेजती है)। इस प्रकार के भावाभिव्यंजन ही में कवि की रुचि लगी रही। नदी का स्वाभाविक चित्र नहीं अंकित किया गया।

बाग के वर्णन में कवि का हृदय उफान को नैसर्गिक सुषमा में लीन नहीं हुआ, वह तो उसके लिये उपमान की राशि संग्रहीत करने में व्यस्त हो जाता है।

देखि बाग अनुराग उपज्जिय।
बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय॥
राजति रति की सखी सुवेषनि।
मनहु वहति मनमथ सन्देशनि॥

विश्वामित्र के द्वारा प्रकृति का वर्णन कराते समय कवि को यह न भूल जाना चाहिये था कि विश्वामित्र एक विख्यात साधु हैं। उनके द्वारा किया गया शृंगारिक वर्णन लोकाचार की दृष्टि से अरुचिकर ही माना जायगा। 'वनवारी' के वर्णन के द्वारा कवि ने वन कन्या का रूप भी उसी पद्य से प्रकट कराया है। यद्यपि उस पद्य का यथार्थ अर्थ तो फुलवारी के सम्बन्ध ही में है पर श्लेष के द्वारा जो अर्थगर्भित है वह विश्वामित्र के मुख से अशोभन ही प्रतीत होता है। किस पात्र से क्या कहलवाना चाहिये, इसका ध्यान केशवदास जी ने नहीं रखा है। अथवा आलंकारिक मनोवृत्ति ने कवि का हृदय इतना अभिभूत कर लिया कि वे पात्र और अपात्र, प्रसंग और अप्रसंग का भी ध्यान न रख सके :—

देखी वनवारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी।
अति तपमय लेखी गृहथित पेखी जगत दिगंबर जानी॥
जग यदपि दिगंवर पुष्पवती नर निरखि निरखि मनमोहै।

पुन पुष्पवती तन अति अति पावन गर्भ सहित सब सोहै ॥
पुनि गर्भ-संयोगी रतिरस भोगी जगजन लीन कहावै ।
गुणि जगजन लीना नगर प्रवीना अति पति के मन भावै ॥

विश्वामित्र को वह वाटिका का एक दिगम्बर (वस्त्ररहित) पुष्पवती (रजोधर्मा) बालिका के रूप में दिखलाई देती है। इस प्रकार के विचार विश्वामित्र के प्रसंग में लाकर कवि ने श्लीलता को आघात पहुँचाया है। अवधपुरी के राजमहलों पर फहराती हुई पताकाएँ कवि को द्रोणाचल पर्वत की शिखर पर उगने वाली दिव्य औषधियाँ सी दिखलाई देती हैं। थोड़ा सा भी साम्य मिल जाने पर केशवदास जी ने दूर दूर से उपमानों को खोज निकाला है। जिस विषय का वर्णन किया गया है उसका यथातथ्य वर्णन न किया जाकर उपमान और उत्प्रेक्षा की लड़ियाँ पिरोई गई हैं :—

शुभ द्रोण गिरिगण शिखर ऊपर उदित औषधि सी मनौ।
बहु वायु बस बारिद बहोरहि अरुझि दामिनि द्युति मनौ ॥

(२) विश्वामित्र आश्रम का वर्णन करते समय कवि ने, अनेकों वृक्षों के नाम गिना दिये हैं। किसी वन का वर्णन करने के लिये यही आवश्यक नहीं है कि केवल वृक्षों के नाम ही उल्लिखित कर दिये जावें, कवि को भौगोलिक स्थितियों का भी ध्यान रखना चाहिये। केशवदास जी के काव्य सिद्धान्तानुसार वन-वर्णन में विशिष्ट वृक्षों का नामोल्लेख ही प्रमुख है, भले ही वे वृक्ष वहाँ उगते भी न हों।

(३) राम और लक्ष्मण को लेकर जब विश्वामित्र जनकपुर में धनुष यज्ञ देखने के लिये आते हैं, उस प्रसंग में प्रातः कालीन सूर्य का वर्णन किया गया है। उषःकालीन सूर्य की रम्य रश्मियाँ संसार में व्याप्त हैं। उस रमणीय वातावरण का भव्य चित्र कवि ने अङ्कित किया है :—

अरुणगात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ मय।
मानहु केशवदास कोकनद कोक प्रेममय॥
परिपूरण सिन्दूर पूर कैधौं मङ्गल घट।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यौ माणिक मयूख पट॥

सूर्य के वाह्य रूप को चित्रित करते हुए कवि ने उसके सौन्दर्य से अभिभूत हृदय की सुकुमार भावना को भी प्रकट किया है। लेकिन वर्ण साम्य की भावना से पराभूत होकर कवि ने उसे रक्त भरा खप्पर समझ लिया :—

कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को,

सूर्य को कापालिक का खून भरा खप्पर कह देने से पूर्व में जिस मनोज्ञता के साथ सूर्य का वर्णन किया गया है उसमें बड़ा विक्षेप हो जाता है; सुन्दर चित्रों के साथ बुरे चित्र इतनी प्रचुरता के साथ आ गये हैं जिनके कारण सुन्दर दृश्य भी हृदय को आकृष्ट नहीं कर पाते।

जनकपुर के सरोवरों का कवि वर्णन करना चाहता है किन्तु वह उसी दोहे में श्लेष के द्वारा एक पूर्णयौवना सौभाग्यवती स्त्री का भाव भी आरोपित कर देता है। इससे प्रकृति निरूपण में बड़ी वाधा पड़ जाती है। सभङ्ग श्लेष के द्वारा दो अर्थ लगाने में बुद्धि को व्यायाम करना पड़ता है :—

तिन नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन।
जलज हार शोभित न जहँ प्रगट पयोधर पीन॥

(४) पंचवटी में जब राम सीता और लक्ष्मण पहुँचे तो वहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता का कवि वर्णन करता है। वहाँ वृक्ष फूल और फल से लदे हुए हैं, कोयल सुन्दर स्वर में गा रही है, मोर नाच रहे हैं, शारिका और तोते भी कलरव कर रहे हैं :—

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे कोकिल कुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी, पिय रसपूरी बन बन प्रति नाचति डोलैं॥

किन्तु पंचवटी के वास्तविक चित्रण की ओर कवि का ध्यान अधिक देर तक नहीं रहा। शब्दों की करामात दिखाने और अनुप्रास व यमक अलंकार की छटा दिखाने के लिये उसने उस पंचवटी को 'धूर्जटी' का रूप प्रदान कर दिया है :—

सब जाति फटी दुःख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीच घटी हू घटी जगजीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी बन पंचवटी॥

(५) दण्डकारण्य के चित्रण में कवि ने केवल प्रथम पंक्ति में ही आँखों देखा सा चित्र अङ्कित किया है, आगे के पद्य में कवि ने समता रखने वाले रूपक और उत्प्रेक्षाओं का समावेश किया है :—

शोभित दंडक की रुचि बनी। भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी॥
सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्री फल भूरि भयो जहँ बसै॥

दण्डक वन की शोभा कवि को एक बड़े राजा की सेवा के समान लगती है; क्योंकि जैसे राजा की सेवा करने से श्रीफल (लक्ष्मी का वैभव) प्राप्त होता है वैसे ही उस वन में श्रीफल (बेल के फलों) की अधिकता है।

वह दण्डकारण्य कभी तो प्रलयकाल की भयंकर वेला के समान दिखाई देता है और कभी श्री हरि की मूर्ति के समान। शब्द-साम्यता और अत्यधिक अलङ्कार-प्रियता के कारण दण्डक वन का वर्णन एक शब्द जाल ही है। प्राकृतिक और भौगोलिक वर्णन की ओर कवि का ध्यान नहीं है। अर्जुन और भीम को

राम-काल में ला उपस्थित करना इसका द्योतक है कि कवि केवल आलङ्कारिक योजना करने ही में लीन है। न तो उसे इस बात की चिन्ता है कि उसका प्राकृतिक वर्णन सत्यता से कितनी दूर है और न वह काल दोष से बचना ही चाहता है। पांडव और भीम शब्दों से श्लेष से ककुभ और अम्लवेतस दो वृक्षों से आशय है और इसी अलङ्कार की योजना के लिये एक युग पीछे होने वाले पात्रों की अवतारणा कर ली गई :—

वेर भयानक सी अति लगै।
अर्क समूह जहाँ जगमगै॥
नैनन को बहु रूपन ग्रसै।
श्री हरि की जनु मूरति लसै॥
पांडव की प्रतिमा सम लेखो।
अर्जुन भीम महामति देखो॥

(६) गोदावरी नदी के वर्णन में भी केशवदास की विशिष्ट अलङ्कारों को समाविष्ट करने की रुचि परिलक्षित होती है। वहाँ न तो बहते हुए जल का वर्णन है और न तटों की शोभा का निरूपण, विरोधाभास और उपमा आदि अलङ्कारों का ही प्रयोग है।

रीति मनो अविवेक की थापी।
साधुनि की गति पावत पापी॥
कंजन की मति सी बड़ भागी।
श्री हरि मन्दिर सों अनुरागी॥
निपट पतिव्रत धरिणी।
मग जन को सुख करिणी॥

विषमय यह गोदावरी, अमृतनि के फल देति।
केशव जीवन हार को दुःख अशेष हरि लेति॥

गोदावरी नदी के जल का पान करने से पापी भी मोक्ष को प्राप्त करते हैं, अतः इसने अविवेक की सी रीति चलाई है। जिस प्रकार ब्रह्मा जी की मति श्री हरि में अनुरक्त रहती है उसी प्रकार यह गोदावरी भी सब को वैकुंठ भेजा करती है। समुद्र (पति) की सेवा करती हुई रास्ता चलने वाले लोगों को सुख देती है। नदी की प्राकृतिक छटा का लेशमात्र भी वर्णन नहीं है। केवल अलङ्कारों की माला गूँथी गई है।

(७) पम्पासर का वर्णन करते समय वहाँ उगने वाले कमल और उसके ऊपर मण्डराने वाले भौंरों का भी वर्णन किया है, लेकिन उस प्रसङ्ग में विष्णु को ब्रह्मा के सिर पर बिठा दिया है।

सुन्दर सेत सरोरुह में कर हाटक हाटक की दुति कोहै।
तापर भौंर भलो मनरोचन लोक विलोचन की रुचि रोहै॥
देखि दई उपमा जल देविन दीरघ देवन के मन मोहै।
केशव केशवराय मनों कमलासन के सिर ऊपर सोहैं॥

कमल के सुन्दर मकरन्द से मत्त होकर भ्रमर उसी के ऊपर मँडरा रहा है। कवि का हृदय उस दृश्य की सुन्दरता में किञ्चित् मात्र भी लीन न हुआ प्रत्युत एक ऐसी उत्प्रेक्षा की जिस पर विश्वास करना कठिन है। न तो कवि ने ही ब्रह्मा और विष्णु को देखा और न किसी अन्य पुण्यात्मा ही ने जो यह घोषित करने की क्षमता रखता कि ब्रह्मा का वर्ण पीला है और विष्णु का वर्ण काला है। केवल पौराणिक वार्त्ताओं के आधार पर काव्य में ऐसे रूप रखना स्पृहणीय नहीं कहा जा सकता।

(८) सीता-हरण के उपरान्त वर्षा और शरद ऋतुएँ आईं। आदि कवि वाल्मीकि ने प्रबन्ध काव्य रचते हुए भी इन ऋतुओं में होने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों का सजीव चित्रण किया है।

कहीं भी ऐसी बात प्रकट नहीं की गई जिससे वर्णन की स्वाभाविकता नष्ट हुई हो। तुलसीदास जी ने भी यही प्रसंग रखा है लेकिन कवि की उपदेशात्मक मनोवृत्ति ने प्रकृति का स्वच्छन्द चित्रण नहीं होने दिया है। चौपाई के प्रत्येक चरण के पूर्वार्द्ध में वर्षा-वर्णन है और उत्तरार्द्ध में एक सात्विक उपदेश है। केशवदास का अलंकार एवं वैभव-सम्पन्न हृदय वर्षा और शरद को भी उसी रूप में देखना चाहता था। वर्षा-वर्णन की प्रारम्भिक पंक्तियों में कवि ने जिस प्रकार के भाव प्रकट किये हैं, उनका निर्वाह वह आगे नहीं कर सका।

देखि राम वर्षा ऋतु आई।
रोम रोम बहुधा दुखदाई॥
आस-पास तम की छवि छाई।
राति द्यौस कछु जानि न जाई॥
मन्द मन्द धुनि सों घन गाजै।
तूर तार जनु आवम्भ बाजै॥
ठौर ठौर चपला चमकै यों।
इन्द्र लोक तिय नाचति है ज्यों॥

वर्षा को कभी तो कवि ने अत्रि ऋषि की पत्नी के रूप में वर्णित किया है और कभी काली के रूप में। अनुसूया के गर्भ में जैसे सोम की प्रभा थी वैसे ही वर्षा ऋतु के बादलों में चन्द्रप्रभा छिपी है। जिस प्रकार काली की महिमा महादेव हो जानते हैं उसी प्रकार इस वर्षा-रव की समस्त महिमा सर्प समूह जानता है।

तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी।
उर में हम चन्द्र प्रभा सम दी सी॥

वरषा न सुनौ किलकै कल काली।
जानत हैं महिमा अहिमाली ॥

श्लेष के आग्रह के कारण वर्षा-ऋतु की रम्यता को कवि विस्मृत कर देता है और उसका भयप्रद रूप वर्णित कर देता है। वर्षा कवि को कालिका के समान भयंकर प्रतीत होती है। समंग श्लेष द्वारा एक ही छन्द में कवि ने कालिका और वर्षा के रूप को अंकित किया है। वर्षा ऋतु में जो अँधेरा छा जाता है, वह प्रलयकाल की वर्षा में भले ही महाभयंकर लगे पर साधारणतया वह ग्रीष्म की प्रखर ताप से संतप्त हृदयों को सुखद ही प्रतीत होता है। शब्द-ज्ञान के प्रदर्शन का लोभ संवरण न कर कवि ने प्रकृति के सुन्दर पदार्थों की रूप-विकृति ही की है।

भौंहैं सुर चाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भू ख नजराय जोति तडित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की,
नैन अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केसौदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है।
अम्बर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका कि वर्षा हरषि हिय आई है॥

कालिका पक्ष और वर्षा पक्ष दोनों में सभंग श्लेष द्वारा इस छन्द का अर्थ लगाया जाता है। अर्थ लगाने के लिये 'भौंहै' को 'भौं (भय)' है और 'भू ख नजराय' को भू (पृथ्वी) 'ख' (आकाश) 'नजराय' देख पड़ती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि केशवदास जी ने गोरख धन्धे ही निर्मित किए हैं; इनके वर्णन में वर्षा का प्रकृत रूप दृष्टिगोचर नहीं होता।

(९) वर्षा काल की समाप्ति पर शरद का आगमन वर्णित है। यह शरद् ऋतु प्रारम्भ से ही कवि को एक स्त्री के रूप में दिखलाई देने लगती है। शरद् ऋतु में विकसित होने वाले कुन्द पुष्प केशव को उस स्त्री के श्वेत दाँत से दिखलाई देते हैं, उड़ने वाले भौंरें उसके बाल हैं।

दन्तावलि कुंद समान गनो, चन्द्रानन कुन्तल भौंर घनो
भौंहैं धनु खंजन नैन मनो, राजीवनि ज्यौं पद पानि भनौ
हारावलि नीरज हीय रमैं, हैं लीन पयोधर अंबर में

कभी शरद ऋतु नारद की बुद्धि सी और कभी पतिव्रता स्त्री और कभी राजमहलों में राजकुमारों को जगाने वाली वृद्धा दासी के रूप में दिखलाई देती है। शरद ऋतु में प्रस्फुटित होने वाली चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना और निरभ्राकाश का कहीं नाम तक नहीं लिया गया। केवल भिन्न-भिन्न रूप उपस्थित करने में ही कवि की बुद्धि लगी रही :—

श्री नारद की दरसै मति सी।
लोपै तन ताप अकीरति सी॥
मानौ पतिदेवन की रति सी।
सन्मारग की समझौ गति सी॥

लक्ष्मण दासी वृद्ध सी, आई सरद सुजाति।
मनहु जगावन को हमहिं, बीते बरषा राति॥

(१०) रामचन्द्र जी जब सेना सहित समुद्र के किनारे पहुँचे तब केशवदास ने समुद्र का वर्णन किया है। इस प्रसंग में भी पूर्वोक्त भावनाएँ व्यक्त की गयी हैं। यहाँ कवि समुद्र को महादेव के शरीर के रूप में देखता है; कारण यह है कि महादेव के शरीर में जिस प्रकार विभूति (भस्म) पीयूष (चन्द्रमा)

और विष पाये जाते हैं; उसी प्रकार समुद्र में भी विभूति (रत्नादि), अमृत और विष पाये जाते हैं। यह समुद्र प्रजापति के घर के समान है अथवा यह समुद्र किसी संत का हृदय है। जैसे संत के हृदय में श्री हरि निवास करते हैं वैसे ही इस समुद्र में भी उनका निवास है। अथवा यह कोई नागरिक है या कोई समुद्र है।

भूति विभूति पियूषहु को विष ईश शरीर कि पाय विमोहै।
है किधौं केशव कश्यप को घर देव अदेवन को मन मोहै॥
संत हियौ कि बसै हरि संतत शोभ अनन्त कहै कवि कोहै।
चन्दन नीर तरंग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै॥

(११) रावण का सकुल विनाश करके सीता सहित जब श्रीराम अयोध्या को लौटे तब मार्ग में उन्हें त्रिवेणी के दर्शन हुए। इस अवसर पर गंगा की शुभ्र वालुका और उसके सरल जल-प्रवाह के वर्णन की ओर कवि का हृदय आकृष्ट नहीं होता है प्रत्युत उसे यह त्रिवेणी राजा भारतवर्ष के मस्तक पर लगे हुए कस्तूरी, चन्दन और केसर के तिलक के समान लगती है।

मद एण मलै घसि कुंकुम नीको,
नृप भारतखंड दियो जनु टीको।

लक्ष्मण ने गंगा का जो वर्णन किया है उसमें अवश्य ही त्रिवेणी संगम की कुछ छटा प्रकट हुई है। कवियों ने गंगा, यमुना और सरस्वती के जल में क्रमशः श्वेत, श्याम और लाल वर्ण का होना माना है। इनकी श्वेत श्याम और लाल वर्ण हलोरें एक दूसरे पर गिरती हुई बड़ी सुन्दर लगती हैं :—

जमुना को जल रह्यौ फैलि कै प्रवाह पर,
केशोदास बीच बीच गिरा की गुराई है
शोभन शरीर पर कुंकुम विलेपन कै,
स्यामल दुकूल झीन अलकत झाँई है।

(१२) भरद्वाज ऋषि के आश्रम के वर्णन में भी महादेव आदि का साम्य उपस्थित किए विना कवि नहीं रहा है :—

भरद्वाज की वाटिका राम देखी।
महादेव कैसी बनी चित्त लेखी।

ऋषि के आश्रम में कहीं हंस और वेदपाठी शारिकाएँ दिखायी पड़ रही हैं। कहीं बड़े-बड़े हाथी वृक्षों के आलबाल में पानी पी रहे हैं और कहीं बन्दर अन्धे तापसियों को लिए हुए फिर रहे हैं। आश्रम में हंस और हाथी के होने की प्रयोजनीयता पर सन्देह ही प्रकट किया जा सकता है। केशवदास के समय में महन्तों की जमात में हाथी रहते होंगे और वही वैभवशाली रूप इस आश्रम को भी प्रदान किया गया है। यह सब चमत्कारिक ही है। आश्रम की शान्ति का वर्णन सिंहनियों के दूध को मृगशावकों को पिलाने, सिंह के बच्चों को हाथी के बच्चे से खिचाने आदि से उतना नहीं होता, जितना आश्रम वासियों की आत्मशान्ति और आश्रम में रहने वाली सहज शान्ति द्वारा प्रकट किया जा सकता है :—

केसौदास मृगज बछेरू चौखैं बाघनीन,
चाटत सुरभि बाघ बालक वदन है।
सिंहनि की सटा ऐंचे कलभ करनि करि,
सिंहनि को आसन गयंद को रदन है॥

फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
वानर फिरत डोरे डोरे अन्ध तापसीन,
ऋषि को समाज किधौं सिव को सदन है॥

ऋषियों के आश्रम में शान्ति एवं सात्विक मनोवृत्ति का स्वच्छन्द विस्तार होता है। उस पूत वातावरण में हृदय की जघन्य भावना सहज ही में लुप्त हो जाती है। मनुष्य के हृदय में ऐसा परिवर्तन प्रदर्शित करना तो युक्ति-युक्त हो सकता है किन्तु सिंह और व्याघ्रादि हिंसक पशुओं में उनकी जन्मजात मनोवृत्ति में साधुता का आरोपण चमत्कारपूर्ण भले ही प्रतीत हो उसमें सत्यता लेशमात्र भी न होगी। विहारी ने भी ऐसा चमत्कार प्रकट किया है :—

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृगबाघ।
जगत तपोवन सम कियौ, दीरघ दाघ निदाघ॥

(१३) तीसवें प्रकाश में वसन्त ऋतु का वर्णन है। वसन्त ऋतु के समागम पर प्रकृति में जो रम्य छटा छा जाती है उसकी ओर कवि का ध्यान यत्किंचित गया है, लेकिन उस वर्णन में भी कवि का ध्यान समानता रखने वाले पदार्थों पर गये विना नहीं रहा है। वसन्त ऋतु में आम्र मंजरियों से आम का पेड़ लद जाता है। लतिकाएँ किशलय और पुष्पों से सज जाती हैं। फूलों का मकरन्द बहने लगता है। पलाश पुष्प अपूर्व शोभा के साथ खिल उठता है। स्वच्छ जल के जलाशय में खिले हुए कमल बड़ी शोभा पाते हैं। प्रेमी और प्रेमिकाओं के संयोग और वियोग की अवस्था में कवियों ने वसन्त ऋतु का क्रमशः सुखद और दुखद रूप

जमुना को जल रह्यौ फैलि कै प्रवाह पर,
केशोदास बीच बीच गिरा की गुराई है
शोभन शरीर पर कुंकुम विलेपन कै,
स्यामल दुकूल भीन अलकत झाँई है।

(१२) भरद्वाज ऋषि के आश्रम के वर्णन में भी महादेव आदि का साम्य उपस्थित किए बिना कवि नहीं रहा है :—

भरद्वाज की वाटिका राम देखी।
महादेव कैसी बनी चित्त लेखी।

ऋषि के आश्रम में कहीं हंस और वेदपाठी शारिकाएँ दिखायी पड़ रही हैं। कहीं बड़े-बड़े हाथी वृक्षों के आलबाल में पानी पी रहे हैं और कहीं बन्दर अन्धे तापसियों को लिए हुए फिर रहे हैं। आश्रम में हंस और हाथी के होने की प्रयोजनीयता पर सन्देह ही प्रकट किया जा सकता है। केशवदास के समय में महन्तों की जमात में हाथी रहते होंगे और वही वैभवशाली रूप इस आश्रम को भी प्रदान किया गया है। यह सब चमत्कारिक ही है। आश्रम की शान्ति का वर्णन सिंहनियों के दूध को मृगशावकों को पिलाने, सिंह के बच्चों को हाथी के बच्चे से खिचाने आदि से उतना नहीं होता, जितना आश्रम वासियों की आत्मशान्ति और आश्रम में रहने वाली सहज शान्ति द्वारा प्रकट किया जा सकता है :—

केसौदास मृगज बछेरू चौखें बाघनीन,
चाटत सुरभि बाघ बालक बदन है।
सिंहनि की सटा ऐंचे कलभ करनि करि,
सिंहनि को आसन गयंद को रदन है॥

फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अन्ध तापसीन,
ऋषि को समाज किधौं सिव को सदन है॥

ऋषियों के आश्रम में शान्ति एवं सात्विक मनोवृत्ति का स्वच्छन्द विस्तार होता है। उस पूत वातावरण में हृदय की जघन्य भावना सहज ही में लुप्त हो जाती है। मनुष्य के हृदय में ऐसा परिवर्तन प्रदर्शित करना तो युक्ति-युक्त हो सकता है किन्तु सिंह और व्याघ्रादि हिंसक पशुओं में उनकी जन्मजात मनोवृत्ति में साधुता का आरोपण चमत्कारपूर्ण भले ही प्रतीत हो उसमें सत्यता लेशमात्र भी न होगी। विहारी ने भी ऐसा चमत्कार प्रकट किया है :—

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृगबाघ।
जगत तपोवन सम कियौ, दीरघ दाघ निदाघ॥

(१३) तीसवें प्रकाश में वसन्त ऋतु का वर्णन है। वसन्त ऋतु के समागम पर प्रकृति में जो रम्य छटा छा जाती है उसकी ओर कवि का ध्यान यत्किंचित गया है, लेकिन उस वर्णन में भी कवि का ध्यान समानता रखने वाले पदार्थों पर गये बिना नहीं रहा है। वसन्त ऋतु में आम्र मंजरियों से आम का पेड़ लद जाता है। लतिकाएँ किशलय और पुष्पों से सज जाती हैं। फूलों का मकरन्द उड़ने लगता है। पलाश पुष्प अपूर्व शोभा के साथ खिल उठता है। स्वच्छ जल के जलाशय में खिले हुए कमल बड़ी शोभा पाते हैं। प्रेमी और प्रेमिकाओं के संयोग और वियोग की अवस्था में कवियों ने वसन्त ऋतु का क्रमशः सुखद और दुखद रूप

में वर्णन किया है। इस वसन्त वर्णन में भी वही रूप है। वसन्त का स्वच्छन्द वर्णन नहीं। विरही और विरहिणी को वसन्त ऋतु में जो दुख होता है अथवा संयोग में वही ऋतु जो सुख देती है उसी का रूप शृङ्गारी कवियों ने अंकित किया है। केशवदास ने भी वसन्त को उद्दीपन की सामग्री के रूप में चित्रित किया है :—

देखी वसन्त ऋतु सुन्दर मोददाय।
बौरे रसाल कुल कोमल केलिकाल।
मानों अनन्द्ध्वज राजत श्री विशाल॥
फूली लवंग लवली लतिका विलोल।
भूले जहाँ भ्रमर विभ्रम मत्त डोल॥
बोले सुहंस शुक कोकिल केकिराज।
मानों वसन्त भट बोलत युद्ध काज॥

(१४) चन्द्रमा के सौन्दर्य ने कवियों के हृदय को अत्यधिक आकर्षित किया है। संस्कृति के कवियों ने चन्द्रमा को ही आलम्बन बनाकर इतनी प्रचुर मात्रा में काव्य प्रणायन किया है कि उसने एक स्वतन्त्र साहित्य का रूप धारण कर लिया है। संयोग और वियोगावस्था में व्यक्तियों पर उस चन्द्रमा का जो प्रभाव पड़ता है उसको चित्रित करने में भी कवि पीछे नहीं रहे। कल्पना की मधुर उड़ान के साथ उस अभिव्यंजना में अनुभूति और हृदय साम्यता का निखरारूप दिखलाई देता है, इसी कारण चन्द्रोपालंभ काव्य हृदय को अधिक आकर्षक प्रतीत होता है। केशवदास कल्पना प्रधान कवि हैं। चन्द्रमा के सम्बन्ध में कुछ नई सूझ और नये उपमान भी प्रस्तुत किये गये हैं। आकाश में उदित होने वाला श्वेत वर्ण

का गोल आकृति का चन्द्रमा फूल की गेंद है जिसे इन्द्राणी ने सूँघकर डाल दिया है। वह कामदेव का सुन्दर दर्पण है। चन्द्रमा आकाश गंगा में क्रीड़ा करने वाला हंस है। वह भगवान के हाथ का शंख है :—

फूलन की शुभ गेंद नई है,
सूँघि शची जनु डारि दई है।
दर्पण सो शशि श्रीरति कोहै,
आसन काम महीपति को है॥
फेन किधौं नभ-सिन्धु लसै जू,
देवनदी जल हंस बसै जू।
शंख किधौं हरि के कर सोहै,
अंबर सागर से निकसोहै॥

चन्द्रमा से वर्ण—साम्य रखने वाले पदार्थों को ऐसी प्रगल्भता के साथ उपस्थित किया गया है कि उसे पढ़कर काव्यानन्द का अनुभव होता है। वह चन्द्रमा मोतियों का एक आभूषण है जिसे सूर्य की पत्नी रखकर भूल गई है :—

मोतिन को श्रुति भूषण जानो।
भूलि गई रवि की तिय मानो॥

(१५) अयोध्या के राजसिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् एक बार सीता ने राम से उस बाग को दिखलाने का आग्रह किया जिसे सिंहासनारूढ़ होते समय लगाया गया था। उस बाग में मोर बोल रहे हैं, कोयल गा रही है, फूल और फलों से आच्छादित वृक्ष शोभायमान हैं। कवि ने बाग की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन उपमान और उत्प्रेक्षा से अलंकृत करते हुए किया है। मोर भाटों के समान विरुदावलियाँ गाते

हैं, और वृक्षों से गिरने वाले फूल आनन्द के अश्रु की भाँति झड़ते हैं :—

बोलत मोर तहाँ सुख संयुत ।
ज्यों विरदावलि भाटन के सुत ॥
कोमल कोकिल के कुल बोलत ।
ज्ञान कपाट कुची जनु खोलत ॥
फूल तजै बहु वृक्षन को गनु ।
छोड़त आनन्द आँसुन को जनु ॥

कवि ने कृत्रिम पर्वत और कृत्रिम सरिता का भी वर्णन किया है । प्रायः राज उद्यानों में प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने के लिये बनावटी पहाड़ और नदियाँ बना दी जाती थीं ।

तिनमें इक कृत्रिम पर्वत राजै ।
मृग पच्छिन की सब शोभहि साजै ॥
सरिता तिहि में शुभ तीन चली ।
सिगरी सरितान की शोभदली ॥

रामचन्द्रिका की रचना करते समय केशवदास ने प्राकृतिक स्थलों को समाविष्ट करने का विशेष ध्यान रखा है । प्रकृति का चित्रण काफी विस्तार के साथ किया गया है । कथावस्तु के आनुपातिक विस्तार की ओर कवि का ध्यान नहीं जाता । वह कथावस्तु को तो चलती भर कर देता है किन्तु उस प्रसंग में प्रस्तुत की गई प्राकृतिक सामग्री ने उस प्रकाश (अध्याय) के अधिकतम कलेवर पर अधिकार कर लिया है । प्रवन्ध काव्य में कथा का निरन्तर और अबाध प्रवाह करना ही कवि को अभिप्रेत है । प्रसंगानुकूल वर्णनों का केवल उतना ही

समावेश किया जा सकता है, जिससे उस कथांश की मनोज्ञता में वृद्धि हो जाय। ऐसे प्रसंग आकार में भी इतने सुदीर्घ न हो जायँ, जिससे मुख्य कथावस्तु पीछे रह जाय—उसमें व्याघात पहुँच जाय। रामचन्द्रिका में इस सिद्धान्त का प्रयोग विलोम ही हुआ है। मुख्य कथा को तो कवि ने थोड़े से शब्दों में प्रकट किया है। और प्राकृतिक वर्णनों को बड़ी व्यापकता के साथ रक्खा है। इन विस्तृत प्राकृतिक वर्णनों की बहुलता के कारण मूल कथा के विकास में बड़ी बाधा आई है कहीं-कहीं तो वह एक दम आछन्न सी हो गयी है। पाठकों को कथा शृङ्खला बार बार जोड़ने का प्रयास करना पड़ता है। प्रबन्ध काव्य में प्रकृति का चित्रण किस स्थान पर किस प्रकार से किया जाना चाहिये, इसके लिये कवि को सजग रहने की आवश्यकता है।

केशवदास अलंकारवादी कवि थे। राजप्रासादों में रहने वाली रमणियाँ, जिस प्रकार अलंकारों से सुसज्जित रहती हैं, उसी भाँति केशव की प्रकृति नटी भी सदैव अलंकारों से सुशोभित रहती है। कथावस्तु में कवि को अपनी प्रतिभा और अलंकारप्रियता के प्रदर्शन का स्थान कम था, इसी लिये उसने स्थान-स्थान पर प्रकृति के चित्रणों को रक्खा है। इन चित्रणों में प्रकृति का रूप तो कम देखने को मिलता है, कवि की कल्पना की सुदूर उड़ान और शब्दों की खिलवाड़ अवश्य दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति में अनुरक्त होने के लिये जिस हृदय की आवश्यकता है, वह केशव के पास न था। रामचन्द्रिका में समाविष्ट प्रकृति चित्रणों को पढ़कर यही प्रतीत होता है कि कवि का एक विशिष्ट सिद्धान्त था उसी का पालन प्रकृति चित्रण में किया गया है। संस्कृत के काव्य-

शास्त्रियों ने विस्तार के साथ ऐसे नियम बना दिये हैं कि प्राकृतिक वर्णनों में किन-किन सामग्रियों का उल्लेख किया जाना चाहिए। केशवदास के मस्तिष्क में वे ही सामग्रियाँ रटी पड़ी थीं और कवि ने आँख बन्दकर उन्हीं के नाम गिना दिये हैं। बन वर्णन में सभी वृक्षों के नाम गिना देना चाहे वे उस वन में पैदा होते हों या नहीं, यह काव्य-नियम था। केशवदास ने भी इसी परिपाटी का पालन किया है इसी से उनके प्राकृतिक वर्णनों में स्वाभाविकता और सजीवता नहीं है। ये प्रकृति वर्णन प्रकृति से यथातथ्य चित्रण के लिये नहीं किये गये जान पड़ते। रीति काल में अन्य कवियों ने भी काव्य में प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग किया है; किन्तु वहाँ प्रकृति के रूप को अंकित करने का लक्ष्य नहीं है। प्रकृति तो केवल उद्दीपन की सामग्री के रूप ही में स्वीकार की गई है। उन चमत्कृत कर देने वाले वर्णनों को सुनाकर कवि राजदरबारों में 'वाहवाही' प्राप्त किया करते थे। यदि प्रकृति का स्वच्छन्द और सीधा-सादा वर्णन कर दिया जाता तो उस चमत्कारहीन रचना को राजसभा में कौन साधुवाद देता? कविता तो धन और यश प्राप्ति का साधन बन गई थी। राजाओं को प्रसन्न करके धन और यश प्राप्त करने की अभिलाषा की पूर्ति की जा सकती थी; पर उस विचारी प्रकृति के पास क्या रखा था, और वह कवियों को दे ही क्या सकती थी, जो कवि उसकी ओर आकर्षित होते। यही कारण है कि माध्यमिक काल तक प्रकृति का स्वच्छन्द निरूपण न हुआ। केशवदास ने जिस प्रचुरता के साथ प्रकृति के रूपों का समावेश किया है; यदि उस वर्णन को आलम्बन बनाने की प्रवृत्ति भी कवि की होती, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि केशवदास हिन्दी के माध्यमिक काल के सर्वप्रथम 'प्रकृति के कवि' गिने जाते। परन्तु प्रकृति

को कवि ने काव्य सिद्धान्तों के चश्मे से देखा था, इसलिये वह प्रकृति का यथातथ्य रूप अंकित न कर सका।

वैभव और अलंकार के वातावरण में रहने का प्रभाव केशवदास के काव्य-सिद्धान्तों पर भी पड़ा। पांडित्य और चमत्कार प्रदर्शन करने की उनकी मनोवृत्ति थी। इसका परिणाम यह हुआ कि केशव के उन प्राकृतिक वर्णनों में क्लिष्ट कल्पना, शब्द-जाल और अस्वाभाविकता ही दृष्टिगोचर होती है। कवि ने जैसे ही प्रकृति के दृश्य को अंकित करने के लिये लेखनी उठाई कि उसके अलंकारवादी सिद्धान्त ने हृदय को आच्छादित कर लिया है और कवि प्रकृति के रूप को भुलाकर अलंकारों का समावेश करने में लग जाता है। अलंकार प्रकृति-निरूपण के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने के लिये नहीं रखे गये अपितु वे साध्य वन गये हैं और प्रकृति का वर्णन अलंकारों का समावेश किये जाने की दृष्टि से किया गया ही प्रतीत होता है। कवि यह सोच लेता है कि अमुक वर्णन में अमुक अलंकार का समावेश होना चाहिए और फिर वह उस वर्णन को उसी भाँति से कहना प्रारम्भ करता है। इस मनोवृत्ति के कारण केशव के प्रकृति-चित्र अलंकारों के अनावश्यक बोझे से दव गये हैं। इन अलंकारों से दबकर प्रकृति नटी मसोसकर रह जाती है। उसे अपने पास विलास और. दुःख-दैन्य के प्रदर्शन का अवसर ही नहीं प्राप्त होता। ऋतुओं का वर्णन करते समय केशव ने उन्हें निम्न रूपों में आँका है।

(१) सिव को समाज किधौं केशव वसन्त है।
(२) सवर समूह कैधौं ग्रीषम प्रकासु है।
(३) कालिका कि वरषा हरषि हिय आई है।
(४) केशवदास सारदा कि सरद सुहाई है।

(५) सीकरतुषार स्वेद सोहत हेमन्त ऋतु,
कैधौं केशोदास प्रिया प्रीतम विमुख की।

(६) सिसर की शोभा कैधों वारि नारि नागरी।

प्राय: आलोचकों ने केशव के प्रकृति-निरीक्षण में वर्णित पदार्थों में कुछ दोषों की उद्भावना की है।

विश्वामित्र के तपोवन का वर्णन करते समय केशव ने उस आश्रम में लौंग और इलायची के वृक्ष लगवा दिये हैं। एला ललित लवंग संग पुंगी फल सोहे। मगध के वनों में एवं अयोध्या के आस-पास यह वस्तुएँ नहीं होतीं। यह सच है, किन्तु कवि-प्रणाली के अनुसार वन-वर्णन में इनका समावेश होना अनिवार्य है। आज से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व क्षेमेन्द्र ने 'कवि रहस्य' में लिखा है कि काव्य में कुछ बातें ऐसी होती हैं जो न तो शास्त्रीय हैं और न लौकिक किन्तु अनादि काल से उनका व्यवहार काव्य में कविगण करते आये हैं। उन्हें 'कवि-समय' के भीतर रखा जाता है। ये कवि-समय तीन प्रकार के होते हैं।

१. असत् का कहना। नदियों का वर्णन करते समय उन में कमल होने का वर्णन। बहते हुए जल में कमल उत्पन्न नहीं होता। यद्यपि हंस केवल मानसरोवर में पाये जाते हैं किन्तु प्रत्येक जलाशय के वर्णन में हंस का वर्णन किया जाना चाहिये। सभी पर्वतों में स्वर्ण तथा रत्नादि का वर्णन करना आवश्यक है।

२. सत् का न कहना। वसन्त ऋतु में मालती का तथा चन्दन और अशोक के पुष्पों का वर्णन न करना। यद्यपि ये पुष्प वसन्त ऋतु में होते हैं।

३. अनियत का नियत करना। सभी जलाशयों तथा नदियों में मगर पाया जाता है तो भी केवल गंगा के वर्णन में ही उसका उल्लेख करना। भूर्जपत्र सभी पर्वतों के वृक्षों से निकल सकता है तो भी उसका वर्णन केवल हिमालय के वर्णन में ही आना चाहिये। कोकिल का शब्द अन्य ऋतुओं में भी सुनाई देता है परन्तु काव्य में वसन्त के वर्णन में ही कोयल के शब्द का वर्णन किया जाता है। मयूर अन्य ऋतुओं में भी नाचते हैं। परन्तु वर्षा ही में उनके नृत्य का वर्णन किया जाना चाहिये।

काव्य की रचना में केशवदास ने 'कवि-समय' की ही रक्षा की है। कभी-कभी आलोचक कवि की तात्कालीन परिस्थितियों पर ध्यान दिये बिना ही उसकी रचना को भिन्न-भिन्न कसौटियों पर कसते हैं। यह उचित नहीं। यदि वर्तमान युग में कविगण पाश्चात्य साहित्य से स्फूर्ति लेकर प्रकृति की रम्य अनुभूति के चित्र उपस्थित करते हैं तो उसका यह आशय नहीं कि, हम प्राचीन कवियों के काव्यों में भी उसी शैली को अनिवार्य रूप से प्राप्त करें। केशव का प्रकृति निरीक्षण अलंकृत वातावरण से अवश्य परिपूर्ण है। सूर, तुलसी और जायसी आदि कवियों की अपेक्षा इनमें भावुकता कम है। परन्तु इन्होंने जिस सिद्धांत के अनुसार प्रकृति का वर्णन किया है उसी में हमें कवि का व्यक्तित्व अंकित मिलता है। आलोचना के वर्तमान मापदण्डों का आरोपण केशव के ऊपर किया जाना समीचीन नहीं है।

रस निरूपण

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से ग्रन्थ में शृंगार, वीर या शान्त रस का समावेश होना अनिवार्य है। अन्य रस भी प्रसंगानुकूल प्रयुक्त होते हैं किन्तु प्राधान्य उक्त रसों में से ही किसी का होना चाहिये।

काव्य में रस का विशिष्ट स्थान है। रस उस लोकोतर आनन्द का नाम है जो किसी भाव के उदयकाल से लेकर उसकी पूर्णावस्था तक उपयुक्त सांगोपांग परिस्थितियों के बीच बिना किसी व्याघात के विद्यमान रहता है। काव्य कला के दो पक्ष हैं—भाव पक्ष तथा कला पक्ष। कला पक्ष का अनुगमन करने वाला कवि अपने हृदय की उद्भूत भावनाओं को आलंकारिक सजावट के साथ प्रकट करता है किन्तु भाव पक्ष (हृदय पक्ष) की प्रबलता जिस कवि में होगी वह अपने हृदय के विचार को स्पष्टता एवं पूर्णता के साथ अभिव्यंजित करता है। भाव ही काव्य की अन्तरात्मा है। कवि के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने हृदय के भाव को इस उत्कृष्टता एवं रमणीयता के साथ प्रकट करे कि पाठक के हृदय में भी वही भाव उद्बुद्ध हो जावें। यदि किसी भाव के सम्प्रेषण में कवि असफल रहा और काव्य कला के बाह्य पक्ष के प्रतिपादन ही में निमग्न हो गया तो उसकी कविता में सजीवता न आ सकेगी।

केशवदास जी ने रसों एवं भावों की व्यंजना में सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की। जीवन की व्यापक घटनाओं तथा घात-प्रतिघातों के निरूपण का प्रबन्ध काव्य में पर्याप्त स्थान होता है किन्तु केशवदास का निरीक्षण परिमित होने से तथा परिस्थितियों के कारण वे जीवन के भिन्न-भिन्न आकर्षक अंगों को देखना ही न चाहते थे। केशवदास जी द्वारा किये गये वर्णन वस्तु परिगणनशैली पर ही हुए हैं। वहाँ इस बात का ध्यान किंचित् मात्र भी नहीं रखा गया है कि उस प्रसंग में वैसे वर्णन की उपादेयता है भी या नहीं। वनवासी राम से मिलने के लिये भरत जा रहे हैं उस समय शोक-निमज्जित भरत को साधारण वेष-भूषा में राजसी वैभव से विमुक्त होकर के ही राम से मिलने के लिये जाना चाहिये था, लेकिन वैभव एवं ऐश्वर्य के वातावरण

में लिप्त रहने वाले केशवदास ने इस परिस्थिति में भी भरत की सेना का ऐसा जाज्वल्यमान चित्र उपस्थित किया है मानो वह आक्रमण करने के लिये सेना को सजाकर जा रहे हों।

गजराजनि ऊपर पाखरि सोहै।
अति सुन्दर शीश सिरोमणि सोहै॥

और

युद्ध को आज भरथ चढ़े धुनि दुंदुभि की दसहू दिशि छाई
प्रात चली चतुरङ्ग चमू वरणी सो न केशव कैसेहु जाई

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी भरत की सेना का ऐसा ही वर्णन किया है और इसी कारण पंचवटी में होने वाली एक भीषण दुर्घटना का बड़ी कठिनाई से ही निराकरण हुआ। लक्ष्मण के हृदय में भरत की सेना को देखकर सन्देह हुआ और वह भारत को धराशायी करने के लिये उद्यत हो गये। शोक एवं खिन्नता के स्थल पर ऐसे वैभव सम्पन्न वर्णन अनुपयुक्त ही हैं।

महाकवि भवभूति ने करुण रस की ही प्रधानता मानी है और अन्य समस्त रसों का पर्यवसान इसी एक रस के अन्तर्गत अनुमानित किया है।

एकोरसः करुण एव निमित्तभेदा,
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।

एक करुण ही मुख्य रस, निमित्त भेदसों सोइ।
पृथक् पृथक् परिणाम में, भासत बहुविधि होइ॥
बुदबुद, भँवर, तरङ्ग जिमि होत प्रतीत अनेक।
पै यथार्थ में सबनि कौ, हेतु रूप जल एक॥

आवर्तबुदबुदतरंगमयान्विकारा,
नम्भो यथा सलिलमेव तु सत्समग्रम ।

उतर रामचरित नाटक अंक ३ श्लोक ४७ ।

आचार्य केशवदासजी ने रतिभाव के अन्तर्गत ही समस्त रसों को लाने का प्रयास किया है और इस प्रकार शृंगार रस को ही महत्व दिया । भिन्न-भिन्न आलम्बनों के द्वारा एक ही समय शृंगार और वीर रस की व्यञ्जना हो सकती है पर एक ही आलम्बन का आश्रय ग्रहण कर लेने पर विरोधी भावों का उत्कर्ष नहीं हो सकता । केशवदास ने अपने पाण्डित्य के बल पर विरोधी रसों का भी इक समावेश शृंगार रस के भीतर किया है जिससे न तो रस का ही परिपाक हुआ है और न शृंगार रस को ही वह प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जो साहित्य-शास्त्र के अनुसार मिलनी चाहिये थी । 'रसिक प्रिया' में केशवदास ने एक स्थान पर रतिरण की कल्पना की है । ऐसे वर्णनों में बुद्धि व्यापार भले ही प्रकट किया गया हो लेकिन यह प्रसंग अनुपयुक्त ही है । वास्तव में जिस युग ने केशवदास को जन्म दिया और जिस राजसी वातावरण में वे रहे उसकी व्यापक शृंगारी मनोवृत्ति का प्रबल प्रभाव उन पर पड़ा । सीताजी के सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने कलापक्ष का पूर्ण प्रतिपादन किया है । बन-गवन के समय सीता जी को देखकर ग्रामीण स्त्रियाँ आपस में उनके मुख का वर्णन कर रही हैं । कोई चन्द्रमा के गुणों को सीता के मुख में समावेश देखकर उसे चन्द्रमा के समान समझती है और कोई कमल के गुणों का आरोप करके यह घोषित करती है कि सीता के मुख की समानता करने के लिये चन्द्र उपयुक्त नहीं है वह तो कमल के समान है और एक अन्य स्त्री चन्द्र तथा कमल दोनों को उपमान वाह्य प्रदर्शित करके कहती हैं—

एक कहै अमल कमल मुख सीता जू को,
एक कहै चन्द्र सम आनन्द को कन्द री।
होइ जो कमल तो रयनि में न सकुचै री,
चन्द जो तो बासर न होइ दुति मन्द री॥
बासर ही कमल, रजनि ही में चन्द्र मुख,
बासर हू रजनि विराजै जग बन्द री।
देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द,
तातें मुख मुखै, सखी, कमलौ न चन्द री॥

तुलसीदासजी ने भी चन्द्रमा को सीता के मुख की समता करने के लिए अनुपयुक्त प्रर्शन किया है।

जन्म सिन्धु, पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द बापुरो रंक॥

शृंगारिक वर्णनों में केशवदासजी ने कहीं कहीं उपमा तथा उत्प्रेक्षा की योजना करते समय स्थिति पर विचार नहीं किया है। सीताजी की दासियों के अंग-प्रत्यंग की शोभा का वर्णन भी कवि ने अति विस्तार से किया है। प्रबन्ध कवि केवल ऐसे ही विषयों का उल्लेख करेगा जिससे प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण में व्याघात न आने पावे अन्य पात्रों का सूक्ष्म वर्णन ही होगा। सीताजी की सखियों के ताटंक का वर्णन करते समय कहा गया है :—

ताटंक जटित मनियुत बसन्त।
रवि एक चक्र रथ से लसन्त॥

ताटंक तथा सूर्य के रथ के पहिये में केवल गोल होने का ही साम्य है अन्यथा सूर्य के रथ का पहिया कितना ही छोटा क्यों न हो स्त्रियों के कानों के लिये बड़ा ही होगा। इस प्रकार

के साम्य के आधार पर कोई उत्प्रेक्षा करना केवल कल्पनामात्र ही है। वहाँ सार्थकता एवं चित्ताकर्षकता न होगी। नायिका के कानों के ताटंक का वर्णन करते समय बिहारी ने लिखा है कि ताटंक की द्युति ने सूर्य को जीत लिया है इस लिये सूर्य नीचा होकर नायिका के पैरों में आ पड़ा है और वही नायिका का अनवट (पैर के अँगूठे में पहिनने का एक आभूषण, जो गोल आकृति का होता है) है।

सोहत अँगूठा पाइके, अनवट्ट जर्यौ जराइ।
जीत्यौ तरिवन[1] द्युति, सुढरि पर्यौ तरनि[2] मनु पाइ॥

दासियों के अंग प्रत्यंग पर उपमा उत्प्रेक्षा की लड़ियाँ बाँधी गई हैं पर वह नख-शिख सौंदर्य अलंकार के बोझ से दब रहा है। कहीं-कहीं शृङ्गार के भद्दे चित्र सुन्दर चित्रों में इतने मिश्रित कर दिये गये हैं कि उन्हें पढ़कर सहृदय पाठकों का मन पहिले ही क्षुब्ध हो जाता है और वे सुन्दर दृश्यों में भी मग्न नहीं हो पाते। केशवदासजी के समस्त प्रेम का आदर्श ही शायद नीचा था। वे लिखते हैं—

आजु यासों हँसि खेलि बोलि चालि लेहु लाल,
काल्हि एक बाल ल्याऊँ काम की कुमारीसी।

राजसी वातावरण में रहने के कारण केशवदास ने शृङ्गार का अतिरंजित एवं नग्न वर्णन किया है। नायिका की कोमलता एवं सौन्दर्य निरूपण में कवि ने लिखा है—

"कचन के भार कुच भारन सकुच भार,
लचकि लचकि जात कटि तट बाल के"।

---

१. तरिवन=ताटंक
२. तरनि=सूर्य।

इसी भाव को विहारीलाल ने प्रकट किया है—

भूषण भार सम्हारिहैं, क्यों शरीर सुकुमार।
सूधे पायँ न धरि सकत, सोभा ही के भार॥

नायिकाओं के शरीर की ऐसी कोमलता अंकित करने में उक्त कवियों ने केवल अपने हृदय की शृंगारिक मनोवृत्ति का ही अधिक परिचय दिया है, अन्यथा ऐसे कोमल वर्णनों में स्वभाविकता की कमी ही है। इनके शृङ्गारिक वर्णनों में मार्मिकता इस कारण और भी न आ सकी कि केशव की दृष्टि क्लिष्ट कल्पना की ओर थी। इनके शृंगारिक वर्णनों को हृदयंगम करने में पाठक को बुद्धि की एकाग्रतासे काम लेना पड़ता है, जिसके कारण उन सुकुमार वर्णनों में हृदय नहीं रमने पाता।

केशवदासजी ने रामचन्द्रिका में कतिपय स्थानों पर शृङ्गार रस का पूर्ण परिपाक किया है। उनमें मानसिक भावनायें भावुकता के साथ अंकित की गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन वर्णनों के समय केशवदासजी ने अपनी आलङ्कारिक मनोवृत्ति को दबाकर हृदय पक्ष से ही कार्य लिया है। अशोक वृक्ष के नीचे एकाकी और विषादमग्न बैठी हुई सीता ने जब यह सुना कि रावण आ रहा है तो भय और लज्जा के कारण उन्होंने अपने शरीर को सिकोड़कर और अधोदृष्टि करके नेत्रों से अश्रुओं का प्रवाह किया। भय और लज्जा के संयुक्त स्थल पर जैसी दशा एक निराश्रित व्यक्ति की हो सकती है उसका प्रदर्शन केशवदासजी ने अत्यन्त सहृदयतापूर्वक किया है।

तहाँ देव द्वेषी दशग्रीव आयो,
सुन्यो देवि सीता महा दुख पायो।

सबै अंग लै अंग ही में दुरायो,
अधो दृष्टि कै अश्रु धारा बहायौ ॥

वियोग की उन्मत्त दशा में प्रेमी प्रत्येक व्यक्ति से अपनी प्रिय के सन्देश की आकांक्षा करता है। जड़ पदार्थ भी उसके लिये सजीव हो जाते हैं। हनुमानजी ने जिस समय रामचन्द्र की मुद्रिका को सीता के समक्ष गिरा दिया उस समय सीताजी उससे रामचन्द्र और लक्ष्मण की कुशल क्षेम ही नहीं पूछतीं अपितु यह उपालम्भ करती हैं कि—

"श्रीपुर में बन मध्य हों, तू मग करी अनीति।
कह मुँदरी अब तियनि की, को करिहै परतीत ॥

केशवदासजी ने जिस रीतिकालीन परम्परा का सूत्रपात किया उसमें अतिरंजित चित्रों का वर्णन तथा अतिशयोक्ति की इतनी भरमार है कि उसके कारण उन परिस्थितियों के प्रति सहानुभूति होने के स्थान में पाठकों को हँसी ही आती है। केशवदास ने राम की वियोगावस्था के अवसर पर इसी परिपाटी का पालन किया है लेकिन उन्होंने यह ध्यान नहीं दिया कि जिस रामचन्द्र के चरित्र का वे इस कोमलता के साथ चित्रण कर रहे हैं उसमें उन कोमलताओं का आरोपण किया भी जा सकता है अथवा नहीं। राम का चरित्र महान् है। भीषण से भीषण विपत्तियों में भी उनका साहस एवं उत्साह नष्ट नहीं होता। प्रिय पत्नी सीता का वियोग राम के लिये अत्यन्त कष्टप्रद था। लेकिन लोक कल्याण के लिये प्रकट होने वाले रामचन्द्र के मुख से ऐसी उक्ति प्रकट कराना जिनमें रीतिकालीन शृङ्गारिकता का पूर्ण प्रस्फुटन है, उचित नहीं। यदि पत्नी के वियोग में राम का शरीर इतना क्षीण हो जाय कि उनकी मुद्रिका

कंकण के स्थान में प्रयुक्त होने लग जाय तो न तो रामचन्द्रजी अत्यन्त बलशाली शत्रु रावण का पराजय करके सीता की ही प्राप्ति कर सकते थे और न लोक कल्याण ही। सीता के वियोग में रामचन्द्र के लिये प्रकृति के समस्त रमणीय पदार्थ क्लेश-कारक हो जाते हैं। यही नहीं शीतलता प्रदान करने वाली वस्तु राम के हृदय को दग्ध ही करती है। शृङ्गारिक कवियों में अग्रणी बिहारीलाल ने नायिका विरह में ऐसी ही कामार्त भावनायें प्रकट की हैं। चन्द्रमा की शीतल किरणें उनकी विर-हिनी को जलाने वाली ही होती हैं।

हौं ही बौरी विरह बस, कै बौरौ सब गाँव।
कहा जानि ये कहत हैं, ससिहिं शीतकर नाँव॥

'रामचन्द्रिका' में सीता वियोग के स्थल पर राम की भी ऐसी ही दशा अङ्कित की गई है।

१. हिमांशु सूर सौ लगै सो बात वज्र सी वहै।
दिशा लगे कृशानु ज्यों विलेप अङ्ग को दहै॥
विशेष काल रात्रि सो कराल राति मानिये।
वियोग सीय कौन काल लोकहारि जानिये॥

२. दीरघ दरीन बसै केशौदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बन करी ज्यों कपत है।
बासर की सम्पत्ति उलूक ज्यों न चितवति,
चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चँपत है॥

करुणस्थलों के प्रति हृदय में सहानुभूति प्रकट करने के लिये ऊहात्मक पद्धति का प्रयोग कविगणों ने किया है। संवेदना की उद्दीप्ति के लिये कल्पना के मधुर सामञ्जस्य से उस भावना का अतिरंजित वर्णन रमणीय हो सकता है; किन्तु सत्यता का

अतिक्रमण करके यदि कोई उक्ति कही जायगी तो करुण स्थल के प्रति सहानुभूति होने की अपेक्षा हँसी ही आवेगी। बिहारी-लाल की नायिका अपने नायक के विरह में इतनी क्षीणकाय हो गई कि हवा का संचार उसे तिनके की भाँति इधर-उधर उड़ा ले जा रहा है।

इत आवति चलि जाति उत, चली छ सात क हाथ।
चढ़ी हिंडोले सी रहै, लगी उसासन साथ॥

ऐसे चित्रों में बात की करामात चाहे कितनी ही क्यों न हो किन्तु हृदय को प्रभावित करने वाली ऐसी उक्तियाँ नहीं होतीं। राम काव्य की रचना करने पर भी केशवदास अपने हृदय की शृंगारिक भावना को दबा न सके। हनुमान द्वारा फेंकी हुई मुद्रिका से सीता जब अपने प्राणवल्लभ का समाचार पूछती हैं उस समय हनुमान ने राम के शरीर के दौर्बल्य को प्रकट करने में जिस अतिरंजना का प्रयोग किया उसमें स्वाभाविकता नहीं है, रीतिकालीन प्रेमियों को व्यथा के वर्णन में ऐसी उक्ति भले ही कुछ चमत्कार प्रदर्शित कर सकती हो लेकिन राम जैसे पुरु-षार्थी के शरीर को सीता विरह में इतना दुर्बल बना देना कि अँगुली का आभूषण उनकी कलाइयों में आ जाय राम के प्रशस्त्र चरित्र के विपरीत ही है।

तुम पूछति कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।
कङ्कन की पदवी दई, तुम बिनु या कह राम॥

राम का चरित्र अपनी महानता एवं सहनशीलता के लिये आदर्श रहा है। 'उत्तर रामचरित' नाटक में महाकवि भवभूति ने निम्नलिखित पद्य में राम के हृदय की शालीनता एवं गंभी-रता को प्रकट किया है।

मोह दया सुख सम्पदा जनक सुता वरु होहि ।
प्रजा हेतु तिनहु तजत, बिथा न व्यापहि मोहि ॥

ऐसे राम का उक्त कोमलता के साथ निरूपण करना आदर्श की दृष्टि से भी उचित नहीं है, लेकिन परिस्थितियों का प्रभाव केशवदास के हृदय पर इतना अधिक था कि वे उसकी उपेक्षा न कर सके। परिस्थितियों से ऊँचा उठने की शक्ति बहुत कम व्यक्तियों में ही परिलक्षित होती है। शृंगारिक वर्णन में जो ऊहात्मक अंश हैं उनको छोड़कर अन्य स्थलों पर केशवदास ने भावुकता का अच्छा परिचय दिया है। उनकी मनोवृत्ति शृंगारिक होने के कारण हमें रामचन्द्रिका में शृङ्गारिक वर्णन अधिक स्थानों पर दृष्टिगोचर होते हैं।

५

केशव का नख-शिख वर्णन

केशवदास रीतिकालीन परम्परा के प्रवर्तक और प्रथम आचार्य थे। इस युग में कवियों ने अपने आलम्बनों (नायक और नायिकाओं) के अंग-प्रत्यंग का अत्यन्त व्यापकता और विस्तार के साथ वर्णन किया है। रीतिकाल में जो काव्य प्रणयन हुआ वह विशेषतः मुक्तक की कोटि का है, अतः उसमें कवि को अपने हृदय की भावनाओं को प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। प्रबन्ध कवि होते हुए भी आचार्य केशव रूप वर्णन को उसी पूर्णता के साथ अङ्कित करना चाहते हैं, जिस प्रकार कथाक्रम से मुक्त रहने वाला कवि। केशवदास शैशव के कवि न थे। युवावस्था ही उनके लिये जीवन के स्वर्ण-विहान के सदृश थी। राम और उनके भाइयों का बाल वर्णन न किया जाना इसी मनोभावना का परिचायक है। रामचन्द्र के रूप-वर्णन करने का अवसर केशवदास को उस समय प्राप्त हुआ है, जब राम विवाह-मण्डप के नीचे बैठे हैं। रामके मुख, भौंह, दाँत, भुजा आदि समस्त अंग-प्रत्यंग का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। यह सच है कि इस वर्णन के भीतर भी कवि की आलंकारिक मनो-वृत्ति की झलक दिखलाई देती है। अङ्गों की शोभा का वर्णन करने के साथ ही कवि यह भी कथन कर देता है कि राम किस रंग की पाग बाँधे हुए हैं :—

गंगा जल की पाग, सिर सोहत रघुनाथ।
शिव सिर गंगा जल किधौं चन्द्र चन्द्रिका साथ॥

कछु भृकुटि कुटिल सुवेष। अति अमल सुमिल सुदेश॥
सोभन दीरघ बाहु विराजत। देव सिहात अदेव लजावत॥

राम का रूप वर्णन करते समय कवि ने उत्प्रेक्षा आदि अलंकार का भी समावेश किया है :—

ग्रीवा श्रीरघुनाथ की, लसति कंबु वर वेष।
साधु मनो वच काय की, मानो लिखी त्रिरेख॥

रामचन्द्र की टेढ़ी भौंह का चित्रण करते समय कवि ने विरोधाभास अलंकार का प्रयोग किया है। राम की भौंहें तो कुटिल हैं, लेकिन उसे देखकर सुर और असुर मनुष्यों की शुद्ध गति होती है (मोक्ष मिलता है)

जदपि भ्रकुटि रघुनाथ की कुटिल देखियत ज्योति।
तदपि सुरासुर नरन की निरखि शुद्ध गति होति॥

(२) सीता के रूप का वर्णन केशवदास ने विवाह, वन जाते समय ग्रामवंधुओं के द्वारा और शूर्पणखा के द्वारा कराया है। सीता के सौंदर्य निरूपण में केशवदास ने मर्यादा का पालन किया है। उनके अङ्ग-प्रत्यंग का वर्णन न करते हुए केशवदास ने प्रतीप अलंकार का समावेश करते हुए सृष्टि के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सुन्दर उपमानों का सीता के समक्ष तुच्छ होना लिखा है। इस कथन से अप्रत्यक्ष रीति से सीता के सौन्दर्य की प्रसिद्धि हो जाती है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी शैली के द्वारा सीता के सौंदर्य का निरूपण बड़ी मर्यादा के साथ किया है :—

जों छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई॥
शोभा रजु मन्दर सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥

यहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख-मूल ।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल ॥

सीता के स्वरूप वर्णन में केशवदास ने इसी शैली का पालन किया है। विवाह के अवसर पर सीता का रूप वर्णन करते हुए कवि ने यह लिखा है कि सीता के सामने दमयन्ती, इन्दुमती और रति कुछ भी नहीं हैं। कामदेव भी सीता के सामने क्षीण द्युति लगता है। सीता के सामने देवांगनाएँ भी कुरूप ही लगती हैं। मर्यादित शब्दों में सीता के सौन्दर्य की श्रेष्ठता वर्णित की गई है :—

को है दमयन्ती इन्दुमती रति रातदिन,
होंहि न छबीली घन छवि जो सिंगारिये ।
केशव लजात जलजात जात वेद ओप,
जातरूप वापुरो विरूप सो निहारिये ।
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चन्द बहुरूप अनुरूप कै विचारिये ।
सीता जी के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही के रूपक तो वारि वारि डारिये ।

राम और सीता के विवाह को देखने वाली सुन्दरियों का भी कवि ने वर्णन किया है। शृंगारिक परिस्थितियों के प्रति केशव के हृदय में विशेष अनुराग था। उन वर्णनों में कवि की मनोवृत्ति विशेष रमी है। उन स्त्रियों के उज्ज्वल कपोल आरसी से दिखते हैं, भुजाएँ चम्पे की माला के समान हैं। वे इतनी सौंदर्यशालिनी हैं कि उन्हें अलंकरण की सामग्रियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे इतनी कोमल हैं कि पाँव में सौभाग्य के लिये लगाया गया महावर और अङ्गिया भी उनके लिये भार के समान लगती हैं :—

अमल कपौले आरसी, वाहुइ चम्पकमार।
अवलोकनै विलोकिए, मृगमदमय घनसार॥
गति को भार महाउरै, आंगि अंग को भारु।
केशव नख शिख शोभिजै, सोभाई सिंगारु॥

राम और सीता जब लक्ष्मण सहित वन जाते समय गाँवों में से जाते हैं, तब ग्रामवधू सीता को देखकर उसके रूप का वर्णन करती हैं। कोई तो सीता के मुख को चन्द्रमा के समान समझती हैं। सीता के मुख में वे सब गुण विद्यमान हैं जो चन्द्रमा में परिलक्षित होते हैं:—

वासों मृग अंक कहैं, तोसौं मृगनैनी सब,
वह सुधाधर तुहूँ सुधाधर मानिये।
वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजै,
वह कलानिधि तुहूँ कला कलित बखानिये॥
रत्नाकर के हैं दोऊ केशव-प्रकाश कर,
अंबर विलास कुवलय हितु मानिये।
वांके अति सीतकर तुहूँ सीता सीतकर,
चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिये॥

जब एक ग्रामीण स्त्री ने सीता के मुख को चन्द्रमा के समान कहा तो दूसरी स्त्री यह कहती है कि सीता का मुख चन्द्रमा के समान नहीं, बल्कि कमल के समान है। चन्द्रमा में तो कितने ही दोष हैं वह सीता के मुख की समानता नहीं कर सकता। सीता का मुख तो स्वच्छ और सुन्दर कमल है:—

कलित कलङ्क केतु, केतु अरि, सेत गात,
भोग योग को अयोग रोग ही को थल सो।

पून्यो ई को पूरन पै आन दिन ऊनो ऊनो,
छन छन छीन होत छीलर के जल सो ॥
चन्द्र सो जो बरनत रामचन्द्र की दोहाई,
सोई मतिमन्द कवि केशव मुसल सो।
सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति,
सीता जू को मुख सखि केवल कमल सो।

इसके पश्चात् एक दूसरी स्त्री कमल और चन्द्रमा की न्यूनताओं का वर्णन करते हुए यह सिद्ध कर देती है कि चन्द्रमा और कमल सीताजी के मुख की समता नहीं कर सकते। अतः सीताजी के मुख के लिये कोई उपमान प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

शूर्पणखा जब लक्ष्मण के द्वारा विरूप कर दी जाती है, तब वह प्रतिशोध लेने के लिये रावण के पास जाती है। शूर्पणखा ने सीता के सौन्दर्य का वर्णन किया है। उस वर्णन के द्वारा वह रावण के हृदय में सीताहरण की भावना का बीजारोपण कर देना चाहती है। इस अवसर पर भी कवि ने पूर्वोक्त शैली का ही प्रयोग किया है :—

मय की सुता धौं को है, मोहिनी है मोहै मन,
आजुलौं न सुनी सुतौ नैनन निहारिये।
देह दुति दामिनी हू नेह काम कामिनी हू,
एक लोम ऊपर पुलोमजा विचारिये ॥
भाग पर कमला सुहाग पर विमला हू,
बानी पर बानी केसौदास मुख वारिये।
सात दीप सात लोक सातहू रसातल की,
तीयन के गीत सबै सीता पर वारिये ॥

इस जाज्वल्यमान वर्णन से सीता के वास्तविक सौन्दर्य की सहज ही में कल्पना की जा सकती है। सीता के रूप वर्णन में

कवि ने सर्वत्र संयम और मर्यादा का पालन किया है। शृंगारिक मनोवृत्ति को यहाँ भक्ति भावना ने दबा दिया है।

(३) केशवदास ने सीताजी की दासियों के नख-शिख का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। केश से लेकर नख तक के प्रत्येक अंगों का वर्णन किया गया है। सीताजी की दासियों की रूप छटा संक्षेप ही में वर्णित किया जाना उचित था। प्रबन्ध काव्य में ऐसे साधारण प्रसंगों को इतना विस्तार देना समीचीन नहीं है। केशवदास की शृंगारिक मनोवृत्ति उचित अवसर पाते ही प्रस्फुटित हो जाती है और यदि कथावस्तु के साधारण प्रवाह में अवसर न मिल सका तो वह ऐसे प्रसंगों की उद्भावना कर लेती है जिससे शृंगारिक भावना का प्राकट्य हो सके। राम के चरित्र में परस्त्री सौन्दर्य के लिये कोई स्थान नहीं है। 'जेहि सपनेहु परनारि न हेरी' वह व्यक्ति दासियों के 'नख-शिख-निरीक्षण' में लीन हो जाय यह असंगति ही है। रामचन्द्रिका के इकतीसवें प्रकाश की कथावस्तु के अनुसार सीता और उसकी सखियों सहित राम वाटिका निरीक्षण के लिये जाते हैं वहाँ राजसी ठाट छोड़कर साधारण वेष में छुपकर राम रनिवास की स्त्रियों की वन-क्रीड़ा देखने लगते हैं। वहाँ एक सखा सीताजी की सखियों के अङ्ग-प्रत्यंग का वर्णन करता है।

केशवर्णन—

रामसंग शुक एक प्रवीनो। सीय दासि गुण वर्णन कीनों॥
केश पास शुभ स्याम सनेही। दास होतु प्रभु जीव विदेही॥

उन दासियों की चोटियाँ सौन्दर्य रूपी राजा की तलवार के समान हैं :—

भाँति भाँति कवरी शुभ देखी। रूप भूप तरवारि विशेषी॥

पून्यो ई को पूरन पै आन दिन ऊनो ऊनो,
छन छन छीन होत छीलर के जल सो ॥
चन्द्र सो जो बरनत रामचन्द्र की दोहाई,
सोई मतिमन्द कवि केशव मुसल सो।
सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति,
साता जू को मुख सखि केवल कमल सो।

इसके पश्चात् एक दूसरी स्त्री कमल और चन्द्रमा को न्यूनताओं का वर्णन करते हुए यह सिद्ध कर देती है कि चन्द्रमा और कमल सीताजी के मुख की समता नहीं कर सकते। अतः सीताजी के मुख के लिये कोई उपमान प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

शूर्पणखा जब लक्ष्मण के द्वारा विरूप कर दी जाती है, तब वह प्रतिशोध लेने के लिये रावण के पास जाती है। शूर्पणखा ने सीता के सौन्दर्य का वर्णन किया है। उस वर्णन के द्वारा वह रावण के हृदय में सीताहरण की भावना का बीजारोपण कर देना चाहती है। इस अवसर पर भी कवि ने पूर्वोक्त शैली का ही प्रयोग किया है:—

मय की सुता धौं को है, मोहिनी है मोहै मन,
आजुलौं न सुनी सुतौ नैनन निहारिये।
देह दुति दामिनी हू नेह काम कामिनी हू,
एक लोम ऊपर पुलोमजा विचारिये ॥
भाग पर कमला सुहाग पर विमला हू,
बानी पर बानी केसौदास सुख कारिये।
सात दीप सात लोक सातहू रसातल की,
तीयन के गीत सबै सीता पर वारिये ॥

इस जाज्वल्यमान वर्णन से सीता के वास्तविक सौन्दर्य की सहज ही में कल्पना की जा सकती है। सीता के रूप वर्णन में

कवि ने सर्वत्र संयम और मर्यादा का पालन किया है। शृंगारिक मनोवृत्ति को यहाँ भक्ति भावना ने दबा दिया है।

(३) केशवदास ने सीताजी की दासियों के नख-शिख का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। केश से लेकर नख तक के प्रत्येक अंगों का वर्णन किया गया है। सीताजी की दासियों की रूप छटा संक्षेप ही में वर्णित किया जाना उचित था। प्रबन्ध काव्य में ऐसे साधारण प्रसंगों को इतना विस्तार देना समीचीन नहीं है। केशवदास की शृंगारिक मनोवृत्ति उचित अवसर पाते ही प्रस्फुटित हो जाती है और यदि कथावस्तु के साधारण प्रवाह में अवसर न मिल सका तो वह ऐसे प्रसंगों की उद्भावना कर लेती है जिससे शृंगारिक भावना का प्राकट्य हो सके। राम के चरित्र में परस्त्री सौन्दर्य के लिये कोई स्थान नहीं है। 'जेहि सपनेहु परनारि न हेरी' वह व्यक्ति दासियों के 'नख-शिख-निरीक्षण' में लीन हो जाय यह असंगति ही है। रामचन्द्रिका के इकतीसवें प्रकाश की कथावस्तु के अनुसार सीता और उसकी सखियों सहित राम वाटिका निरीक्षण के लिये जाते हैं वहाँ राजसी ठाट छोड़कर साधारण वेष में छुपकर राम रनिवास की स्त्रियों की वन-क्रीड़ा देखने लगते हैं। वहाँ एक सखा सीताजी की सखियों के अङ्ग-प्रत्यंग का वर्णन करता है।

केशवर्णन—

रामसंग शुक एक प्रवीनो। सीय दासि गुण वर्णन कीनों॥
केश पास शुभ स्याम सनेही। दास होतु प्रभु जीव विदेही॥

उन दासियों की चोटियाँ सौन्दर्य रूपी राजा की तलवार के समान हैं :—

भाँति भाँति कवरी शुभ देखी। रूप भूप तरवारि विशेषी॥

इस प्रकार शिरोभूषण, नेत्र, नासिका, ताटंक, दंत और मुखवास, मुसुकानि और वाणी, अलक, मुख, ग्रीवाभूषण, बाहु, हाथ, कर भूषण, कुच, रोमावलि, कटि, नितंब, कटि, जंघा, चरण, महावर, कंचुकी, सर्वाङ्ग भूषण, सर्वाङ्ग सौन्दर्य, अङ्गच्छटा और अनूपमता का विशदता और व्यापकता के साथ वर्णन किया गया है :-

नेत्र :—

लोचन मनहु मनोभव यन्त्रहि, भ्रूयुग ऊपर मनोहर मन्त्रहि ।
सुन्दर सुखद सुअंजन अंजित, बाण मदन विष सों जनु रंजित ॥

नासिका :—

सुखद नासिका जग मोहियो । मुक्ताफलीन युक्त सोहियो ॥

कटि :—

कटि को तत्व न जानिये, सुनि प्रभु त्रिभुवन राव ।
जैसे सुनियत जगत के, सत अरु असत सुभाव ॥

नितम्ब, कटि, जघा :—

नितम्ब विम्ब फूल से कटि प्रदेश छीन है ।
विभूति लूटि ली सबै सुलोकलाज लीन है ॥
अमोल ऊजरे उदार जंघ युग्म जानिये ।
मनोज के प्रमोद सों विनोद यन्त्र मानिये ॥

केशवदास ने इस प्रकार से राम, सीता और दासियों का नख-शिख निरूपण किया है। राम और सीता के रूप-वर्णन में तो कवि ने अपनी अलंकार प्रियता के लोभ में श्रृंगारिकता को रोके रक्खा, परन्तु दासियों का रूप-वर्णन तो श्रृंगारिक मनोवृत्ति की अभिव्यजना के लिये किया गया ही प्रतीत होता है। राम के प्रशस्त चरित्र और उदात्त मनोवृत्तियों की अमिट छाप व्यक्तियों के हृदय पर पड़ चुकी है। उसमें

विकर्षण करना—वासनामूलक भावनाओं का अनुचित सम्मिश्रण करना—शोभनीय नहीं है। प्रबन्ध की दृष्टि से भी दासियों के इस विस्तृत सौन्दर्य निरूपण के लिये स्थान नहीं है। यहाँ कवि कथावस्तु को विस्मृत कर देता है। वह स्वयं ही दासियों की अंग-द्युति के निरीक्षण में लीन हो जाता है। यद्यपि दासियों का सुषमा निरूपण करके कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि जिस रानी की दासियाँ इतनी सुन्दर हैं वह स्वयं कितनी सुन्दर होगी? सीता के सौन्दर्य की महत्ता को इस प्रकार प्रकट कराने में कवि ने मर्यादा का पालन अवश्य किया है; लेकिन प्रबन्ध काव्य में ऐसे प्रसंगों का समावेश मुख्य कथानक को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिये। राम की कथा से ऐसे प्रसंगों का कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध भी तो नहीं है। केवल अपनी इन्द्रियलिप्सा की पूर्त्ति के लिये अनजाने ऐसे प्रसंगों को रखकर काव्य की श्रेष्ठता को हानि ही पहुँचाई है। राम और सीता के रूप वर्णन में कवि ने अवश्य ही सुन्दर भावना, शब्द लालित्य और सुरुचि का प्रयोग किया है।

करुण रस

यद्यपि साहित्य शास्त्रियों ने काव्य को सुखान्त ही माना है। लेकिन करुण स्थलों के प्रति मनुष्य का हृदय द्रवीभूत होकर अधिक आकर्षित होता है। प्रबन्ध काव्यों में ऐसे प्रसंगों में मानवीय कोमल भावनाओं का संयोजन कुशल प्रबन्धकारों ने किया है। राम का जीवन तो आद्योपान्त ही करुण भावनाओं का समुच्चय है। राम के जन्म की खुशियाँ अभी समाप्त ही हो पाई थीं कि विश्वामित्र राम को यज्ञ रक्षा के कार्य के लिये ले जाते हैं। तुलसीदासजी ने विश्वामित्र की इस प्रार्थना पर कि

इस प्रकार शिरोभूषण, नेत्र, नासिका, ताटंक, दंत और मुखवास, मुसुकानि और वाणी, अलक, मुख, ग्रीवाभूषण, बाहु, हाथ, कर भूषण, कुच, रोमावलि, कटि, नितंब, कटि, जंघा, चरण, महावर, कंचुकी, सर्वाङ्ग भूषण, सर्वाङ्ग सौन्दर्य, अङ्गच्छटा और अनूपमता का विशदता और व्यापकता के साथ वर्णन किया गया है :–

नेत्र :—

लोचन मनहु मनोभव यन्त्रहि, भ्रूयुग ऊपर मनोहर मन्त्रहि।
सुन्दर सुखद सुअंजन अंजित, बाण मदन विष सों जनु रंजित॥

नासिका :—

सुखद नासिका जग मोहियो। मुक्ताफलीन युक्त सोहियो॥

कटि :—

कटि को तत्व न जानिये, सुनि प्रभु त्रिभुवन राव।
जैसे सुनियत जगत के, सत अरु असत सुभाव॥

नितम्ब, कटि, जघा :—

नितम्ब विम्ब फूल से कटि प्रदेश छीन है।
विभूति लूटि ली सबै सुलोकलाज लीन है॥
अमोल ऊजरे उदार जंघ युग्म जानिये।
मनोज के प्रमोद सों विनोद यन्त्र मानिये॥

केशवदास ने इस प्रकार से राम, सीता और दासियों का नख-शिख निरूपण किया है। राम और सीता के रूप-वर्णन में तो कवि ने अपनी अलंकार प्रियता के लोभ में शृंगारिकता को रोके रक्खा, परन्तु दासियों का रूप-वर्णन तो शृंगारिक मनोवृत्ति की अभिव्यजना के लिये किया गया ही प्रतीत होता है। राम के प्रशस्त चरित्र और उदात्त मनोवृत्तियों की अमिट छाप व्यक्तियों के हृदय पर पड़ चुकी है। उसमें

विकर्षण करना—वासनामूलक भावनाओं का अनुचित सम्मिश्रण करना—शोभनीय नहीं है। प्रबन्ध की दृष्टि से भी दासियों के इस विस्तृत सौन्दर्य निरूपण के लिये स्थान नहीं है। यहाँ कवि कथावस्तु को विस्मृत कर देता है। वह स्वयं ही दासियों की अंग-द्युति के निरीक्षण में लीन हो जाता है। यद्यपि दासियों का सुषमा निरूपण करके कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि जिस रानी की दासियाँ इतनी सुन्दर हैं वह स्वयं कितनी सुन्दर होगी? सीता के सौन्दर्य की महत्ता को इस प्रकार प्रकट कराने में कवि ने मर्यादा का पालन अवश्य किया है; लेकिन प्रबन्ध काव्य में ऐसे प्रसंगों का समावेश मुख्य कथानक को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिये। राम की कथा से ऐसे प्रसंगों का कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध भी तो नहीं है। केवल अपनी इन्द्रियलिप्सा की पूर्त्ति के लिये अनजाने ऐसे प्रसंगों को रखकर काव्य की श्रेष्ठता को हानि ही पहुँचाई है। राम और सीता के रूप वर्णन में कवि ने अवश्य ही सुन्दर भावना, शब्द लालित्य और सुरुचि का प्रयोग किया है।

करुण रस

यद्यपि साहित्य शास्त्रियों ने काव्य को सुखान्त ही माना है। लेकिन करुण स्थलों के प्रति मनुष्य का हृदय द्रवीभूत होकर अधिक आकर्षित होता है। प्रबन्ध काव्यों में ऐसे प्रसंगों में मानवीय कोमल भावनाओं का संयोजन कुशल प्रबन्धकारों ने किया है। राम का जीवन तो आद्योपान्त ही करुण भावनाओं का समुच्चय है। राम के जन्म की खुशियाँ अभी समाप्त ही हो पाई थीं कि विश्वामित्र राम को यज्ञ रक्षा के कार्य के लिये ले जाते हैं। तुलसीदासजी ने विश्वामित्र की इस प्रार्थना पर कि

असुर समूह सतावहि मोही।
मैं नृप सुत याचन आयहुँ तोही॥

वृद्धावस्था में राम और लक्ष्मण जैसे सुकुमार तथा आज्ञाकारी पुत्रों को दशरथ ने कठिन व्रत और तपस्या के उपरान्त ही पाया था। विश्वामित्र की इस वाणी को सुनकर क्षुब्ध होकर दशरथ ने कहा—

चौथेपन पायहुँ सुत चारी।
विप्र बचन नहिं कहेहु विचारी॥

इसके उपरान्त रामके शुभ विवाह का अत्यन्त मांगलिक एवं उल्लासकारी अवसर आता है। इस प्रमोद पूर्ण परिस्थिति के आनन्द की स्मृति अयोध्यापुरवासियों को भूली भी न थी कि फिर राम बनगमन की अत्यन्त दुखदायी घटना के पश्चात् तो संकटपूर्ण परिस्थितियों का बाहुल्य ही हो जाता है। १. दशरथ मरण, २. रावण द्वारा सीता का चुराया जाना, ३. लक्ष्मण शक्ति और सीतानिर्वासन। इस प्रकार राम के जीवन में कारुणिक स्थल इतने अधिक हैं, जिनके कारण राम चरित्र सम्बन्धी काव्य में करुण रस का समावेश काव्य शास्त्र की दृष्टि से ही नहीं, कथा की दृष्टि से भी अनिवार्य हो गया है। राम के जीवन में हृदय की कोमलता का उद्रेक करने वाली विविध घटनाओं का समावेश होने पर भी केशवदास ने उन मनोरम स्थलों की या तो पूर्ण उपेक्षा की है अथवा अति संक्षेप में उन प्रसंगों का वर्णन कर दिया गया है। राम वन-गमन की घटना भी केशवदास के चमत्कार-पूर्ण हृदय में कोमल भावनाओं का सृजन न कर सकी। राम के बन जाने के कारण दशरथ कौशिल्या तथा

पुरवासियों को जो असह्य वेदना हो रही थी तथा इस धर्म संकट में राम का हृदय भी कितना विगलित हो रहा था उसकी ओर केशवदास का ध्यान न गया। इन करुण स्थलों में भी केशवदास ने कल्पना का अनुपयुक्त समावेश किया है। रामचन्द्र वन जाते समय ग्रामों में से होकर जा रहे हैं वहाँ की जनता—विशेषकर ग्राम वधुएँ—सुकुमार राम, लक्ष्मण तथा सीता को वन की ओर जाते देखकर अत्यन्त दुखित होती हैं। केशवदास ने भी रामचन्द्रिका में इस प्रसंग को रक्खा है। लेकिन वहाँ ग्राम वधुओं की सहानुभूति अंकित करने की अपेक्षा केशवदास ने 'आलंकारिक योजना ही अधिक की है। ग्रामीण स्त्रियों की यह उक्ति

> किधौं कोऊ ठगहो ठगौरी लीन्हे, किधौं तुम
> हरि हर श्री हौ शिवा चाहत फिरत हौ।

इस स्थल पर वांछनीय तो यह था कि वे स्त्रियाँ अपने हृदय की सुकुमार मनोवृत्तियों के परिचय के द्वारा कैकेई की भर्त्सना तथा राजा दशरथ के कार्य का अनौचित्य प्रकट करतीं। विपद्-ग्रस्त अवस्थाओं में भाग्य को दोष देना तथा विधि की विडम्बना का उल्लेख किया जाना स्वाभाविक ही है। केशवदास-जी ने केवल कल्पना के कौशल से राम को ठग का उपमान प्रदर्शित किया है। संभ्रान्त जनों के प्रति श्रद्धालु व्यक्ति इस प्रकार के वचन प्रकट नहीं करते।

प्रिय के वियोग में विरही की मानसिक दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। वह सृष्टि के समस्त जड़ एवं चेतन पदार्थों से अपने प्रिय के समाचार को पूछता है। अशोक वाटिका में हनुमानजी द्वारा दी गई रामचन्द्र की अँगूठी जिस समय

सीताजी को प्राप्त होती है उस समय कवि ने उन भावनाओं का प्रदर्शन नहीं कराया जो प्रिय की वस्तु को देखकर प्रेमी के हृदय में आविर्भूत होती है। अपितु सन्देह, उत्प्रेक्षा, समुच्चय आदि अलंकारों की योजना में केशव की सहानुभूति मानो बह गई है। अपने हृदय की वेदना तथा अपनी कारुणिक परिस्थिति का उल्लेख करने के स्थान में सीताजी उस मुद्रिका को कभी तो सूर्य की किरण समझती हैं और कभी चन्द्रमा की कला।

"यह सूर किरण तम दुखहारि।
ससिकला किधौं उर सीतकारि॥
कलि कीरति सी सुभ सहित नाम।
कै राजश्री यह तजी राम"॥

जिस स्थान पर केशवदासजी ने अलंकारों के परिच्छेद का परित्याग कर दिया है उस समय भावुक परिस्थितियों के प्रति कवि ने पर्याप्त रूप से सहानुभूति प्रदर्शित की है। पंचवटी में जब भरत पुरवासियों सहित राम से मिलने के लिये जाते हैं उस समय जब माताओं से रामचन्द्रजी ने पिता दशरथ का कुशल समाचार पूछा उस समय केशवदासजी ने माताओं के मुख से कोई शब्द न प्रकट कराकर केवल उन माताओं के हृदय के शोक को ही प्रकट कराया है। मातायें राम के उस प्रश्न को सुनकर क्रमशः रोना प्रारम्भ कर देती हैं।

"तब पुत्र को मुख जोय।
क्रम से उठी सब रोय"॥

यदि शब्दों के द्वारा दुख प्रकट किया जाता तो वह सीमित होता और हृदय की जो व्यथा है उसकी पूर्ण व्यञ्जना न हो सकती थी। परन्तु मूक दशा में एकबारगी सब माताओं के रो पड़ने से वेदना की अनुभूति में विवृति है।

रामचन्द्रिका में करुणा का दूसरा स्थल लक्ष्मण को शक्ति लग जाने का है। रावण द्वारा अपहृत की गई सीता की प्राप्ति राम कर ही न सके कि लक्ष्मण के लिये भी प्राण संकट आ उपस्थित होता है। जीवन की विविध कठिनाइयों में राम ने अत्यंत साहस का प्रदर्शन किया लेकिन लक्ष्मण जैसे आज्ञाकारी तथा प्रिय भाई को मूर्च्छित अवस्था में देखकर राम के धैर्य का बाँध टूट गया। केशवदासजी ने विना किसी आलंकारिक उक्ति वैचित्र्य के फेर में पड़े अत्यन्त सहृदयतापूर्वक राम को उस कारुणिक परिस्थिति की व्यञ्जना की है।

"लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यौ।
नैनन तें न रह्यौ जल रोक्यौ॥
बारक लक्ष्मण मोहि विलोकौ।
मोकहँ प्राण चले तजि, रोकौ॥

रामचन्द्र अपने प्रिय भाई की इस मूर्छावस्था में रोते ही नहीं हैं वे इस बात को भी प्रकट करते हैं कि लक्ष्मण की इस अवस्था का कारण रामचन्द्र ही है। लक्ष्मण की माता सुमित्रा ने राम तथा सीता की शुश्रूषा के लिये ही जिस प्रिय पुत्र को राजसीय सुखों का परित्याग कराकर सहर्ष वन को भेज दिया वह सीता की प्राप्ति उद्योग में इस प्रकार मूर्छित हो गया है। यही कारण है कि रामचन्द्र यह कहते हैं :—

बोलि उठो प्रभु को पन पारो।
नातरु होत है मो मुख कारो॥

कवि का वर्णन उसी अवस्था में सफल समझा जायगा जब कि वह पाठकों के हृदय में भी वैसी ही भावना को अङ्कित करा दे। केवल उन छंदों में रसों के नामोल्लेख करने से ही उस

रस की अनुभूति नहीं हो सकती। भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारियों के अनुकूल संघटन से ही किसी रस की निष्पत्ति हो सकती है। अलङ्कार शास्त्र के विद्वान् होने पर भी केशवदासजी ने रस के उपादानों की योजना में त्रुटि की है और कहीं कहीं तो उन्होंने रस का नाम भी छन्द में समाविष्ट कर दिया है जिसके कारण उसमें स्वशब्दवाचकत्व दोष आ गया है।

मिले जाय जननीन सों जबही श्री रघुराय।
करुणा रस अद्भुत भयो मोपै कह्यौ न जाय॥

यह आवश्यक नहीं है कि कवि अपने छन्दों में उस रस का नाम भी प्रकट करे जिसकी निष्पत्ति में उसने उसकी रचना की है। रस के अङ्ग और उपांगों की उपयुक्त योजना से पाठक को स्वयम् यह विदित हो जाना चाहिये कि वह रचना किस रस को लेकर की गई है। यदि उस छन्द के पढ़ लेने के पश्चात् भी पाठक को यह अनुभव न हो पावे कि उसमें रस कौनसा है तो उस रचना का रचयिता सफल नहीं कहा जा सकता। वस्तु तो वही उत्तम है जो स्वयमेव अपने प्रभाव को प्रकट कर सके, केवल कह देने भर से ही किसी रस का निरूपण नहीं किया जा सकता। करुण स्थलों में केशवदासजी ने केवल कथा का प्रवाह मात्र ही जारी रखा है उनमें शोक पूर्ण परिस्थितियों का समावेश नहीं है केवल उनका संकेत मात्र ही है। रावण छलपूर्वक सीता को उठा ले जाता है उस समय का जो चित्रण केशवदासजी ने किया है उसमें उतनी सजीवता नहीं है और न उसमें इतना प्रवेश ही है जिससे सीता के रुदन को सुनकर सुनने वाले के हृदय में रावण के प्रति विद्रोह की भावना जाग्रत हो जावे। तुलसीदास-

जी ने सीता के मुख से उस समय ऐसी कातरोक्ति प्रकट कराई है कि जिन्हें सुनकर पक्षी भी प्रभावित हुए और गृद्धराज जटायु ने रावण से संग्राम भी किया—

गृद्धराज सुनि आरत बानी।
रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥
अधम निशाचर लीन्हे जाई।
जिमि मलेच्छ-वश कपिला गाई॥

और सीता के इस करुण-क्रन्दन को सुनकर क्रोधित होकर जटायु रावण को ललकारता है।

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होई, निर्भय चलसि न जानहि मोई।

रामचन्द्रिका में सीता-हरण की घटना में केशवदास का हृदय प्रवृत्त न हुआ। सीता उस भयानक संकट की अवस्था में भी केवल अत्यन्त संक्षेप में ही अपने दुख को प्रकट करती हैं। आश्चर्य तो यह है कि जिस रावण ने प्रवञ्चनात्मक रूप से सीता का अपहरण किया है उसके लिये भी सीता केवल 'लंकाधिनाथ' शब्द का ही प्रयोग करती हैं। जिस व्यक्ति से सीता को अत्यधिक आशंका हो और जिसने उसके सुखी जीवन को नष्ट करके प्राण-प्रिय राम से अलग कर दिया हो, उसके लिये केवल संयमित भाषा का ही प्रयोग कुछ उचित प्रतीत नहीं होता। सीताजी के मुख से रामचन्द्रिका में केवल यह कहलवाया गया है :—

हा राम! हा रमन! हा रघुनाथ धीर।
लङ्काधिनाथवस जानहु मोहि वीर॥
हा पुत्र लक्ष्मण छुड़ावहु वेगि मोहि।
मार्तण्ड वंश की सब लाज तोहि॥

उचित तो यह था कि इस स्थल पर सीता अपने हृदय के

असीम दुख को प्रकट करके रख देतीं, अपनी निस्सहाय अवस्था का उल्लेख करतीं और रावण की क्रूरता का वर्णन करतीं, उसे केवल लङ्काधिराज कहकर न रह जातीं।

केशवदासजी का जीवन ऐश्वर्य सम्पन्न था लेकिन उनके हृदय में एक वेदना अवश्य अन्तर्निहित थी, जिसकी कसक का अनुभव कवि को होता रहता था। उनकी यह उक्तियाँ।

जग महँ सुख न गनिये,

या

जग माँहिं है दुख जाल।
सुख है कहाँ यहि काल ॥

इसी धारणा की पुष्टि करती है लेकिन अपनी रुचि के अनुकूल न होने के कारण केशवदास ने करुणा के स्थलों पर अपनी भावुकता, मनोवृत्ति, ज्ञान तथा हृदय की कोमलता का परिचय नहीं दिया है। अन्यथा करुणा की दशाओं का उन्हें वैयक्तिक ज्ञान अवश्य रहा होगा।

वीर रस

इन्द्रजीत सिंह के दरबार में रहकर केशवदासजी ने प्रताप, ऐश्वर्य तथा आतंक का प्रत्यक्षानुभव किया और राजनीति के विषयों में भी भाग लिया था। इसलिये दर्पपूर्ण उक्तियों के वे अभ्यासी थे। इन वर्णनों में केशवदासजी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। प्रतिपादित विषय में जबतक कवि के हृदय का सामंजस्य न हुआ हो तबतक उसके चित्रण में स्वाभाविकता तथा वास्तविकता दृष्टिगोचर न होगी। कल्पना की सहायता से खींचे गये चित्र बुद्धि व्यापार मात्र हैं। वीर रस का पूर्ण परिपाक युद्ध-स्थल पर ही होता है। रामचन्द्रिका में युद्ध के दो अवसर

आये हैं—१. राम और रावण का युद्ध—२. राम की सेना तथा लव कुश का युद्ध।

रावण पर आक्रमण करने के दो कारण थे—१. रावण ने सीता का अपहरण किया था और दूसरा ऋषियों की अस्थियों के ढेर को देखकर निशिचरहीन पृथ्वी करने की राम की प्रतिज्ञा। अतः सीता के हरण करने के कारण वह राम का व्यक्तिगत शत्रु था तथा ऋषियों, देवताओं तथा ब्राह्मणों को क्लेश पहुँचाने के कारण लोक का शत्रु। रामचन्द्र ने समस्त कार्य लोकानुरंजन के लिये ही किये हैं इस कारण सीताहरण का कारण तो गौण ही है। यदि सीताहरण न हुआ होता तो भी रावण का नाश तो अवश्य ही किया जाता। यही कारण है कि राम के विजयी होने पर पृथ्वी में सर्वत्र उल्लास फैल जाता है। देवता भी हर्ष से पुष्प वर्षा करने लगते हैं। रामचन्द्रिका में यदि रावण का कोई अपराध है तो सीता का चुराना। सीता के उद्धार के लिये ही यह युद्ध किया गया है। त्रैलोक्य को संकट देने वाले रावण को मारने की दृष्टि से नहीं।

युद्ध वर्णन की विशिष्टता हम रामचन्द्रिका में पाते हैं। कुम्भकर्ण, मेघनाद, मकराक्ष आदि जब युद्धस्थल में प्रवेश करते हैं उस समय उनकी भयंकरता का ऐसा उग्र रूप उपस्थित किया गया है, जिससे आगे होने वाले भीषण युद्ध का पूर्वाभास हो जाता है। मकराक्ष को रणभूमि में आता हुआ देखकर विभीषण राम से कहता है—

कोदंड हाथ रघुनाथ संभार लीजै,
भागे सबै समर यूथप दृष्टि कीजै।

बेटा बलिष्ठ खर को मकराक्ष आयौ,
संहारकाल जनु काल कराल धायौ ॥

मकराक्ष के इस वर्णन से ही यह ध्वनित होता है कि मकराक्ष कितना वीर है और वह कितने भयंकर युद्ध में प्रवृत्त होगा। मकराक्ष जब युद्ध स्थल पर भेजा जाता है उस समय वह रावण से कहता है कि मेरे सामने तुम्हारे पुत्र भी कुछ नहीं हैं। कुम्भकर्ण को सोने से ही अवकाश नहीं है और मेघनाद तो साहसहीन ही है।

कहा कुम्भकर्नो कहा इन्द्रजीतौ,
करै सोइबौ वा करै युद्ध भी तौ।
सुजौलों जियौं हौं सदा दास तेरो,
सिया को सकै लै सुनौ मन्त्र मेरौ।
हतौं राम स्यौं बंधु सुग्रीव मारौं,
अयोध्याहि लै राजधानी सुधारौं।

रामचन्द्रिका के लव कुश और राम सेना के युद्ध की यह विशेपता है कि उसमें शस्त्रास्त्र प्रहार की अपेक्षा वाक्य रूपी वाणों का प्रहार अधिक है। शत्रुघ्न जब लव के ऊपर प्रहार करता है तब लव ने यह व्यङ्ग किया कि हे शत्रुघ्न तुमने कौनसा शत्रु मारा है जिससे यह नाम पड़ा।

"कौन शत्रु तूं हत्यौ जु नाम शत्रुहा लियौ"

यह प्रवृत्ति लव के स्वभाव की विशेषता है उसने शत्रुओं पर वाण वर्षा ही नहीं की अपितु कटूक्तियों से उनके हृदयों को भी जर्जरित किया। ऐसी चुभने वाली बात उसने विभीषण से कही जिसे सुनकर वह समाज में अपने कलंकित मुख को दिखाने का भी साहस न कर सकता था। विभीषण के चरित्र में यह दोष

दिखलाने का कार्य केशवदासजी ने ही किया है अन्यथा और दूसरे कवियों ने राम भक्त होने के कारण इस दोष की ओर लक्ष्य ही नहीं किया। वास्तव में विभीषण के चरित्र की यह बड़ी भारी कमजोरी है जिसकी ओर केवल भक्त भावना के कारण ध्यान न देना उचित नहीं है। केशवदासजी के पात्र राज-नीति पटु हैं और अपने प्रतिपक्षी की हीनताओं का उन्हें पूर्ण ज्ञान प्राप्त है। लव ने युद्धक्षेत्र में आते हुए विभीषण से यह कहा—

आउ विभीषन तूँ रन दूषन।
एक तुँही कुल कौ निज भूषन॥
जूझ जुरे जो भगे भय जीके।
सत्रुहि आनि मिले तुम नीके॥
देव-वधू जबहीं हरि ल्याऔ।
क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो॥
को जाने कै वार तू कही न है है माय।
सोई तै पत्नी करी, सुनि पापिन के राय॥
सिगरे जग माँझ हँसावत है।
रघुवंशिन पाप लगावत है॥
धिक तोकहँ तू अजहू जु जियै।
खल जाय हलाहल क्यों न पियै॥

अंगद को भी युद्धस्थल में ऐसे ही वाक्य-वाणों से लव ने स्वागत किया है।

अंगद जो तुम पै वल होतो।
तो वह सूरज को सुत को तौ॥

देखत ही जननी जु तिहारी।
वा संग सोवत ज्यौं वरनारी॥

लव और कुश ने युद्ध-स्थल पर ही विजय प्राप्त नहीं की, बल्कि शास्त्रार्थ में भी विजय प्राप्त की। जब भरत ने मुनि बालकों से यह कहा कि तुम तो मुनि बालक हो, तुम्हें धर्म कार्य में सहायता देनी चाहिये, बाधा नहीं। उसके उत्तर में कुश ने यह प्रमाणित किया कि हम आयु में छोटे हुए तो क्या आत्मा तो अजर अमर है। आत्मा न तो बालक है और न वृद्ध। वह तो चिरंतन है। इस प्रकार विद्वत्ता और बुद्धि में भी उन्होंने भरत को पराजित किया :—

भरत :—

मुनि बालक हौ तुम यज्ञ करावो।
सुकिधौं मख बाजिहि बाँधन धावो॥

कुश :—

बालक वृद्ध कहौ तुम काको।
देहिन को किधौ जीव प्रभा को॥
है जड़ देह कहै सब कोई।
जीव सो बालक वृद्ध न होई॥
जीव जरै न मरै नहि छीजै।
ताकहँ शोक कहा अब कीजै॥
जीवहिं विप्र न क्षत्रिय जानें।
केवल ब्रह्म हिये महँ आने॥
जो तुम देउ हमें लघु शिक्षा।
तो हम देहिं तुम्हें हय भिक्षा॥

युद्धकालीन परिस्थितियों को केशव ने बड़े कौशल के साथ अंकित किया है। वीरों के हृदय की मनोवृत्ति को भी प्रकट किया है। प्रतिपक्षी द्वारा कही गई एक भी बात सह्य नहीं होती है और तत्क्षण उसका अनुकूल उत्तर दे दिया जाता है, यह भावना यहाँ परिलक्षित होती है।

युद्धस्थल के वर्णन में प्रायः कवि लोग यह प्रदर्शित करते हैं कि किस प्रकार प्रहार किये जा रहे हैं और किस प्रकार पक्ष तथा विपक्ष के योद्धा धराशायी हो रहे हैं। केशवदासजी ने इस पद्धति का भी अनुसरण किया है लेकिन केशवदास की सबसे बड़ी विशेषता उनके पात्रों द्वारा विपक्षी के प्रति व्यंग बाणों के प्रयोग में ही है। केशवदासजी का व्यक्तित्व भी ऐसा था जिसमें कि इस प्रकार की उक्तियाँ स्वाभाविक सी प्रतीत होती हैं। वीर-रस का चित्रण केशवदासजी ने कुशलतापूर्वक किया है। युद्धस्थल पर अपने शत्रु को परास्त करने की भावना ही योधाओं के हृदय में सर्वोपरि होती है। वहाँ अपने शरीर का भी ध्यान उन्हें नहीं रहता। वे तो केवल इसी बात की चिन्ता रखते हैं कि कहीं उनका शत्रु जीवित वापिस न चला जाय। लक्ष्मण शक्ति के प्रहार से मूर्छित हो गये थे लेकिन संजीवनी बूटी के उपचार से जब वह उठ खड़े होते हैं तब उनके मुख से केवल यही निकलता है "लंकेश न जीवत जाहि घरै"।

वैभव एवं प्रताप-वर्णन के चित्र अंकित करने में भी केशवदासजी को सफलता प्राप्त हुई है। रावण महाप्रतापी राजा था। उसके आतंक के प्रदर्शन करने में केशवदासजी ने प्रतिहारी के द्वारा देवताओं को यह आदेश दिलाया है कि वे इस प्रकार अपने अपने कार्यों का सम्पादन करें जिससे रावण को कहीं क्रोध न हो जावे। यह प्रसिद्ध है कि ब्रह्मादि देवता भी

रावण के यहाँ वेद पाठ करने आते थे। उनको वह प्रतिहारी यह आदेश देता है—

पढ़ौ विरंचि मौन वेद, जीव सोर छंडिरे।
कुवेर वेर कै कही न जच्छ भीर मण्डिरे॥
दिनेस जाय दूर बैठ नारदाद संग ही।
न बोलु चंद मंदबुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥

इसी शैली का प्रयोग केशवदास ने उस स्थल पर भी किया है जब परशुराम को विवाहोपरान्त लौटती हुई दशरथ की सेना ने देखा। परशुराम के परुष रूप को देखकर मतवाले हाथी भी मतवालापन भूल गये, वीर सिपाहियों ने स्त्रियों जैसे कपड़े पहन लिये और कुछ तो हथियारों को दूर फेंककर प्राण लेकर भाग रहे हैं।

मत दंति अमत ह्वै गये, देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेश केशव दुन्दुभी नहिं बज्जहीं॥
डार डार हथियार केशव जीव लै लै भज्जहीं।
काटि के तन त्राण एकै नारि भेषन सज्जहीं॥

यदि अन्य और किसी प्रकार से परशुराम के पौरुष का चित्रण कवि करता तो शायद उसे इतनी सफलता प्राप्त न होती। जिस वीर को देखकर प्रतिपत्ती की सेना में इतनी भगदड़ मच जाय उसका युद्ध कौशल कितना भयंकर न होगा। इस प्रकार की अद्‌भुत परिस्थितियों के समावेश से केशवदास ने वीररस का अच्छा प्रतिपादन किया है। केशवदास के पात्र वार्तालाप करने में अत्यन्त प्रवीण हैं। उनके मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द एक विशेष अभिप्राय को प्रकट करता है। वीररस के वर्णन में प्राय: केशवदास ने सम्वादों का भी समावेश किया है जिससे

युद्धस्थल के वे दृश्य स्वाभाविक से प्रतीत होते हैं। रणक्षेत्र में शस्त्रास्त्रों का प्रयोग ही नहीं किया जाता अपितु वीर लोग एक विशेष हुँकार का शब्द करके अपने प्रतिपक्षियों की भर्त्सना भी करते हैं। रामचन्द्रजी का चरित्र ही ऐसा है कि उसमें शीघ्र क्रोध आ जाने का प्रश्न ही नहीं है लेकिन जब उन्हें क्रोध आ जाता है, उस समय वे भीषण से भीषण कार्य करने के लिये भी प्रवृत्त होने से नहीं हिचकते। उन्हें मुख्यतः दो अवसरों पर ही क्रोध आया है एक तो परशुराम संवाद के अवसर पर और दूसरा लक्ष्मण की शक्ति लग जाने पर। इन दोनों स्थलों पर केशवदासजी ने वीर रस का अच्छा प्रतिपादन किया है।

यद्यपि भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी के उपयुक्त समावेश पर ही रस की निष्पत्ति अवलंबित है, लेकिन वीररस के वर्णन में प्रायः कविगण ओजगुणयुक्त वाक्यों तथा द्वित्त वर्ण और दीर्घ समासान्त पदावलियों का भी प्रयोग करते हैं। केशवदास ने अपने अन्य ग्रन्थों में द्वित्त वर्ण वाली शैली का प्रयोग अधिक किया है। रामचन्द्रिका में वीररस के ऐसे स्थल अनेक समाविष्ट हुए हैं जहाँ पर कवि ने ओजपूर्ण वाक्यों का अच्छा प्रयोग किया है। परशुराम जब यह अनुमान लगाते हैं कि शिव के धनुष को रावण ने तोड़ा है तो उस समय वे क्रोधावेश में यह कहते हैं—

"दशकंठ के कंठन को कठुला।
सितकंठ के कंठन को करिहौं" ॥

युद्धस्थल का वर्णन कभी-कभी कविगण नदी का सांगोपांग रूपक बाँधकर भी करते हैं। केशवदास ने भी इस शैली का पालन किया है। इस श्रोणित की सरिता के किनारे केशवदासजी ने

विशालकाय वीरों के मृत शरीर तथा टूटे हुए रथ दिखाते हैं। उसमें बड़े-बड़े घोड़े ग्राह के समान हैं और ढाल कछुए के समान हैं :—

पुंज कुंजर शुभ्र स्यन्दन शोभिजैं सुठिशूर।
ठेलि-ठेलि चले गिरीसनि, पेलि श्रोणित पूर॥
ग्राह तुङ्ग तुरङ्ग कच्छप चारु चर्म विशाल।
चक्र से रथ चक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल॥

इस रूपक के द्वारा कवि ने युद्धस्थल की भीषणता तथा उस पर फैले हुए रक्त प्रवाह की प्रभावपूर्ण अभिव्यञ्जना की है। लम्बा सांगरूपक होने पर भी केशवदास ने प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव की रक्षा की है।

अलंकार

अलंकार और रस संबंधी ग्रन्थों की रचना करके केशवदास ने जिस काव्य परंपरा का प्रतिपादन किया उसका एकमात्र सिद्धान्त कविता में अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग करना ही है। यद्यपि कविता की आत्मा भाव पक्ष में ही अन्तर्निहित है, परन्तु उसके वाह्य अंग को यदि उपयुक्त अलंकारों से सज्जित करके प्रकट किया जाय तो उस भाव की मनोज्ञता और भी द्विगुणित की जा सकती है। कविता में अलंकारों का वही स्थान है जो कामिनी के कलित कलेवर को सज्जित करने के लिये आभूषणों का है। यदि आभूषण इतनी अधिक संख्या में हो जायँ कि कामिनी की साधारण गति भी रुक जाय तो वे एक बंधनमात्र ही होंगे। कविता में भी अलंकार साधन है साध्य नहीं, लेकिन केशवदास की प्रवृत्ति चमत्कारपूर्ण वर्णनों की ओर अधिक होने के कारण उन्होंने प्रत्येक प्रसंग पर आलंकारिक योजना की है। बिना

अलंकार के प्रयोग के कवि एक साधारण वर्णन भी करना उचित नहीं समझता। काव्य में रमणीयता का समावेश करने के लिये केशवदास अलंकारों का व्यवधान आवश्यक समझते थे। इस आलंकारिक प्रद्धति का प्रयोग केशवदास ने कितने ही स्थलों पर भावोद्रेक के लिये भी किया है। इन स्थलों में इस आलंकारिक योजना से भावोत्कर्प को सहायता ही प्राप्त हुई है। पंचवटी में राम का मिलन माताओं से होता है। केशवदास ने माताओं के उस चिर प्रतीक्षित मिलन को गाय और उसके बछड़े के मिलन की तुलना दी है। बिछुड़े हुए पुत्र से मिलने के लिये माता उत्कंठित होती है। यह गुण मनुष्यों तक ही सीमित नहीं पशुओं में भी यह गुण विद्यमान है। जिस प्रकार एक सद्यः प्रसूता गाय अपने बछड़े से मिलने के लिये दौड़ती हुई जाती है उसी प्रकार माताएँ राम से मिल रही हैं।

मातु सबै मिलिवे कहँ धाई।
ज्यों सुत को सुरभी सुलबाई।

संस्कृत में चन्द्र को विषय मानकर जो काव्य की रचना की गई है, वह इतनी है कि वह एक स्वतन्त्र साहित्य बन गया है। केशवदास ने भी चन्द्रमा के वर्णन में अपनी कल्पना और प्रतिभा बल से चन्द्र को भिन्न-भिन्न रूपों में अंकित किया है। केशव ने कुछ तो चिरप्रचलित उपमानों को रखा है; और कुछ उपमान केशव की प्रखर बुद्धि ने स्वयं ढूँढ़ निकाले हैं। कविता में विज्ञान की भाँति यथातथ्य वर्णन नहीं होता। कवि तो कल्पना के सामञ्जस्य से ही किसी विषय को देखता है; यदि उसके वर्णन को देखकर यह कह दिया जावे कि प्रस्तुत वर्णन से अप्रस्तुत का कोई सम्बन्ध नहीं है, वह तो कोरी कल्पना ही है। हमको कवि की भावना से सहानुभूति रखकर

ही उसके वर्णन को देखना चाहिये, अन्यथा कल्पना मात्र रचना करने का जो दोष केशव पर आरोपित किया जाता है; उससे महाकवि भी नहीं बच सकते। चन्द्र को देखकर कवि वर्णन करता है :—

फूलन की शुभ गेंद नई है। सूँघि शची जनु डारि दई है॥
दर्पण सो ससि श्री रति को है। आसन काम महीपति को है॥
मोतिन को श्रुतिभूषण जानों। भूलि गई रवि की तिय मानों॥
अंगद को पितु सो सुनिये जू। सोहत तारहिं सङ्ग लिये जू॥
फैन किधौं नभ सिन्धु लसै जू। देव नदी जलहंस बसै जू॥
शंख किधौं हरि के कर सोहै। अंबर सागर से निकसो है॥

केशवदास की यह विशेषता है कि वे प्रकृति के भिन्न-भिन्न पदार्थों में से किसी न किसी को उपमेय की समता के लिये खोज ही निकालते हैं। वर्षा ऋतु में काले-काले बादलों को स्पर्श करती हुई बगलों की पंक्तियाँ उड़ रही हैं। केशवदास की कल्पना-शक्ति ने इस योजना को प्रस्तुत किया कि बादलों ने समुद्र से पानी पीते समय सफेद संखों को भी पी लिया है और अब वे बलपूर्वक उन शंखों को उगल रहे हैं।

सोहैं घनश्यामल घोर घनै
सोहैं तिनमें बक पाँति मनै
संखावलि पी बहुधा जल सौं
मानों तिनकौं उगिलै बल सौं।

प्रकृति परिवर्तनशील है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में प्राकृतिक पदार्थों में भी हेर फेर हो जाता है। यही नहीं दिन और रात भी घटते और बढ़ते रहते हैं। शरद ऋतु में दिन घटता है और रात बढ़ती है। प्रकृति की इस क्रिया का आरोप केशवदास ने अत्यन्त

सुन्दरतापूर्वक सीताजी के विरह के कारण क्षीण होते हुए शरीर पर किया है। हनुमान रामचन्द्र से यह कहते हैं—

प्रति अंगन के संग ही दिन नासै।
निशि सौं मिलि बाढ़ति दीह उसासै॥

उपमा अलंकार के संयोजन में उपमान के गुण, क्रिया और आकार को जब तक उपमेय के समान न प्रकट किया जावे तब तक उस उपमा में न तो कोई स्वाभाविकता ही होगी और न सौंदर्य की सृष्टि ही। केशवदास ने जिन उपमानों की कल्पना की है वे साधारण कवियों की पहुँच से बहुत परे हैं। लेकिन यह होते हुए भी वे बुद्धि-गम्य हैं। प्रातः काल में तारिका समूह छिप जाता है। इस प्रसंग की योजना में केशवदास ने यह कल्पना की है कि उषाकाल में रक्त मुख वाला बन्दर गगन रूपी वृक्ष पर चढ़ गया है और उसने उस वृक्ष के तारिका रूपी फलों को गिरा दिया है। उषाकाल के रक्तवर्ण सूर्य को बन्दर की उपमा देकर कवि ने इस प्रसंग को बहुत रोचक बना दिया है।

चढ़ौ गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुण मुख
कीन्ही झुक झहराय, सकल तारिका कुसुम बिन

हनुमान द्वारा आग लगा देने पर स्वर्ण की लंका पिघल गई है। उसका स्वर्ण बहकर समुद्र में मिल रहा है। इसी प्रसंग को केशव ने उत्प्रेक्षा के सहारे इस प्रकार वर्णित किया है कि गंगा को हजार धाराओं में समुद्र से मिलती हुई देख मानो सरस्वती नदी ईर्ष्या वश असंख्य धाराओं में सुखी होकर समुद्र से मिल रही है। काव्य शास्त्र में सरस्वती नदी के जल का वर्ण पीला माना गया है। इस कारण इस अलंकार-योजना में रोचकता, बोधगम्यता तथा स्वाभाविकता आ गई है।

केशवदास की शृंगारिक भावना की तीव्रता तथा आलंकारिक प्रयोग की रुचि के कारण कुछ ऐसे स्थल भी रामचन्द्रिका में समाविष्ट हो गये हैं जो न केवल सहृदयों के चित्त को अग्राह्य हैं, अपितु लोक-मर्यादा तथा रस की स्थिति से भी परे हैं। राज दर्बार में रहने वाले कवि को यह भली भाँति विदित रहता है कि राज दरबार की मर्यादा का किस प्रकार पालन करना चाहिये। केशवदास ने भी इस मर्यादा का पालन अपने पात्रों के द्वारा कराया है। अंगद जिस समय रामचन्द्र का दूत बनकर रावण के दर्बार में उपस्थित होता है उस समय मन्दोदरी के लिये भी उसने 'देवि' शब्द का प्रयोग किया लेकिन जिस समय रावण के यज्ञ को विध्वन्स करने के लिये अङ्गद और हनुमान आदि वानर लंका में जाकर घोर उत्पात मचाना प्रारम्भ करते हैं उस समय अङ्गद रावण के रनिवास में जाकर मन्दोदरी को पकड़ लेता है। मन्दोदरी के वस्त्रों की खींचातानी भी अङ्गद ने की। उस सम्राज्ञी के कंठ के आभूषण टूट गये और केश बिखर गये। मन्दोदरी की इस कारुणिक स्थिति की ओर केशव का ध्यान नहीं गया और न उन्होंने मन्दोदरी के सन्मान की रक्षा की है। लेकिन कवि की दृष्टि मन्दोदरी की कञ्चुकि पर अवश्य गिरती है।

फटी कंचुकी किंकिनी चारु छूटी।
पुरी काम की सी मानो रुद्र लूटी॥

शक्तिशाली रावण की पत्नी मन्दोदरी की इस दयनीय दशा के प्रति कवि की सहानुभूति नहीं है। अपनी शृंगारिक भावना को प्रकट करने के लिये उपयुक्त परिस्थिति एवं स्थल देखकर केशवदास ने मन्दोदरी के कंचुकिरहित उरोजों का इस प्रकार वर्णन किया है—

बिन कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजै।
किधौं साँचहु श्रीफलै सोम साजै॥

किधौं स्वर्ण के कुंभ लावण्य पूरे।
वशीकरण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे॥

परिस्थिति तथा पात्र का ध्यान रखते हुए केशवदास ने इस प्रसंग की योजना सामाजिक रुचि के विपरीत ही की है। भयभीत मन्दोदरी के विषाद की ओर कवि का ध्यान नहीं गया। वह तो सन्देह और उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा करुण स्थल पर भी शृंगारिक वर्णन की योजना में प्रवृत्त है। करुणा के स्थल पर शृंगार भाव उपयुक्त भी तो नहीं है। आलंकारिकता के कारण केशव की कविता शब्दों का प्रदर्शिनी सी प्रतीत होती है। तीन-तीन अर्थ रखने वाले कवितों का प्रयोग किया गया है इसके कारण इनके काव्य में क्लिष्टता आ गई है। प्रसन्न राघव नाटक, हनुमन्नाटक और कादम्बरी आदि की उक्तियों के अनुवाद भी कई स्थानों पर किये गये हैं। उपमान के लाने में केशवदास ने इस बात का भी ध्यान नहीं रखा कि वे वस्तु उस युग में प्रादुर्भूत हुई भी थीं या नहीं। पंचवटी का वर्णन करते समय श्लेष अलंकार के विधान के हेतु उन पदार्थों को भी कवि ने ला दिया है जो एक युग पश्चात् हुए हैं। और जिनके कारण केशव की रचना में कालदोष आ गया है—

पाण्डव की प्रतिमा सम लेखौ।
अर्जुन भीम महामति देखौ।

रावण वध हो जाने के उपरान्त श्रीराम ने सीता को लंका से लिवा लाने के लिये हनुमान को भेजा। वस्त्र और अलंकारों से सज्जित होकर सीता आई और उस समय ब्राह्मण और देवताओं ने उनका यश-गान किया। तदनन्तर सीता परीक्षार्थ अग्नि के मध्य बैठीं। अग्नि शिखाओं के बीच बैठी हुई सीता को कवि उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह आदि अलंकारों की योजना करके वर्णित करता है। उस करुण परिस्थिति की ओर कवि का ध्यान नहीं

जाता है। लाल अग्नि और गौर वर्ण सीता से वर्ण साम्य रखने वाले पदार्थों को प्रस्तुत किया गया है। अग्नि की गोद में सीता ऐसी प्रतीत होती हैं मानों पिता की गोद में पवित्रा चरणी कन्या हो। सीताजी महादेव के नेत्र की पुतली हैं या रणभूमि की चंडिका हैं या मानों रत्न सिंहासन पर बैठी हुई इन्द्राणी हैं या सरस्वती नदी के जलसमूह में कोई जल देवी हैं या उसी में कोई सुन्दर कमल खिला हुआ है, या कमल के नील कोप पर लक्ष्मी जी बैठी शोभा दे रही हैं :—

पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्र गीता।
लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता॥
महादेव के नेत्र की पुत्रिका-सी।
कि संग्राम के भूमि में चण्डिका-सी॥
मनो रत्न सिंहासनस्था सची है।
किधौं रागिनी राग पूरे रची है॥
गिरापूर में है पयोदेवता सी।
किधौं कंज की मंजु शोभा प्रकासी॥
किधौं पद्म ही में सिफाकन्द सोहै।
किधौं पद्म के कोप पद्मा विमोहै॥

सादृश्यमूलक उपमानों की खोज ही में कवि की बुद्धि लगी रही। उसने प्रसंगानुकूल भावनाओं का कहीं भी चित्रण नहीं किया। अग्निशिखा के बीच बैठी हुई सीता सिन्दूर पर्वत के अग्र-भाग में बैठी हुई सिद्धकन्या के समान दिखलाई देती हैं या सूर्य मण्डल में कमलिनी हैं, या सुन्दर सरस्वती ही कमल पर बैठी हुई हैं। —

कि सिन्दूर शैलाग्र में सिद्ध कन्या।
किधौं पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या॥

सरोजासना है मनो चारु वानी।
जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी॥
आरक्त पत्रा सुभ चित्र पुत्री।
मनो विराजै अति चारु वेषा॥
सम्पूर्ण सिन्दूर प्रभा बसै धौं।
गणेश भालस्थल चन्द्ररेखा॥

लाल-लाल आग की लपटों में सीता ऐसी प्रतीत होती हैं मानों कोई चित्र पुतली लाल बेल-बूटों के मध्य सुन्दर भेष से सजाई गई हो या सम्पूर्ण सिन्दूर की प्रभा में गणेश के भाल पर चन्द्र-कला है। अलङ्कारों की योजना करने में ही कवि लीन हैं। कथा प्रवाह की ओर उसका ध्यान नहीं है। इन पंक्तियों में केवल शब्द साम्य के आधार पर ही अलङ्कार की योजना की गई है अन्यथा प्रकृति के वर्णन के साथ कवि ने कोई सहानुभूति प्रकट नहीं की है। ऐसे स्थल रामचन्द्रिका में कितने ही हैं जहाँ केशवदास की आलंकारिक योजना ने अभिभूत सा कर दिया है। वे एक उत्प्रेक्षा के पश्चात् कितनी ही उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि अलंकार को समाविष्ट करने में तो प्रवृत्त हो जाते हैं लेकिन विषय वर्णन की ओर उनका ध्यान नहीं रहता। शक्तिशाली रावण को परास्त करने के पश्चात् बिछुड़ी हुई सीता रामचन्द्रजी को प्राप्त होती हैं। यह स्वाभाविक ही है कि समस्त बन्दर सेना तथा विभीषण भी इस मिलन से उल्लसित हुए हों, लेकिन उन सबों के आश्चर्य का वारापार उस समय न रहा होगा जब कि राम सीता को अंगीकार न करते हुए उसे अग्नि परीक्षा देने का आदेश देते हैं। केशवदास ने अग्नि को विकराल शिखाओं के मध्य बैठी हुई सीता का वर्णन उत्प्रेक्षा के द्वारा किया है। लेकिन कवि ने उस अवसर पर उपस्थित व्यक्तियों के हृदय में प्रवाहित हो रही

विचारधारा लक्ष्मण के हृदय में हो रहे विषाद तथा राम के हृदय की करुणा की ओर कोई संकेत नहीं किया।

उपमेय की प्रतिष्ठा के अनुकूल उपमान की योजना करने का ध्यान केशवदास को नहीं रहा। केवल कल्पना की प्रावल्तया में इतने पड़ जाते हैं कि पात्र की प्रतिष्ठा तथा उसकी स्थिति का ध्यान उन्हें नहीं रहा। प्रवीणराय पातुरी को रमा के रूप में अंकित करना लोक रुचि के विपरीत होने पर भी केशवदास ने उसे 'वीणा-पुस्तक-धारिणी' कहकर प्रशंसित किया है। हनुमान सीता के समक्ष राम की दशा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

"वासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत"

इस प्रकार राम की उपमा उल्लू से दी है। अलंकार की दृष्टि से इस उपमा में भले ही कोई दोष न हो, किन्तु इसमें औचित्य की मात्रा कम ही है। इस प्रसङ्ग में बहुधा यह समाधान प्रस्तुत किया जाता है कि इस चरण में राम की उपमा उल्लू से देने में इस पक्षी से तात्पर्य नहीं है, अपितु उसके देखने की क्रिया से है, लेकिन भगवान राम की समता में उल्लू शब्द का लाना भद्रता एवं शिष्टाचार की सीमा का अतिक्रमण ही है। प्रकृति के अन्य पदार्थ भी ऐसे हैं जो वासर की सम्पत्ति को नहीं देखते। उनमें से किसी को वे इस उपमान के रूप में रख सकते थे। इसी प्रकार रावण की भर्त्सना करते समय सीता के मुख से यह कहलाया गया है—

"विडकन घर घरे भक्ष क्यों बाज जीवै"

पवित्र-हृदया सीता रावण द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रलोभनों में नहीं आ सकती थीं। इसके प्रतिपादन के लिये केशवदास ने यह प्रदर्शित किया है कि बाज पक्षी अपदार्थ वस्तुओं का जिस प्रकार सेवन नहीं करता उसी प्रकार सीता रावण के उन

वस्तुओं का सेवन करके जीवित नहीं रह सकतीं, यही नहीं वे उनके उपभोग की कल्पना भी नहीं कर सकतीं। क्रिया की दृष्टि से बाज का उपमान ठीक है लेकिन सीता के वर्णन में बाज पक्षी का लाना कवि के हृदय की भक्ति-भावना की कमी का ही द्योतक है। कवि प्रवीणराय को वीणापुस्तकधारिणी के रूप में देख सकता है और अग्नि की शिखाओं से घिरे हुए राक्षसगण उसे कामदेव के समान सुन्दर प्रतीत हो सकते हैं लेकिन जहाँ जगत्माता सीता का वर्णन आया वहाँ केशव की कल्पना में केवल बाज पक्षी ही आता है। केशव का ध्यान अलंकारों के विधानों में ही प्रधानतः रहा है उन्होंने उनकी उपयुक्तता पर विचार नहीं किया। पात्रों की मर्यादा तथा उनकी स्थिति को ध्यान में रखकर ही उनके अनुकूल पदार्थों को उनकी तुलना में उपस्थित करना चाहिए अन्यथा वे अलंकार अलंकार न रहकर शब्दों की खिलवाड़ मात्र रह जायँगे। उनके कारण न तो विषय की रमणीयता की वृद्धि होगी और न काव्य में चमत्कार ही आवेगा।

केशवदास के अलंकारों में सहृदयता चाहे दृष्टिगोचर न होती हो परन्तु यह मानना पड़ेगा कि उनकी कल्पना शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। एक एक दृश्य को लेकर केशवदास ने उत्प्रेक्षा, सन्देह और रुपक की लड़ियाँ बाँध दी हैं। 'रामचन्द्रिका' में कतिपय स्थलों पर केशवदास ने अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति, बारीक सूझ एवं प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। दशरथ के महलों पर फहराती हुई ध्वजा, वर्षा, शरद, भरत की सेना, लंका दाह, चन्द्र एवं सूर्य वर्णन और सीता अग्नि प्रवेश के अवसर पर केशवदास निरन्तर आलंकारिक योजना करने में थकते नहीं हैं। एक के पश्चात् दूसरा उपमान उपस्थित कर दिया गया है। इन

वर्णनों में केशवदास ने कुछ ऐसी कल्पनायें भी की हैं जिन्हें बहुत दूर की सूझ कहा जा सकता है। वहाँ तक साधारण कवि की बुद्धि की पहुँच नहीं हो सकती। जहाँ कोई आलंकारिक योजना की ही नहीं जा सकती वहाँ पर भी केशवदास ने उत्कृष्ट कल्पना के सहारे सुन्दर अलंकारों की योजना की है। केशवदास किसी न किसी स्थान से वर्णन के अनुरूप उत्प्रेक्षा की सामग्री खोज ही निकालते हैं जैसे—

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दुति को है।
तापर भौर भलौ मन रोचन लोक विलोचन की रुचि रोहै॥
देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देविन के मन मोहै।
केशव केसवराय मनौ कमलासन के सिर ऊपर सोहै॥

विष्णु के मस्तक पर ब्रह्मा के बैठने की कल्पना सरलता-पूर्वक नहीं की जा सकती, पुराणों के अनुसार विष्णु की नाभि से जो कमल उत्पन्न हुआ वह ब्रह्मा जी का आसन है। केवल इसी आधार पर केशवदास ने इस अलंकार की योजना की है। अपने प्रतिभा बल से केशवदास ने प्रत्येक परिस्थितियों में उपमान खोज ही निकाले हैं, भले ही उनमें बोध-गम्यता कम हो। संस्कृत के प्रकांड विद्वान् होने के कारण संस्कृत के कवियों की आलंकारिक योजना का उनके ऊपर प्रभाव था। काव्य में अप्रयुक्त होने के कारण केशवदास के अलंकारों में कुछ दुरूहता आ गई है। कारण यह है कि एक तो उनकी कल्पना ही गम्भीर और विस्तृत है तथा दूसरे जिन शब्दों का प्रयोग कवि ने किया है वे पाण्डित्यपूर्ण हैं।

कतिपय साहित्य शास्त्रियों का यह मत है कि शब्दालंकार केवल भाषा के सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं, भावोत्कर्ष में वे सहायक नहीं होते। यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। भाषा की

सहायता से भाव अपनी सत्ता प्रकट करता है। भाषा जितनी परिमार्जित, सुन्दर और काव्योचित होगी, भाव की गंभीरता में वह उतनी ही सहायक होगी। अलंकार भाषा के सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं इसलिये काव्य में इनका विशेष स्थान है। जिस स्वाभाविक रीति से अलंकारों का प्रयोग तुलसीदास ने किया है वैसा केशव नहीं कर पाये हैं। केशवदास के काव्य में आलंकारिक योजना की प्रचुरता हमें भले ही दृष्टिगोचर होवे, किन्तु उन्होंने भाषा की शुद्धता की ओर विशेष ध्यान दिया है; शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा नहीं है। रीतिकालीन कवियों में शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने की प्रवृत्ति विशेष रूप से रही। उन्होंने शब्दों को इतना विकृत कर डाला जिससे मूल शब्द को पहिचानना भी कठिन हो जाता है और अर्थ दुरूह हो गया है।

अयोध्यापुरी का वर्णन करते समय केशव ने परिसंख्या के द्वारा यह प्रकट किया है कि अयोध्या में 'अधोगति' व्यक्तियों की नहीं होती अपितु वृक्षों की जड़ें ही नीचे की ओर जाती हैं। 'मलिनता' केवल होम की अग्नि से निकले हुए धुएँ ही में है अयोध्यापुरवासियों के हृदय में नहीं। 'चंचलता' केवल पीपल के पत्तों ही में है, अयोध्यावासियों के मन में नहीं। धव नाम की वस्तु जंगलों ही में होती है। धवहीन (विधवा) स्त्री अयोध्या भर में नहीं पायी जाती।

मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल की अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में॥

अति चंचल जहँ चलदलै, विधवा बनी न नारि"

(प्रथम प्रकाश)

ऐसे वर्णन के द्वारा केशव ने अयोध्यावासियों के पवित्र और सुखी जीवन का सुन्दर चित्रण किया है। केशवदास में कहीं-कहीं हम एक जैसी ही विचार-धारा, एक ही प्रवाह के शब्द और अलंकारों की पुनरावृत्ति पाते हैं। यदि कवि एक से अधिक स्थलों पर एक-सी वाक्य योजना करता है तो वह केवल पुनुरुक्ति दोष ही नहीं है वरन् उससे यह भी प्रकट होता है कि कवि के हृदय में नवीन विचारों की कमी है। बार-बार वे ही अलंकार आने से वर्णनों में रोचकता भी नहीं रहती। अयोध्यापुरी का वर्णन केशव ने दो बार किया है, एक तो प्रथम प्रकाश में और दूसरी बार अट्ठाइसवें प्रकाश में। दोनों स्थान पर कवि ने एक ही प्रकार का वर्णन किया है, कोई नवीनता नहीं है।

होम हुताशन मलिनाई जहाँ। अति चंचल चल दल है तहाँ ॥
........................। कुटिल चाल सरितानि बखानु ॥

मूले तो अधोगतिन पावत है केशोदास।
बन्ध्या वासनानि जानु विधवा सवाटिका ही ॥
कविकुल ही के श्रीफलन, उर अभिलाष समाज।
तिथि ही को क्षय होत है, रामचन्द्र के राज ॥

भरद्वाज ऋषि के आश्रम के वर्णन में भी केशव ने "चलै चिप्पलै..." और "कंपै श्रीफले पत्र है पत्रनीके" कहकर इसी परिसंख्या की ही आवृत्ति की है। ऐसे स्थल रामचन्द्रिका में कितने ही हैं जहाँ इस प्रकार की पुनरावृत्ति की गई है। यह आश्चर्यजनक ही है कि प्रखर प्रतिभा और बुद्धि होने पर भी केशवदास ने एक से ही वर्णन एक से अधिक स्थानों पर कैसे रख दिये। जिसे केशव ने कल्पना की लम्बी उड़ान के द्वारा विचित्र उपमान खोज निकाले। क्या वह अयोध्यापुरी के वर्णन में शब्द, अलंकार और भाव के पिष्ट-पेषण को नहीं बचा

सकता था। 'परिसंख्या' के प्रति शायद केशव को इतना अनुराग था कि वे उसकी योजना करने में थकते नहीं थे, चाहे काव्य की दृष्टि से वह दोष ही क्यों न हो।

सहोक्ति अलंकार में दो कार्यों का एक साथ होना वर्णित किया जाता है, परन्तु केवल 'सह, साथ, संग' आदि वाचक शब्दों के प्रयोग ही से इस अलंकार की सृष्टि नहीं हो जाती, और न उसमें चमत्कार आता है। केशवदास ने सहोक्ति की योजना सुन्दरतापूर्वक की है। जिस समय राम के बाण-प्रहार से रावण की मृत्यु हो जाती है उस समय संसार में दो कार्य साथ-साथ होते हैं।

भुव-भारहिं संयुत राकस कौ दल जाय रसातल में अनुराग्यौ।
जग में जय शब्द समेतहि केशव राज विभीषन के सिर जाग्यौ॥
मय-दानव-नंदिनि के सुख सों मिलिकै सिय के हिय को दुख भाग्यौ।
सुर दुन्दुभि सीस गजा सर राम कौ रावन के सिर साथ ही लाग्यौ॥

केशव के अलंकारों पर विचार करते समय हमें ऐसा विदित होता है कि उनके पात्र भी अलंकार शास्त्र के पंडित हैं। जनकपुर के स्त्री पुरुष, वन जाते समय राम को मार्ग में मिलने वाली ग्रामीण जनता, जलदेवी तथा राम भी अलंकारों के द्वारा ही अपने विचार प्रकट करते हैं। जब राम हाथी पर चढ़कर जाते हैं तो अवधवासी हाथी पर बैठे हुए राम का इस प्रकार वर्णन कर रहे हैं :—

तम पुंज लियौ गहि भानु मनौं,
गिरि अंजन ऊपर सोम मनो।
जनु भासत दानहि लोभ धरे।

रामचन्द्रिका में ऐसे कितने ही छन्द हैं जिनमें कितने ही अलंकार एक साथ आये हैं। सीता का समाचार लेकर जब

हनुमान राम के पास आते हैं उस समय राम ने हनुमान की जो प्रशंसा की है उसमें परिकरांकुर, अपन्हुति, यमक, लाटानुप्रास तथा उल्लेख अलंकार सन्निविष्ट हुए हैं :—

साँचो एक नाम हरि, लीन्हें सब दु:ख हरि।
और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ।
बानरन ही हौ तुम मेरे बानरस सम।
बली मुख सूर बली मुख निजु गाये हौ॥
साखामृग नाही बुद्धि बलन के साखामृग।
कैधौं बेद साखामृग केशव कौ भाये हौ॥
साधु हनुमन्त बलवन्त जसवन्त तुम।
गये एक काज कौ अनेक करि आये हौ॥

रामचन्द्रिका में पग-पग पर अलंकारों का प्रयोग किया गया है। पर ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ इस आलंकारिक योजना से भावोत्कर्ष में सहायता मिली हो। चमत्कार-प्रदर्शन की ही ओर केशव की विशेष रुचि रही है। केशव ने अलंकारों के विषय में अपनी कुछ मौलिकता रखी है। संस्कृत में गिनाये हुए सभी अलंकारों को केशव ने अपने काव्य में स्थान नहीं दिया। लगभग ४० अलंकार ही उन्होंने माने हैं। एक स्थान पर 'प्रेमा' अलंकार की नई सृष्टि की गई है। 'रसालंकार' का केशव ने कोई विवेचन नहीं किया।

प्रबन्ध काव्य में कथा के कलात्मक विकास के लिये यह आवश्यक है कि कथा-सूत्र कहीं ढीला न पड़ने पावे। पाठकों को कथा-प्रसंग में लीन करने के लिये कुशल कवि सरल शब्दावलि और सहज बोधगम्य भावों को स्पष्ट उक्ति द्वारा प्रकट करते हैं। केशवदास के काव्य सिद्धान्त के अनुसार काव्य में उक्ति वैचित्र्य, चमत्कार और अलंकारों का समावेश अनिवार्य

है। केशवदास ने रामचन्द्रिका में ऐसे-ऐसे छन्दों का प्रयोग किया है, जिसके तीन-तीन अर्थ होते हैं। प्रबन्ध काव्य को इतना क्लिष्ट बना देने से उसकी कथा में रस-मग्न कराने की शक्ति नहीं रहती। केशवदास की इन क्लिष्ट कविताओं के कारण ही यह लोकोक्ति प्रचलित हुई कि

"कवि को दीन न चहे बिदाई
पूछे केशव की कविताई।"

केशव की इस रुचि के कारण उनकी कविता 'अलंकार-मंजूषा' बन गई है। एक-एक शब्द को तीन-तीन अर्थों में प्रयुक्त करना शब्दों के साथ खिलवाड़ करना ही है।

जब रामचन्द्र की सेना लंका पर आक्रमण करती है, उस समय लंका-अभियान को जाती हुई सेना के वर्णन के साथ-साथ केशवदास ने रावण की मृत्यु और विभीषण की राज्यश्री का भी वर्णन कर दिया है :—

कुन्तल ललित नील भ्रकुटी धनुष नैन।
कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है॥
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन।
मध्य देश केशरी सुगज गति भाई है॥
विग्रहानुकूल सब लक्ष-लक्ष ऋक्षबल।
ऋक्षराज मुखी मुख केशोदास गाई है॥
रामचन्द्र जू की चमू, राजश्री विभीषण की।
रावण की मीचु दर कूच चलि आई है॥

(राम सेना के पक्ष में अर्थ)

कुन्तल, नील, भृकुटि, धनुष, कटाक्ष नयन और बाण नाम के वानरों से जो सेना सदा बलवान है और जिस सेना में सुग्रीव, अंगदादि वीर भूषणवत् हैं और ये ही वीर सेना

से मध्य भाग के संचालक हैं। केशरी और गज जाति के भी वानर हैं, जिनकी चाल बड़ी सुन्दर है। विग्रह और अनुकूल नाम के रीछ सरदार हैं। एक-एक सरदार के पास लाखों रीछों की सेना है। उन सरदारों में जामवन्त मुख्य हैं। यह रीछ सेना समस्त सेना के अग्रभाग में रहती है।

(विभीषण की राज-श्री के पक्ष में अर्थ)

जिसके सुन्दर काले केश हैं। भौंह धनुप के समान टेढ़ी हैं, नेत्र कमल के समान लाल हैं। बाण के समान नेत्रदृष्टि है। जिसका सौन्दर्य सदा रहने वाला है। जिसकी सुन्दर ग्रीवा मोतियों से युक्त है। कमर सिंह की सी है। चाल हाथियों के समान है, जो मन को अच्छी लगती है। शरीर के प्रत्येक अंग यथायोग्य हैं। लाखों नक्षत्रों के सौन्दर्य को लेकर यदि चन्द्रमा उदित हो तो जो छवि उस चन्द्रमा की होगी, वैसी ही उसके मुख की छवि है। सब रामभक्त उसकी प्रशंसा करते हैं।

(रावण की मृत्यु के पक्ष में अर्थ)

तीक्ष्ण भाला लिये, काले रंग की, भौहें चढ़ाये, धनुप लिये, अत्याचारिणी, क्रुद्ध जिसकी चितवन बाण के समान कराल है, और जो सदा ही अत्यन्त बलवती है। गले से उच्च स्वर से गरजती है। अंगदादिक भूपणरहित मुंडमालादि भयंकर भूपण धारण किये असुन्दर अंगों वाली है और जैसे सिंह हाथी के मारने को झपटता है वैसी चाल वाली है; रावण को मारने के लिये राम का वैर ही जिसे अनुकूल हेतु मिल गया है, जिसमें लाखों रीछों का बल है, जिसका बड़े रीछ का सा भयंकर मुख है, सज्जनों ने ऐसा ही जिसका वर्णन किया है। इस रूपवाली होने से ऐसा अनुमान होता है कि यह रावण की ही मृत्यु है।

केशवदास की आलंकारिक मनोवृत्ति का परिचय 'राम-

चन्द्रिका' में आद्योपान्त मिलता है। इन अलंकारों और चमत्कारों के संविधान में केशवदास ने कथावस्तु की भी आहुति दे दी है। अलंकारों के फेर में कवि इतना पड़ जाता है कि वह कथावस्तु को ही भूल जाता है। कभी-कभी अलंकारों के हेतु बढ़ाये गये दृश्य इतने लम्बे हो गये हैं, कि पढ़ते-पढ़ते मन ऊब जाता है। केशवदास का अलंकार सम्बन्धी सिद्धान्त इतना दृढ़ और अकाट्य था कि वे उसे कभी भी नहीं भूले। जिन प्रसंगों में वे अलंकारों का समावेश नहीं कर सकते थे, ऐसे प्रसंगों को उन्होंने हटा दिया है। अलंकारों के प्रयोग में कवि को अद्वितीय प्रतिभा, कल्पना शक्ति और सूझ से काम लेना पड़ा है। आचार्य दण्डी के समान केशव भी 'अलंकारहीन कविता को विधवा' समझते थे (अलंकाररहिता विधवेव सरस्वति) इसीलिये अलंकारों के प्रयोग ही में कवि काव्य-सौन्दर्य समझता था।

शैली

भाषा एक सामाजिक देन है, जिसे प्राप्त करके व्यक्ति अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करता है। यद्यपि अपने समाज की भाषा को समस्त व्यक्ति समान रूप से प्राप्त करते हैं, तो भी कुशल कलाकारों की रचना में शब्द चयन, वाक्यों का गठन, मुहाविरों का प्रयोग और संगीत की विशिष्टता कुछ ऐसी विशेषता लिये हुए होती है जिससे उस रचना में हमें उस कलाकार के व्यक्तित्व का अनुमान हो जाता है। कुशल कवि अपने विचारों को इस नूतनता के साथ अभिव्यक्त करता है कि प्रत्येक पंक्ति को देखते ही पाठक को यह विदित हो जाता है कि यह अमुक कलाकार की रचना है। उस प्रणेता की कृति में हमे उसके व्यक्तित्व की अमिट छाप दृष्टिगोचर होती है। जब केवल पद्यांश को देखकर ही हम यह घोषित करते हैं कि यह अमुक कवि की रचना है उस समय

हमारा ध्यान उस पद्य में सन्निहित भावों पर उतना नहीं रहता, जितना कि भावाभिव्यञ्जन की शैली पर। सफल कलाकार वही है जो अपनी रचना में ऐसे विशिष्ट गुणों का समावेश कर दे, जिससे उसकी प्रत्येक कृति में इतनी मौलिकता और सजीवता आ जावे, जिससे बिना संदर्भ से अवगत हुए ही यह कह दिया जा सके कि इसका रचयिता अमुक कवि है। किसी आलोचक ने शैली को 'विचारों का परिधान' कहा है। यह मत सही नहीं है। शरीर और परिधान स्पष्टतः दो पृथक-पृथक वस्तु हैं, लेकिन शैली और विचार तो अभिन्न हैं। इसलिये एक दूसरे आलोचक को यह घोषणा करनी पड़ी कि शैली 'कलाकार का परिधान' नहीं है, प्रत्युत वह तो 'कलाकार की त्वचा' है। अन्य व्यक्तियों से भाव एवं भाषा ग्रहण करने पर भी कुशल कलाकार उसमें मौलिकता के समावेश से विशेषता उत्पन्न कर देता है। जिस सच्चाई के साथ, हृदय की तल्लीनता के संयोग से श्रेष्ठ साहित्य की सर्जना की जाती है वही सचाई और हृदय-तादात्म्य विशिष्ट शैली का निर्माण करता है। कोई व्यक्ति जो प्रत्यक्ष रूप से अपने हृदय के अनुभूत भाव की अभिव्यञ्जना करना चाहता है, उसे अपनी विशिष्ट शैली के द्वारा उस भाव को प्रकट करने में कोई कठिनाई प्रतीत न होगी। सच तो यह है कि हम अपने स्वयं के विचारों को दूसरों की शैली में प्रकट नहीं कर सकते। कलात्मक अनुकरण जीवन की व्यापकता को प्रदर्शित करने में असफल ही रहेगा। कलाकार भले ही अपने पूर्ववर्त्ती रचनाकारों का अनुकरण करे, किन्तु उसकी हृदयगत क्षमता या असमर्थता इस बात को अन्ततोगत्वा प्रकट कर देगी कि उसमें भाव संप्रेषण की शक्ति कितनी है।

केशवदास संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्, चमत्कारप्रिय तथा राजसी वैभव के भोक्ता थे। कवि का जीवन जैसे वातावरण में

रहा उसकी अमिट एवं व्यापक छाप हम उसके काव्य में पाते हैं। इतना ही नहीं, विचारों की अभिव्यक्ति में भी हमें केशव में एक विशेषता के दर्शन होते हैं। सूर के पद, मीरा की विरहवाणी तथा तुलसी की प्रत्येक चौपाई जिस प्रकार उसके रचनाकार का परिचय करा देती है उसी प्रकार केशव का प्रत्येक छन्द सहज ही में यह बोध करा देता है कि यह केशव के पुष्ट मस्तिष्क से ही प्रसूत हुआ है। यही है कवि की सच्ची महानता। कुछ आलोचकों को केशव के काव्य में हृदय-हीनता दिखलाई देती है। जो कवि इतनी मौलिकता एवं प्रवेग के साथ अपने भावों को प्रकट करता है, जिसमें उसका व्यक्तित्व मुद्रित रहता है उसे हृदय-हीन कहना सही नहीं है। केशव का हृदय जिन वस्तुओं एवं विषयों में रम रहा था; और जीवन को जिस दृष्टि कोण से उन्होंने देखा, उसी को अपने काव्य में अंकित किया है। कवि दूसरों की भावनाएँ लेकर नहीं आता, वह तो स्वयं के अनुभूत जीवन को ही प्रकट करता है। जैसा केशव का जीवन था, वैसा ही उसका काव्य है। केशव ने संस्कृत के कवियों की उक्तियों को अपनी रचना में स्थान दिया है; किन्तु उनका प्रदर्शन इतनी सुन्दरता के साथ किया है कि वे उक्ति केशव की ही प्रतीत होती हैं, संस्कृत की अनुवाद नहीं।

संस्कृत साहित्य के अन्तिम चरण में अलंकार एवं रस का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया गया। उस समय कुछ मीमांसक तो भाव को ही काव्य की आत्मा मानते थे, कुछ काव्य में कला पक्ष की सर्वोपरिता का समर्थन करते थे। कला वर्ग के प्रतिपादकों ने अलंकार को कविता की मनोरमता के लिये अनिवार्य घोषित किया। संस्कृत साहित्य की इसी परम्परा का अनुकरण केशव ने किया। केशव ने रस और अलंकार के निरूपण में पृथक-पृथक ग्रंथों की रचना की। इसके अतिरिक्त वे सदा अलंकारवादी रहे।

ोंने काव्य में सर्वत्र शाब्दिक चमत्कार को ही महत्व दिया । राजसी वातावरण में रहने के कारण केशव के ग्रन्थों में ...का वैचित्र्य सहज ही में आ गया है। इंद्रजीतसिंह के दरबार ... आने वाले कवि तथा दरबारियों पर अपने पांडित्य की छाप ...कि.. करने के लिये केशव ने ऐसी रचना की जिससे सुनने वाले प्रभावित हों। केशव एक तो स्वयं चमत्कारवादी थे; दूसरे उनका व्यक्तित्व आश्रयदाता राजाओं से प्रभावित था। अतः अलंकृत शैली ग्रहण करने पर भी अपनी भावुकता प्रदर्शित करने के लिये केशव को अवसर ही न मिला। रस के उद्रेक की ओर वे बहुत कम ध्यान दे सके। काव्य के गुण दोपों की व्यापक विवेचना करके भी केशव हृदय की कोमल भावना की अभिव्यंजना की ओर आकर्पित न हुए यह आश्चर्यजनक ही है।

हिन्दी के अन्य कवियों ने भी राजदरबार और राजकीय वैभवों का वर्णन किया है; किन्तु उनके वर्णनों में न तो सजीवता ही है और न स्वाभाविकता ही। उन कवियों का राज दरबारों से कोई सीधा सम्पर्क न था। उन्होंने तो सुनी हुई बातों या लक्षण ग्रंथों में दिये हुए वर्णनों के आधार पर ही राज दरबारों के चित्र केवल वस्तु परिगणन शैली के अनुसार अंकित कर दिये हैं। राज दरबारों में वैभव की ही प्रचुरता नहीं होती अपितु वहाँ के जीवन में एक अद्भुत कोमलता, बनावट तथा महत्ता आ जाती है। पारस्परिक संलाप भी एक विशेप रीति से किये जाते हैं। राज दरबार की मर्यादा का अतिक्रमण कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता। केशव ने दरबार में उपस्थित रहकर वहाँ की परिपाटियों का पूरा अध्ययन ही नहीं, अभ्यास भी किया था। यही कारण है कि उन्होंने अपनी अलंकृत भाषा में उस देदीप्यमान राजसीय वैभव का विस्तार के साथ वर्णन किया

है। राम के शयनागार, अयोध्या की रोशनी, राजमहल, संगीत, नृत्य, सेज आदि के वर्णनों में केशव ने इन्द्रजीतसिंह के पास रहकर जो देखा वही स्पष्टतः अंकित किया है; अन्यथा ऐसे वर्णनों का राम के जीवन से न तो कोई विशेष सम्बन्ध ही है और न इसके कारण कथा में ही कोई रोचकता आई है। राम के समक्ष होने वाले संगीत और नृत्य हमें ओरछा नरेश के दरबार, में होने वाले संगीत और नृत्य का आभास कराते हैं। राज दरबारों में लावण्यवती नर्तकियाँ जिस प्रकार नूपुर झंकार और हाव भाव तथा संगीत से राजा के मन को मुग्ध किया करती थीं वही वर्णन केशव ने राम के दरबार के सम्बन्ध में किया है। केशवदास उन संगीतों में द्रष्टा के रूप में ही उपस्थित नहीं रहे अपितु, उन्होंने गायनादि में सक्रिय भाग भी लिया। प्रवीणराय के वे गुरु थे। यही कारण है कि उनके संगीत एवं नृत्य वर्णन इस बात के परिचायक हैं कि कवि न केवल इन कलाओं का ज्ञाता है, अपितु उसका हृदय इस राग-रंग में पूर्णतः ओत-प्रोत है।

आइ बनि बाला, गुण-गण-माला, बुधिबल रूपन बाढ़ी।
शुभ जाति चित्रिनी, चित्रगेह ते, निकसि भई जनु ठाढ़ी॥
मानो गुन संगनि, स्यों प्रति अंगनि, रूपक-रूप विराजै।
बीणानि बजावै, अद्भुत गावै, गिरा रागिनी लाजै॥

रंग महल वाद्य यन्त्र तथा नृत्य की झङ्कार से गुंजायमान हो रहा है :

अमल कमल कर आँगुरी, सकल गुणन की मूरि।
लागत थाप मृदंग मुख, शब्द रहति भरिपूरि॥

राजाओं की शैय्या पर कितने कोमल तकिए रखे जाते थे उसका भी वर्णन केशव ने किया है :—

चंपक दल दुति के गेडुए। मनहु रूप के रूपक उए।
कुसुम गुलावन की गलसुई। वरणि न जाय न नैनन छुई॥

आशय यह है कि चंपई रंग के तकिए हैं, गुलावी रग की गलसुई है, जो अवर्णनीय है, क्योंकि उन्हें दृष्टि से छूते नहीं बनता। तकियों को चंपक वर्ण कहने में भी विशेषता है। वह यह कि उस शैया पर सोने वाले दंपति कमल मुख हैं। कहीं सुप्तावस्था में भ्रमर आकर दंश न मारें अतः तकिए चम्पा रङ्ग के हैं। चम्पा के निकट भ्रमर जाता ही नहीं है।

केशवदास को जहाँ भी विषय अपनी रुचि के अनुकूल प्राप्त हुआ है, वहाँ उन्होंने उसका सविस्तार वर्णन किया है। वहाँ कवि की दृष्टि उस दृश्य पर ही स्थिर हो जाती है, उसे कथा का ध्यान भी नहीं रहता। शृंगार वर्णन करते समय केशव ने रमणीय भावना का प्रदर्शन किया है। इनकी भाषा और भाव में अद्वितीय सामञ्जस्य है।

किसी भी वर्णन को केशव ने विना आलंकारिक योजना के अंकित नहीं किया है। उनकी भाषा, अलंकार, पद सौष्ठव और भावव्यंजना में उनके व्यक्तित्व का ही प्रतिविम्ब है। "शैली ही व्यक्ति है" का सिद्धान्त केशव की रचना के सम्वन्ध में अक्षरशः चरितार्थ होता है। केशव ने भले ही अलंकारों की योजना वलपूर्वक की हो, किन्तु कहीं-कहीं तो वे चमत्कारिक शब्दों की अवलियाँ हृदय को आकर्षित ही कर लेती हैं। कवि ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिसे पढ़कर ही उनका आशय ध्वनित हो उठता है। सीता की खोज के लिये सव वानर और रीछ जा रहे हैं। उनके वर्णन में कवि ने शब्दों के प्रयोग के द्वारा ही उनके जाने की क्रिया को प्रदर्शित कर दिया है।

चंड चरण, छुंड धरनि, मंडि गगन धावहिं ।
तत्क्षण हुइ दक्छिन दिसि लक्ष्यहिं नहिं पावहिं ॥
धीर धरन वीर वरन सिन्धु तट सुहावहीं ।
नाम परम, धाम धरम, राम करम गावहीं ॥

केशव के शब्दों में जितनी भाव-संप्रेषणता है उतनी ही अर्थ गम्भीरता भी है । भाषा पर उन्हें बड़ा अधिकार है । उनका शब्द ज्ञान इतना अपरिमित है कि उन्होंने ऐसे-ऐसे छन्दों की रचना की है जिनके पाँच अर्थ तक हो जाते हैं ! 'कविप्रिया' में एक छन्द है जिसके ५ अर्थ किये जाते हैं । रामचन्द्रिका में भी ऐसा पद है जिसके तीन अर्थ हैं ; दो अर्थ रखने वाले पद तो रामचन्द्रिका में कितने ही हैं । राम की सेना जब लंका पर आक्रमण करने के लिये जाती है उस छन्द के तीन अर्थ हैं । १. राम सेना का, २. विभीषण की राज्यश्री का, ३. रावण की मृत्यु का ।

कुंतल ललित नील, भृकुटी धनुष नैन ।
कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है ॥
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन, मध्यदेश ।
केशरी सुगज गति भाई है ॥
विग्रहानुकूल सब लक्ष लक्ष ऋक्ष बल ।
ऋक्षराज मुखी मुख केशोदास गाई है ॥
रामचन्द्र जू की चमू राजश्री विभीषण की ।
रावण की मीचु दरकूच चलि आई है ॥

ऐसे पदों की रचना साधारण ज्ञान के कवियों द्वारा नहीं की जा सकती । केशवदास की रचना उनके प्रकांड पाण्डित्य तथा भाषा-ज्ञान का ज्वलन्त उदाहरण हैं । काव्य की कलात्मक

अभिवृद्धि का जो कार्य केशव के द्वारा सम्पादित किया गया वह उनके पश्चात् हिन्दी साहित्य में फिर दृष्टिगोचर न हुआ। समाज के बन्धन कवि की कल्पना को न तो प्रभावित कर सकते हैं और न बाधित ही। केशवदास ने अपनी रुचि के अनुकूल की काव्य रचना की है और उसका तत्काल सुफल भी उन्हें प्राप्त हुआ।

६

रामचन्द्रिका के सर्वोत्कृष्ट संवाद

पात्रों के चरित्र का विकास करने के लिये कवि को भिन्न-भिन्न शैलियों और उपादानों का आश्रय लेना पड़ता है। इतिवृत्त के कथन मात्र से पात्रों के चरित्र का निरूपण किया जाता है किन्तु एक तो इसके द्वारा ग्रन्थ का आकार अनावश्यक रूप से बढ़ जाता है और फिर चरित्रांकण में भी उतनी सफलता नहीं मिलती जितनी कि कथोपकथन के द्वारा। वैसे तो सम्वादों का प्रमुख महत्व दृश्य काव्य ही में है। नाटककार को अपनी ओर से कुछ कहने का स्थल नहीं मिलता अतः जिस भावना और आदर्श को वह प्रतिवादित करना चाहता है उसे वह किसी न किसी पात्र के द्वारा ही प्रकट करा सकता है। कथोपकथन नाटक का सर्वस्व है। पात्रों का चरित्र-चित्रण और कथावस्तु का पूर्ण निर्वाह नाटकों में अनिवार्य है।

कवि भी अपनी उत्कृष्ट कल्पना शक्ति से कथा का प्रसार करता है। अपने तात्पर्य कथन के साथ ही वह स्वतंत्र रूप से कथोपकथन का निर्माण भी कर सकता है। कथा प्रवाह में कवि कभी अपने द्वारा अथवा कभी किसी पात्र के द्वारा कुछ अभीष्ट कथन करा देता है, जिससे उसके चरित्र का पता चल जाता है, परन्तु कुशल कवि प्रबन्ध काव्य के भीतर वर्णनात्मक पद्धति का पालन करते हुए भी उपयुक्त स्थलों

पर सम्वादों की योजना करके अभिनयात्मक चमत्कार उत्पन्न कर देता है। ऐसे चरित्रांकण में ओज, स्वाभाविकता और सजीवता विशेपरूप से परिलक्षित होती है। कवि की इन कौशलपूर्ण उक्तियों में पाठक का हृदय शीघ्र ही भावोद्रेक में मग्न हो जाता है।

केशवदास राजा इन्द्रजीतसिंह के दरबार के एक उज्ज्वल रत्न थे। राजनीति में भी उनकी प्रखर प्रतिभा की धाक थी। राजसभा और राजनीतिक कार्यों का वैयक्तिक अनुभव होने के कारण केशवदास की वाणी में विलास और एक अद्भुत वाक्यपटुता पायी जाती है। राजसभा में सभासदों के व्यवहार में जो एक भद्रता और अपरिमित शिष्टाचार आ जाता है, साधारण बातचीत में भी जो विशिष्टता आ जाती है, उसका प्रभाव केशवदास की कविता पर भी पड़ा। आलंकारिक मनोवृत्ति होने के कारण केशवदास ने रामचन्द्रिका में केवल उन्हीं प्रसंगों को अंकित किया, जहाँ वे अपनी इस मनोवृत्ति की स्वच्छन्द अभिव्यंजना कर सकते थे। इसी प्रकार केशव अपनी वाक्पटुता और राजसभा के नियमों के पांडित्य का भी प्रदर्शन करना चाहते थे, अतः उन्होंने रामचन्द्रिका में स्थल-स्थल पर सम्वादों की योजना की है। सम्वादों की रचना में केशव ने विशेष निपुणता और कौशल का परिचय दिया है। दरबारी कवि होने के कारण भिन्न-भिन्न वर्ग के व्यक्तियों की व्यवहारिक रीति-नीति से वे पूर्णतया परिचित थे। केशव ने समय-समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्रा भी की थी और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के कारण वे बहुज्ञ भी थे; इसी कारण उनके सन्वाद हमारे सामने प्रत्यक्ष भाव उत्पन्न कराते हुए प्रतीत होते हैं। राजनीति के दाव पेचों से पूर्ण उक्तियाँ केशव ने कई अवसर पर अपने

पात्रों के मुख से कहलवाई हैं। जहाँ व्यंग अथवा कूट-नीतिज्ञता प्रदर्शित की जा सकती है, उन्हीं प्रसंगों में राम-चन्द्रिका में सम्वादों की योजना की गई है। यह सच है कि रामायण में महाकवि तुलसीदास ने जिन प्रसंगों में विशेष भावुकता प्रदर्शित की है, उन प्रसंगों में केशवदास प्राय: उदासीन ही रहे। जहाँ गंभीर मनोभावों को अंकित करने की आवश्यकता थी उस स्थल पर केशव ने सम्वाद नहीं रक्खे हैं; जैसे दशरथ कैकेयी-सम्वाद और पंचवटी में राम-भरत सम्वाद। इन स्थलों पर तुलसीदास जी ने मानवीय भावनाओं और दुर्बलताओं तथा राजनीति, लोकनीति एवं धर्म-नीति की विशद व्यंजना की है। रामचन्द्रिका में सम्वाद केवल वहीं प्रयुक्त हुए हैं जहाँ वाग्वैदग्ध्य और राजनीतिज्ञता प्रदर्शित करना अभीष्ट है; अन्य प्रसंगों में सम्वाद नहीं रखे गये। गंभीर स्थलों पर भी केशव यदि सम्वादों की योजना करते तो बहुत संभव था कि उन्हें यथोचित सफलता न मिलती।

रामचन्द्रिका में आद्योपान्त उपयुक्त प्रसंगों में सम्वादों का समावेश किया गया है। प्रथम प्रकाश से लेकर अन्तिम प्रकाश तक कथोपकथनों की सुन्दर, चमत्कारिक और ओजपूर्ण योजना की गई है। युद्ध वर्णनों में प्रायः कवियों ने शस्त्रास्त्रों के प्रहार और रुधिर की नदी के प्रवाह का ही वर्णन किया है; लेकिन केशव ने युद्ध-स्थल पर भी प्रसंगानुकूल शाब्दिक संघर्ष की योजना की है। केशवदास की यह विशेषता है कि उन्होंने युद्ध-स्थल में बाण वर्षा के साथ साथ वाक्-वर्षा भी करायी है।

रामचन्द्रिका में निम्नलिखित सम्वादों की योजना की गई है :—

१. दशरथ-विश्वामित्र सम्वाद

२. वशिष्ठ-दशरथ सम्वाद
३. रावण-बाणासुर सम्वाद
४. जनक-विश्वामित्र और राम सम्वाद
५. राम-परशुराम सम्वाद
६. परशुराम-वामदेव सम्वाद
७. राम-कौशल्या सम्वाद
८. शूर्पणखा-राम-लक्ष्मण सम्वाद
९. रावण-हनुमान सम्वाद
१०. रावण-अंगद सम्वाद
११. सीता-रावण सम्वाद
१२. लव-कुश-शत्रुघ्न, विभीषण और अंगदादि सम्वाद

उक्त सम्वादों में कुछ सम्वाद तो छोटे हैं, उदाहरणार्थ दशरथ-विश्वामित्र सम्वाद, वशिष्ठ-दशरथ सम्वाद, परशुराम-वामदेव सम्वाद और राम-कौशल्या सम्वाद।

सम्वादों में केशव ने पात्रों की चरित्रगत विशेपताओं का पूर्णतः ध्यान रखा है। रामचन्द्रिका में दशरथ का चरित्र अंकित न हो सका। राम-वन-गमन की घटना को कवि ने संक्षेप ही में वर्णन किया है, अतः प्रतिज्ञा पालन और पुत्र वियोग के धर्म-संघर्ष की परिस्थिति में दशरथ के हृदय को कैसा भीपण सन्ताप हुआ, इसके सम्बन्ध में कवि ने कुछ भी नहीं कहा। लेकिन जब विश्वामित्र राम को लेने के लिये आते हैं उस समय दशरथ स्वयं विश्वामित्र के साथ यज्ञरक्षा करने के लिये जाना चाहते हैं। जब वशिष्ठ के आदेशानुसार दशरथ को राम और लक्ष्मण को भेजने के लिये बाध्य होना पड़ता है, उस समय उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। रोते-रोते उनकी आँखें लाल हो जाती हैं :—

नृप पै वचन वशिष्ठ को, कैसे मेटो जाय।
सौंप्यो विश्वामित्र कर, रामचन्द्र अकुलाय॥
राम चलत नृप के युग लोचन। बारि भरित भये वारिद रोचन॥
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं। केशव उठि गये भीतर भौनहिं॥

रामायण में परशुराम का आगमन उस समय हुआ जब धनुष टूट जाने पर राजाओं में विवाद चल पड़ा। परशुराम के आ जाने से 'क्रोधी भूप उलूक लुकाने' और इस प्रकार सभा मंडप में फैली महा गड़बड़ी शान्त हुई। परशुराम के प्रबोधन का कार्य रामायण में लक्ष्मण ने किया है, पर रामचन्द्रिका में भरत का प्रभुत्व है। अपने गुरु के धनुष को टूटने का समाचार जानकर परशुराम रोष में आ गये। अपने परसे को सम्बोधित करके बार-बार वे यह कहने लगे कि क्षत्री बालकों पर दया करेगा तो तुझे धिक्कार है :—

लक्ष्मण के पुरिखान कियो पुरषारथ सो न कह्यो परई।
वेष बनाय किया वनितान को देखत केशव ह्यौ हरई॥
क्रूर कुठार निहारि तजो फल ताकौ यहै जु हियो जरई।
आजु ते तोकहँ बंधु महाधिक क्षत्रिन पै जु दया करई॥

परशुराम और राम सम्वाद में, राम के हृदय की गंभीरता, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, संकोच, शील और संयत भाषा का प्रयोग बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। क्रोधित परशुराम कभी तो

सितकंठ के कंठन को कठुला,
दशकंठ के कंठनि को करिहौं।

और कभी—

"जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो,
आज अनाथ करौं दशरत्थहिं।"

उस समय परशुराम से युद्ध करने के लिये भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण उद्यत होते हैं, तब राम यह कह करके रोक देते हैं कि ब्राह्मणों की भक्ति करना चाहिये, उनसे युद्ध करना अनीति है :—

लियो चाप जब हाथ, तीनहु भैयन रोष करि।
बरज्यौ श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा॥
भगवन्तन सों जीतिए, कबहुँ न कीन्हे शक्ति।
जीतिय एकै बान तें, केवल कीन्हे भक्ति॥

परशुराम जब तक राम के प्रति क्रोध करते रहे उस समय तक वे परशुराम के प्रति श्रद्धापूर्वक व्यवहार करते रहे, परन्तु जब परशुराम ने उनके गुरु के लिये निन्दात्मक ये शब्द कहे कि :—

"राम कहा करिहो तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नन्द तिहारे गुरु जिनते ऋषिवेश किए उबरे हैं"॥

जब गुरु को अपमानजनक शब्द कहे गये उस समय राम के औदार्य और मर्यादा की भावना लुप्त हो जाती है और उनके हृदय में क्रोध की यह भावना जाग्रत हो जाती है :—

मगन भयो हर धनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं॥
सकल लोक संहरहु सेस सिरते धर डारौं।
सप्त सिन्धु मिलि जाहि होहि सबही तम भारो॥

अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय बर।
भृगुनन्द सँभारु कुठार मैं कियौ सरासन युक्त सर॥

रामचरितमानस में राम के मुख से वनगमन का समाचार सुनकर कौशिल्या राम से कहती हैं :—

"जौ केवल पितु आयेसु ताता।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जो पितु मातु कहेउ वन जाना।
तो कानन सत अवध समाना ॥

रामायण में इस प्रकार कौशिल्या का रूप कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझने वाली विवेकिनी माता का है। वह पुत्र-वियोग जैसे संकटापन्न अवसर में बुद्धि और धैर्य को नहीं जाने देतीं। रामचन्द्रिका में केशव ने राम वनगमन प्रसंग का संक्षिप्त वर्णन किया है, यही कारण है कि इस मर्मस्पर्शी स्थल पर भावोद्रेक का जैसा प्रकर्ष होना चाहिए वैसा केशवदासजी न दिखला सके। पात्रों की चारित्रिक विशेषता भी इन स्थलों पर प्रायः अस्पष्ट है। जैसे ही राजा दशरथ ने वशिष्ठ को अपना यह मन्तव्य सुनाया कि

"हम चाहत रामहि राज दयो" कि
"यह बात भरत्थ की मातु सुनी।
पठऊ बन रामहि बुद्धि गुनी" ॥

रामचन्द्र भी इसे सुनकर न तो दशरथ से मिलने जाते हैं और न माता कौशिल्या से विदा लेने

"उठि चले विपिन कह सुनत राम।
तजि तात मातु तिय बन्धु धाम" ॥

कथा-प्रवाह की दृष्टि से कवि को सम्पूर्ण घटनाओं को क्रम-क्रम से रखना चाहिये। कवि ने पहिले तो राम का बन जाना प्रकट कर दिया है और फिर यह लिखा कि

"गये तहँ राम जहाँ निज मात।
कही यह बात कि हौं बन जात" ॥

कौशिल्या ने इसे सुनकर क्रोधित होकर यही कहा कि तुम वन को न जाओ। जो तुम्हारे (रामके) मुख को न देख सकें, ईश्वर उनके हृदयों को जला दे। कौशिल्या रामके साथ वन चलने को कहती हैं "मोहिं चलौ वन संग लिये" उस समय राम ने माता कौशिल्या को पतिव्रता स्त्री के कर्त्तव्य और विधवा के कर्त्तव्यों का उपदेश दिया है। इस प्रकार का उपदेश यदि वशिष्ट आदि के मुख से किसी अन्य साधारण स्त्री को दिलाया जाता तो युक्ति-युक्त रहता। पुत्र द्वारा माता को उपदेश दिलाना मर्यादा और शालीनता के विरुद्ध ही है। फिर कौशिल्या जैसी साध्वी स्त्री को ऐसे उपदेशों की क्या आवश्यकता थी? केशवदास ने यहाँ यह भी ध्यान न रखा कि कौशिल्या तो सौभाग्यवती है उसे विधवा के कर्त्तव्यों की शिक्षा क्यों दिलाई जाय? राम उपदेश देते हुए अपनी माता से कहते हैं :—

तुम क्यों चलौ बन आजु।
जिन सीस राजत राजु॥
जिय जानिये पतिदेव।
करि सर्व भाँतिन सेव॥

पति देइ जो अति दुःख। मन मानि लीजै सुक्ख।
सब जगत जानि अमित्र। पति जानि केवल मित्र॥

नारी तजै न आपनो सपनेहू भरतार।
पंगु गुंग बौरा बधिर, अंध अनाथ अपार॥
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी।
बालक पण्डु-कुरूप सदा कुवचन जड़ जोगी॥
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी॥

गोस्वामी तुलसीदास ने अनुसूया द्वारा सीता को पातिव्रत्य का उपदेश दिलाया है। ऋषि पत्नी के द्वारा उपदेश दिलाना उचित है; वह अनुसूया भी सीता से यह कहती हैं कि तुम्हें तो ऐसे उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु मैंने तुम्हारे बहाने अन्य स्त्रियों को उपदेश दिया है :—

"सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्राणप्रिय राम, कहेउँ कथा संसार हित॥"

अनुसूया कृत इस उपदेश में पात्रों की मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखा गया है। अनुसूया यह कहती है कि :—

वृद्ध रोगवस जड़ धन हीना। अन्ध बहिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुःखनाना॥

रामचन्द्रिका में राम कौशिल्या को विधवा स्त्री के कर्त्तव्यों की भी शिक्षा देते हैं :—

गान बिन मान बिन हास बिन जीवही।
तप्त नहि खाय जल सीत नहिं पीवही॥
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवही।
सीत जल न्हाय नहिं उष्ण जल छीवही॥
खाय मधुरान्न नहिं पाय पनही धरै।
काय मन वाच सब धर्म करिबौ करै॥

एक तो कौशिल्या जैसी रमणीरत्न को ऐसे उपदेशों की आवश्यकता नहीं थी और फिर राम के द्वारा ऐसी बातें कहलाने से हृदय को क्षोभ होता है।

अंगद-रावण सम्वाद में केशवदास ने राजसभा की मर्यादा का भली भाँति पालन कराया है। तुलसीदास ने अपने सिद्धान्त के अनुसार पात्रों के कथोपकथन में शील तथा मर्यादा का काफी ध्यान रखा है, किन्तु जहाँ पात्र राम विरोधी हैं वहाँ उनकी

मर्यादा का ध्यान उतना नहीं रक्खा गया है। परशुराम-लक्ष्मण सम्वाद में लक्ष्मण से ऐसी उक्तियाँ कहलवाई गई हैं, जिनमें वृद्ध परशुराम के प्रति अश्रद्धा प्रकट होती है। इतना ही नहीं, रावण और अंगद के सम्वाद में तो तुलसीदास जी ने दरबार की मर्यादा का अतिक्रमण करा दिया है। अंगद दूत बनकर रावण की सभा में गया था, उसे रावण के प्रति सम्मान प्रकट करना आवश्यक था। लेकिन अंगद ने रावण से यह कहा "हैं तव दशन तोरिबे लायक"। अंगद की यह उक्ति सचमुच ही उसके दौत्य कार्य के प्रतिकूल थी। इसमें दरबार के गौरव और मर्यादा का ध्यान नहीं रखा गया। रामचन्द्रिका में अंगद यह कभी नहीं भूलता कि वह दूत कर्म कर रहा है। अंगद के द्वारा रावण की मर्यादा की रक्षा कराई गई है। मन्दोदरि के लिये भी वह सम्माननीय शब्दों का प्रयोग करता है :—

"देवि मन्दोदरी कुंभ कर्नादि दै"

रावण की अपकीर्त्ति का उल्लेख अंगद ने किया है किन्तु वह प्रश्नोत्तर के रूप ही में है :—

कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि, न जानिये ?
काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये ।
हैहय कौन ? वहै बिसर्‌यौ जिन खेलत ही तोहि बाँधि-बाँधि लियौ ?

पात्र की व्यक्तिगत विशेषताओं का सम्वादों में पूर्णतया निर्वाह किया गया है। इन सम्वादों में नाटकत्व है। बुन्देलखंड में भिन्न-भिन्न अवसरों पर ये सम्वाद रामलीला के साथ अब भी प्रयुक्त होते हैं बल्कि तुलसीदास के सम्वादों के स्थान में प्रायः केशव के सम्वाद ही विशेष प्रचलित हैं; क्योंकि इनमें जो हास्य, व्यंग और आवेग भरा हुआ है, वह शान्त प्रकृति वाले तुलसी के सम्वादों में प्रायः नहीं मिलता।

सम्वादों में कथोपकथन का चमत्कार तो अवश्य है परन्तु कहीं-कहीं प्रश्न और उत्तर इतने गुम्फित हैं कि यह जानना कठिन हो जाता है कि प्रश्नकर्त्ता कौन है और उत्तर क्या दिया गया है। नाटककार भिन्न-भिन्न पात्रों द्वारा कहे हुए वाक्यों के प्रारंभ करने के पूर्व उस पात्र का नाम भी लिख देता है। रामचन्द्रिका में भी इसी शैली का पालन किया गया है। प्रबन्ध काव्य में कथा-प्रवाह में ही ये सब बातें समाविष्ट रहती हैं। पात्रों के नामों का पृथक निर्देश नहीं किया जाता। रामचन्द्रिका में इस नाटकीय तत्व का समावेश है; परन्तु इससे कथावस्तु के प्रवाह और रस निष्पत्ति में कभी-कभी बड़ी बाधा पहुँचती है। उस पंक्ति को पढ़ने के पूर्व कथन कर्त्ता का नाम पढ़ना या खोजना पड़ता है जिससे रस की अनुभूति नहीं हो पाती :—

(परशुराम) यह कौन को दल देखिये ?
(वामदेव) यह राम को प्रभु लेखिये।
(परशुराम) यह कौन राम न जानियो ?
(वामदेव) सर ताड़िका जिन मारियो।
(परशुराम) ताड़का संहारी, तियन विचारी,
कौन बड़ाई ताहि हनै।
(वामदेव) मारीच हुतौ संग, प्रबल सकल खल,
अरु सुबाहू काहू न गनै॥

इसके अतिरिक्त एक ही पंक्ति में प्रश्नोत्तर तथा उत्तर-प्रत्युत्तर इस प्रकार मिश्रित हैं कि उन छन्दों को बड़ी सतर्कता के साथ पढ़ना पड़ता है। राम-परशुराम सम्वाद और अंगद-रावण तथा हनूमान-रावण सम्वाद में प्रश्न और उत्तर प्रत्येक पंक्ति में ऐसे सम्बद्ध हैं कि जब तक विशिष्ट ध्यान न रखा जाय तब तक सच्चे वक्ता और श्रोता को पहिचानना कठिन ही है।

रामचन्द्रिका के सर्वोत्कृष्ट संवाद

(१) रे कपि कौन तूँ ? अक्ष को घातक, दूत बली रघुनंदन जू को ।
को रघुनंदन रे ? त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण-भूषण-भू को ॥
सागर कैसे तर्‌यौ ? जस गोपद, काज कहा ? सिय चोरहि देखौ ।
कैसे बँधायौ ? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखौ ॥

(२) राम को काम कहा ? रिपु जीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यौ कहा ।
बालि बली, छल सों, भृगुनंदन गर्व हर्‌यौं, द्विज दीन महा ॥
दीन सु क्यौं, छिति छत्र हत्यो बिन प्राण न हैहयराज कियो ।
हैहय कौन ? वहै बिसर्‌यौ जिन खेलत ही तोहि बाँधि लियौ ॥

उक्त पद्यांशों में जब तक ध्यानपूर्वक यह न देखा जाय कि कौन सी बात अंगद या हनुमान कह सकते हैं और कौनसी उक्ति रावण की हो सकती है, तब तक इनका सही आशय नहीं निकाला जा सकता। प्रबन्ध काव्य में स्थिर और स्पष्ट भावना का जितना प्रकटीकरण होगा उतना ही वह कवि प्रबन्ध-पटु माना जायगा। उत्तर-प्रत्युत्तर की होड़ में केशव ने पद्यों की बोधगम्यता को अधिकांश स्थलों पर नष्ट कर दिया है।

७

केशव की भाषा

विश्व की सौन्दर्यमय कृतियों को देखकर कवि के हृदय-पटल पर जो चित्र अंकित हो जाता है, उसको वह भाषा के माध्यम द्वारा प्रकट करता है। हृदय के उस भाव-चित्र को चित्रकार अपनी तूलिका से, मूर्तिकार अपने औजारों से और गायक अपने मधुर गान से प्रकट करता है। यद्यपि भाषा, तूलिका, औजार आदि हृदय के उस चित्र के वाह्य-प्रदर्शन के माध्यम ही हैं परन्तु उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बिना इन साधनों के वह भावना प्रकट हो ही नहीं सकती। भाषा काव्य का वाह्यावरण ही है, उसकी आत्मा तो भाव ही है। भाषा की उपादेयता काव्य के लिये उतनी ही है, जितनी आत्मा के लिये शरीर की। भाषा ही वह साधन है, जिसके द्वारा मानव जाति अपनी हृद्गत् भावना को दूसरों पर प्रकट करता है। संकेतों से हृदय की यत्किंचित भावना ही प्रकट की जा सकती है। बिना भाषा के प्रयोग के मनुष्य अपने हृदय के विचारों को प्रकट करने में सफल नहीं हो सकता। मनुष्य की वैयक्तिक शिक्षा और संस्कारों के अनुरूप ही उसकी भाषा होती है अतः भाषा-शैली में भिन्नता दिखलाई देना स्वाभाविक ही है। काव्य में रमणीय अर्थ प्रकट करने वाले शब्दों का ही प्रयोग होता है। अनुपयुक्त शब्द का समावेश काव्य की रमणीयता ही नष्ट नहीं करता, प्रत्युत उन शब्दों के प्रयोग के कारण उसका काव्यत्व ही नष्ट हो जाता है।

केशवदास संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान् थे। संस्कृत के विद्वान् होने के कारण उनका शब्द भांडार पूर्ण था। प्रसंग के अनुरूप शब्दों का प्रयोग करने में कवि को अत्यधिक सफलता मिली है। जिस समय केशवदास ने काव्य-रचना प्रारंभ की थी उस समय व्रज भाषा ही हिन्दी कविता की मनोनीत भाषा थी। जायसी आदि प्रेमाश्रयी शाखा के कवि और तुलसीदास की अवधी भाषा की थोड़ी सी कृतियों को छोड़कर उस समय जो काव्य रचना की गई थी उसमें व्रज भाषा का ही प्रयोग है। व्रजभाषा ही काव्य भाषा थी। कवि-कर्म के लिये उस भाषा का अपनाना ही आदरणीय समझा जाता था। उस समय संस्कृत में कविता करना गौरव की बात समझी जाती थी। केशवदास भी उस गौरव के पद के अभिलाषी थे और इसीलिये 'भाषा' में कविता करना वे गौरव के प्रतिकूल समझते थे। जिसके घर के नौकर-चाकर भी संस्कृत में वार्त्तालाप करें वह 'भाषा' में कविता करे, यह कितने आश्चर्य और दुःख की बात थी। इसीलिये कवि ने एक स्थान पर लिखा है :—

"भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
तेहि कुल उपज्यौ मंदमति, शठ कवि केशवदास॥"

व्रज भाषा में काव्य-रचना करने के लिये यह आवश्यक न था कि व्रजभूमि में रहकर ही उस भाषा का ज्ञान प्राप्त किया जाय। 'व्रज भाषा हेतु, व्रज को निवास न विचारियतु' का विश्वास चल पड़ा था, इसीलिये बुन्देलखंड में जन्म लेने पर भी केशवदास ने व्रज भाषा का ही प्रयोग किया। उनकी भाषा में बुन्देलखंडी भाषा के शब्द और क्रिया पदों का भी कुछ प्रयोग मिलता है। जैसे इन्द्रधनुष के अर्थ में "गौरभदाइन", पिटारी के अर्थ में "चोली", कुञ्जी के अर्थ में "कुर्चा" तकिया के अर्थ

में "गेडुआ' और उपदि, दुगई और घोरला आदि शब्द। संस्कृत के शब्द 'स्वलीलया', 'निजेच्छया' 'लीलयैव', 'हरिणाधिष्ठित' का तत्सम रूप में प्रयोग किया गया है। प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग काव्य में नहीं किया जाना चाहिये। प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग वर्जित है। संस्कृत के दीर्घ समासान्त और क्लिष्ट पदों का प्रयोग भी स्पृहणीय नहीं समझा जा सकता क्योंकि इसके कारण काव्य में अनावश्यक क्लिष्टता आ जाती है। केशव की ओजपूर्ण शब्द रचना से काव्य में एक विशेष चमत्कार अवश्य आ गया है, जो साधारण वाक्य योजना से संभव न था। 'गरीब निवाज', 'सका', 'लायक'-आदि उर्दू और फारसी के कुछ शब्दों का भी प्रयोग मिलता है, पर इन भाषाओं के शब्दों के प्रयोग की ओर उनकी रुचि अधिक न थी। संस्कृत के वातावरण में पलकर उनकी भाषा में विदेशी शब्दों का कम संख्या में पाया जाना स्वाभाविक ही है। केशव ने कतिपय ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जो व्रजभाषा में बहुत प्रचलित न थे। ऐसे शब्दों के प्रयोग से काव्य में अप्रतीतत्व दोष आ गया है। केशवदास ने कुछ शब्दों को ऐसे अर्थ में प्रयुक्त किया है, जो सर्वथा नवीन है।

शब्द	अर्थ
अलोक	कलंक
लांच	रिश्वत
ऐलो	आड़
नारी	समूह

संस्कृत के विद्वान् और अलंकारवादी होने के कारण केशव की भाषा में दुरूहता और क्लिष्टता आ गई है। प्रबन्ध कथा का वर्णन करने के साथ केशव ने आलंकारिक योजना का विशेष

ध्यान रखा है, इससे भाषा में जटिलता आ गई है। भावना को यदि यथातथ्य रूप से प्रकट कर दिया जाय तो उसको पहिचानने और समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। हृदय से उद्भूत भावों का प्रभाव सर्वभूतात्मक है। कवि जब अपनी हृत्-तंत्री की झङ्कार कविता में ज्यों का त्यों अवतीर्ण कर देता है, तो उसकी कविता मानव हृदय को बरबश आकृष्ट कर लेती है। चमत्कारी और वैभव-सम्पन्न परिस्थितियों में रहने के कारण केशवदास ने अपनी भाषा को भी चमत्कार और अलंकारयुक्त बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि कविता में दुर्बोधता आ गई है। अलंकारों के पीछे पड़ जाने के कारण कविता में हृद्गत भावों की अभिव्यंजना नहीं हुई, वह तो अलंकारों के लिए लिखी हुई जान पड़ती है, हृदय की भावना या घटना-प्रसंग को वास्तविकता के साथ चित्रित करने की दृष्टि से नहीं। केशवदास का भाषा पर अमित अधिकार था। विषय और परिस्थिति के अनुरूप ही कवि ने भाषा को प्रयुक्त किया है। ध्वन्यात्मकता का सौन्दर्य भी केशव के काव्य में प्राप्त हो जाता है। शब्द-भाण्डार अपरिचित होने के कारण केशव की कविता में एक जैसे भाव को प्रकट करने के लिये भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है, यही नहीं कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग भी किया गया है, जो उस समय हिन्दी भाषा के लिये सर्वथा नवीन थे। शब्द शक्ति का कवि को पूर्ण ज्ञान था। जहाँ तक पाण्डित्य और शब्द भांडार का प्रश्न है केशवदास उसके आचार्य थे, परन्तु उनके काव्य सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त ऐसे थे जिसके कारण उन्होंने कविता के वाह्यावरण को सजाने ही में प्रतिभा का अपव्यय किया अन्यथा यदि काव्य की आत्मा के संरक्षण का ध्यान केशव रखते तो उनकी कविता शब्दों की खिलवाड़ और केवल अलंकारों की मञ्जूषा न बनी रहती उसमें भाव-संप्रेषणता और रसानुभूति भी पर्याप्त मात्रा में होती।

केशवदास की रचना में काव्यगत दोष भी स्थान स्थान पर मिलते हैं जैसे "करै साधना एक परलोक ही कौ' में च्युत-संस्कृति दोष है यहाँ "कौ" के स्थान में "की" होनी चाहिये। न्यून पदत्व दोष।

पानी पावक पवन प्रभु, ज्यौं असाधु त्यौं साधु।

इसका आशय तो यह है कि पानी, पावक, पवन और प्रभु साधु-असाधु दोनों के प्रति एकसा ही व्यवहार करते हैं परन्तु वाक्य में पर्याप्त शब्दों की न्यूनता से ऐसा अर्थ सरलता से नहीं निकल पाता।

शब्द की तीन शक्तियाँ मानी गई हैं:—१. अभिधा, २. लक्षणा, ३. व्यंजना केशवदास की भाषा पर ध्यान देने से यह विदित होता है कि उन्होंने शब्द की अभिधा शक्ति से ही अधिक काम लिया है। अभिधा शक्ति के द्वारा हम केवल शब्द के वाचक अर्थ तक पहुँच सकते हैं। काव्य में चमत्कारपूर्ण सौन्दर्य लाने के लिये जितनी लक्षणा की आवश्यकता पड़ती है उतनी अभिधा की नहीं। अभिधामूलक व्यंजना उनके सम्वादों में कहीं-कहीं अवश्य आई है। रावण हनुमान से कहता है कि "तूने सागर कैसे पार किया"। हनुमान कहते हैं "जैसे गोपद"।

सागर कैसे तर्‌यौ ? जैसे गोपद। काज कहा ? सिय चोरहिं देखौ।

कैसे बँधायौ ? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखौ॥

आशय यह है कि दृष्टि से ही रावण की स्त्री को देखने पर तो हनुमान को बन्दी बनना पड़ा और रावण ने तो एकांकी सीता का अपहरण किया है, उसे तो अति भयंकर दण्ड मिलेगा।

मुहाविरे और लोकोक्तियाँ भाषा की सुन्दरता की वृद्धि करते हैं। केशवदास ने मुहाविरों का प्रयोग तो किया है किन्तु लोकोक्तियों की ओर उनकी रुचि न थी। आलंकारिक योजना में प्रवृत्ति लीन रहने के कारण मुहाविरों का प्रयोग थोड़े ही स्थलों पर हुआ है।

१. कीन्हीं न सो कान।
२. स्वाद कहिबे को समर्थ न, गूँगे ज्यों गुर खाय।
३. दुःख देख्यौ जो काल्हि त्यौं आजहु देखौ।
४. हौं बहुतै गुन मानिहौं तेरे।
५. भूलि गई तब, सोच करत अब जब सिर ऊपर आई।
६. ब्रीस बिसे बलवन्त हुते हुती दृग केशव रूप रई जू।
७. को है इन्द्रजीत जो भीर सहै।
८. निकट विभीषण आइ तुलाने।

भाव-गांभीर्य, तत्सम संस्कृत शब्दों के प्रयोग तथा क्लिष्ट कल्पना के कारण केशव को एक युग से कठिन काव्य का प्रेत माना जाता रहा है। केशवदास संस्कृत के विद्वान् थे और उनकी कल्पना शक्ति भी विलक्षण थी, अतः अपनी बुद्धि का चमत्कार केशव ने काव्य रचना में प्रदर्शित किया है। रामचन्द्रिका को छोड़कर केशव के अन्य ग्रंथों की भाषा उतनी ही सरल है, जितनी ब्रज भाषा के अन्य कवियों की। रामचन्द्रिका में भी जब छन्दों के अर्थ को समझ लिया जाता है, उसके उपरान्त उन कल्पना की उड़ानों में भी बोधगम्यता आ जाती है। हिन्दी साहित्य के अन्य कवियों ने भी क्लिष्ट काव्य की रचना की है; किन्तु क्लिष्टत्व का दोष उन पर कभी भी आरोपित नहीं किया गया। सूर के कितने ही कूट पद ऐसे हैं जिनका अर्थ आज भी

विवादग्रस्त हैं; तुलसीदास की भी कितनी ही पंक्तियाँ ऐसी ही हैं। विनयपत्रिका के कितने ही पद ऐसे हैं जिनके अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में आज भी मतभेद है, लेकिन उन्हें अर्थ समझ में न आने के कारण ही क्लिष्ट नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जब सही अर्थ निकल आयगा उस समय काव्यगत आनन्द प्राप्त अवश्य होगा। भाव की रमणीयता ही कविता को श्रेष्ठ बनाती है और रसिक जन तो "सुबरन को ढूढ़त फिरत, कवि, भावुक अरु चोर"। थोड़ा परिश्रम करने के उपरान्त यदि भाव की शुभ्र श्रोतस्विनी प्रवाहित हो उठे तो प्रत्येक व्यक्ति को परिश्रम उठाकर उस सरिता के शीतल जल का पान करके अपने हृदय की तृषा को अवश्य बुझाना चाहिये। केशव की कविता का सतत अभ्यास करने के उपरान्त वह रचना हमें सरल और भावसम्पृक्त ही प्रतीत होगी। केशव ने वाच्यार्थ में अधिक रुचि प्रदर्शित की है, व्यंगार्थ का प्रयोग कम स्थलों पर किया गया है। रस और ध्वनि के प्रति उदासीन होने के कारण सैद्धान्तिक दृष्टि से उन्हें वाच्यार्थ पर ही ध्यान देना था। कहीं-कहीं व्यंगार्थ का भी कुशलतापूर्वक प्रयोग किया गया है :—

कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि न जानिये?
काँख चापि तुम्हें तो सागर सात न्हात बखानिये॥
है कहाँ वह वीर? अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो? रघुनाथ बान विमान बैठि सिधाइयो॥

रावण के प्रश्न करने पर अंगद ने जब यह कहा कि बालि को रामचन्द्र ने मार दिया है, उसमें यह व्यंगार्थ भी है कि जब बालि जैसे वीर को—जिसने रावण को काँख में दबाकर सात समुद्रों की परिक्रमा की थी—श्रीराम ने मार डाला। तो हे रावण! तुझे मारने में तो भगवान राम को कोई कठिनाई नहीं होगी।

कहीं-कहीं वाक्य-रचना बिल्कुल अव्यवस्थित है, जिसके कारण अर्थ पूर्णतया बदल गया है। "राज देहु जो वाकी तिया को" पंक्ति में केशव कहलवाना तो यह चाहते थे कि "सुग्रीव को यदि उसका राज्य और उसकी स्त्री दिला दो" परन्तु प्रस्तुत वाक्य रचना से यही अर्थ निकलना शक्य है कि "उसकी स्त्री को यदि राज्य दे दो" इस प्रकार की भाषा सम्बन्धी त्रुटियाँ भी रामचन्द्रिका में यत्र-तत्र दिखलाई पड़ती हैं।

केशवदास की कविता में पुनरुक्ति दोष भी कहीं-कहीं मिल जाता है—

लै धनु बाण बली तब धायो।
पल्लव जो दल मार उडायो॥

न्यून पदत्व और अधिक पदत्व दोष भी कहीं-कहीं पाया जाता है और मिलाने के लिये कवि ने शब्दों को भी कहीं-कहीं तोड़ा-मरोड़ा है।

अधिक पदत्व दोष

दोहा :—तेंतीसयें प्रकाश में, ब्रह्मा विनय बखानि।
शम्बुक बध सिय त्याग अरु कुश लव जन्म सो जानि।

'अरुणगात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ भय' में अन्तिम शब्द के स्थान में सही शब्द 'भये' है। यहाँ नीचे की पंक्ति के अन्तिम शब्द 'प्रेममय' से तुक मिलाने के लिये कवि ने 'भये' को 'भय' कर दिया।

छन्दशास्त्र के आचार्य और संस्कृत के विद्वान् होने पर उपर्युक्त प्रकार की त्रुटियाँ ऐसी नहीं थीं, जिनका परिहार केशव न कर सकते। परन्तु छन्दों का ज्ञान कराने के लिये यह रामचन्द्रिका लिखी गई है। ग्रंथारंभ में कवि ने स्वयं लिखा है:—

"रामचन्द्र की चन्द्रिका वरणत हौं बहु छन्द"

छन्द के ज्ञान के लिए विविध छन्दों के लक्षण और उदाहरण सिखला देना ही पर्याप्त नहीं है, प्रत्युत दोषों का भी ज्ञान करा देना आवश्यक होता है, जिससे काव्य के विद्यार्थी उस प्रकार के दोषों से विरत रहें। बिना बतलाए दोषों का निराकरण असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है। इसीलिए केशवदास ने संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी, च्युत-संस्कृति दोष, न्यून पदत्व और अधिक पदत्व दोष का समावेश काव्य के विद्यार्थियों की शिक्षा के हेतु ही कर दिया है ; अन्यथा इस प्रकार के साधारण दोषों का केशवदास जैसे विद्वान् की कविता में पाया जाना संभव नहीं था।

केशवदास की कविता में विविध प्रकार की शब्द-शैली और वाक्य योजना मिलती है। कवि की भाषा में प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुणों का समावेश हुआ है। प्रसंग के अनुरूप भाषा प्रयुक्त करने में केशव सिद्धहस्त थे। वीररस के समावेश के लिये द्वित्त्व और परुषावृत्ति के वर्णों का प्रायः प्रयोग किया जाता है। युद्ध वर्णनों में केशवदास ने इस शैली का स्वच्छन्द प्रयोग किया है। ओजपूर्ण वर्णन करने में केशव को अपूर्व सफलता मिली है :—

पढ़ौ विरंचि मौन वेद, जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर कै कही, न जच्छ भीर मंडि रे॥
दिनेश जाय दूर बैठि, नारदादि संगही।
न बोलु चन्द, मन्द बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥

जहाँ अलंकारों का परिच्छद कवि ने उतार दिया है और जब चमत्कारप्रियता की भावना को विस्मृत कर दिया है उस समय वर्णनों में माधुर्य गुणसूचक भावनाओं का समावेश हुआ है।

केशवदास की भाषा में क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग होने और अलंकारों के कारण अर्थ में गहनता होने से केशवदास को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा जाता है। भाषा और भाव में चमत्कारिकता ला देने के कारण केशव को प्रचुर ख्याति भी प्राप्त हुई। पाण्डित्यपूर्ण शैली में ही केशवदास काव्य प्रणयन करना चाहते थे। अध्ययन तथा निरीक्षण के द्वारा प्राप्त समस्त ज्ञान को केशवदास कला के रूप में प्रकट कर देना चाहते थे।

रामचन्द्रिका के कवित्त और सवैया आदि छन्दों की भाषा प्रायः सुव्यवस्थित और सरल है। अनुपयुक्त और अप्रचलित शब्दों के प्रयोग के कारण ही रामचन्द्रिका के छन्दों में क्लिष्टता आ गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने शब्दों को प्रयुक्त करने के पूर्व उन्हें ठीक रूप से परखा नहीं। इनकी भाषा में माधुर्य और प्रसाद की कुछ कमी ही है। ओजगुण अधिक है। वाक्य विन्यास में शिथिलता नहीं आने पाई है।

८

केशव के छन्द

काव्य में रस-निष्पत्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक रचनाकार अपने हृदय में उद्भूत होने वाले विचारों को इस प्रकार प्रकट करता है, जिससे पाठक या श्रोता के हृदय में भी वैसी ही भावनाएँ प्रस्फुटित होने लग जायँ। काव्य में इस गुण की प्रधानता होने के कारण उसका प्रभाव सर्वभूतात्मक है। संगीत के प्रति सम्पूर्ण प्राणीमात्र की सदा से अमिट अभिरुचि रही है। कलकल ध्वनि से बहने वाली स्रोतस्विनी, मन्दगति से चलने वाली हवा में और लहराती हुई लतिकाओं से एक सुन्दर संगीत की ही ध्वनि निकलती है। काव्य में संगीत के इस तत्व का समावेश एक नियमित परिपाटी पर शब्द योजना अर्थात् छन्दों का प्रयोग करने से होता है। अनादि काल से कविता और छन्द का घनिष्ट सम्बन्ध माना जाता रहा है। प्रबन्ध काव्य में छन्द-योजना के सम्बन्ध में 'साहित्य दर्पण' के प्रसिद्ध रचयिता पं० विश्वनाथ ने लिखा है 'एक वृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्य वृत्तकैः' अर्थात् एक सर्ग में एक छन्द का ही प्रयोग किया जा सकता है। केवल सर्गान्त में एक पृथक छन्द का प्रयोग किया जा सकता है। छन्दशास्त्र के अनुसार छन्दों के अनेकों प्रकार हैं। प्रबन्ध काव्य के लिये जिस नियम का प्रतिपादन साहित्य शास्त्रियों ने किया है वह सर्वथा उपयुक्त है। एक ही छन्द का प्रयोग होने से विषय और प्रसंग की अनुभूति में बहुत सहायता मिलती है। बार-बार बदलते हुए छन्दों में

पाठक को बदलते हुए छन्दों की लय से अपनी मानसिक स्थिति का समन्वय करने का बहुधा प्रयत्न करना पड़ता है. नहीं तो कथा के सूत्र को छोड़कर परिवर्तित छन्द की ओर ध्यान चला जायगा और क्रमिक अनुभूति जो कथानक में रुचि उत्पन्न करती है, शिथिल पड़ जायगी। विविध छन्दों और पदों की योजना मुक्तक-काव्य में की जा सकती है, लेकिन प्रबन्ध काव्य में तो रस निष्पत्ति के अनुरूप ही छन्दों का प्रयोग किया जा सकता है।

रामचन्द्रिका की रचना केशवदास ने आलंकारिक योजना के लिये ही नहीं अपितु भिन्न-भिन्न छन्दों में रचना करने की योग्यता प्रदर्शित करने के लिये भी की है। रस और अलंकारों की शिक्षा देने के लिये केशवदास ने क्रमशः रसिक प्रिया और कवि प्रिया की रचना की और छन्दशास्त्र के ज्ञान के लिये कवि रामचन्द्रिका की रचना में प्रवृत्त हुआ। ग्रंथारंभ ही में केशव ने अपनी इस इच्छा को प्रकट कर दिया है :—

जागत जाकी ज्योति इक, सबै रूप स्वच्छन्द ।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, बरनत हौं बहु छन्द ॥

भिन्न-भिन्न छन्दों के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए कवि रामचन्द्रिका की रचना में संलग्न हुआ। कवि प्रिया और रसिक प्रिया में केशवदास ने संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्यों द्वारा बतलाए हुए नियमों का पालन किया है, लेकिन विभिन्न छन्दों में रचना करने के लक्ष्य से प्रेरित होने के कारण केशव ने "एकवृत्तमयैः" का प्रबन्ध काव्य के लिये जो नियम है, उसका पालन नहीं किया। एकाक्षरी से लेकर अष्टाक्षरी छन्दों तक का प्रयोग रामचन्द्रिका में किया गया है। छन्द शास्त्र में जिन छन्दों के नाम और लक्षण दिये

हैं उन सबों में कवि ने रचना की है; यही नहीं छन्दों के दोषों को भी रखा है, जिससे छन्दशास्त्र के विद्यार्थी को पिंगल का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जावे। रामचन्द्रिका में ऐसे छन्दों का भी प्रयोग मिलता है, जिनके लक्षण प्रायः नहीं मिलते। उनके लक्षणों की पहिचान भी पहिले किसी आचार्य ने नहीं कराई। छन्द-शास्त्र के पाण्डित्य को प्रदर्शित करने की भावना से अनुप्राणित होकर कवि ने छन्द सम्बन्धी काव्यशास्त्र के सर्व-मान्य सिद्धान्त की भी अवहेलना की है। भिन्न-भिन्न प्रकार के छन्दों में रचना करने का उपयुक्त स्थल छन्द शास्त्र ही है। छन्दों का परिवर्तन सहसा और शीघ्रता के साथ होने के कारण पाठक का ध्यान कथावस्तु में लीन नहीं हो पाता वरन् छन्दों की इस विविधता के जंजाल में उलझ जाता है। रामचन्द्रिका की कथावस्तु के प्रवाह में भी इन बदलते हुए छन्दों के कारण बाधा पहुँची है। उन प्रसंगों में पाठक का हृदय छन्दों की विविधता के कारण और भी लीन नहीं हो पाता। केशवदास आचार्य थे और कविप्रिया तथा रसिक प्रिया की भाँति रामचन्द्रिका को लक्षण ग्रंथ के रूप ही में लिखने की उनकी इच्छा रही होगी। इसीलिए विविध छन्दों का समावेश कराया गया है। काव्य के बहुत से अनुपयुक्त छन्दों का प्रयोग भी केशव ने किया है। यह सच है कि कहीं-कहीं परिस्थिति के अनुकूल छन्दों का प्रयोग किया गया है, जिसके कारण प्रसंग अत्यन्त रोचक हो गये हैं। द्रुतगति के लिये छोटे-छोटे छन्दों का प्रयोग प्रायः किया गया है। गंभीरता तथा ओज प्रकट करने के लिये बड़े-बड़े छन्दों का प्रयोग किया है। कवित्त और सवैयों ही में गम्भीर तथा शान्त वातावरण की व्यंजना की गई है। वीर रस के वर्णन में छप्पय, भुजंग प्रयात आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है।

केशव एक असाधारण कवि थे। उन्हें भाषा पर पूर्ण अधिकार था, इसीलिए अपनी बहुज्ञता प्रकट करने के हेतु उन्होंने ऐसे छन्दों का प्रयोग किया जो अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त नहीं किये गये। छन्दों की इस विविधता को रखते समय केशव ने यह विचार न किया कि उनके द्वारा ऐसा किये जाने से रस-निष्पत्ति में बाधा होगी और प्रबन्ध काव्य की रचना करने के नियम का उल्लंघन हो जायगा। प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से विभिन्न छन्दों का समावेश उचित नहीं है, उससे कथा प्रवाह में और उसकी क्रमबद्धता में व्याघात पहुँचता है। केशवदास के अतिरिक्त इतने विविध छन्दों में हिन्दी में किसी अन्य कवि ने रचना नहीं की। केशव में ही इतने छन्दों की रचना करने की काव्य-शक्ति थी। परन्तु प्रबन्ध काव्य में इस प्रतिभा का प्रयोग अनुचित ही है। यदि छन्द शास्त्र पर भी रचना करने की इच्छा थी तो यह उत्तम होता कि केशव प्रबन्ध काव्य के बजाय मुक्तक काव्य की ही रचना करते। छन्दों की प्रदर्शिनी प्रबन्ध काव्य में नहीं लगाई जा सकती। प्रबन्ध कवि को एक भी प्रसंग ऐसा न आने देना चाहिये जिससे रसानुभूति या कथा प्रवाह टूट जाने की आशङ्का हो जाय। संस्कृत के प्रसिद्ध प्रबन्धकारों ने भी 'एक सर्ग में एक छन्द' के नियम का सर्वत्र पालन किया है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में काव्य मीमांसकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का ही पूर्णतः पालन किया है। केशवदास में छन्द रचना की असाधारण शक्ति और प्रतिभा तो थी, किन्तु प्रबन्ध काव्य में उसका प्रयोग करने से उन्हें अभीष्ट सफलता न मिल सकी। रामचन्द्रिका में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:—

एकाक्षरी श्री छन्द :—

श्री, धी। री, धी,

सारवन्द :—

राम, नाम। सत्य, धाम॥
और, नाम। को न, काम॥

रमणछन्द :—

दुख क्यों। टरिहै।
हरि जू। हरिहै॥

अष्टाक्षरी नगस्वरूपिणी छन्द :—

भलो बुरो न तू गुनै।
वृथा कथा कहै सुनै।
न राम देव गाइहै।
न देव लोक पाइहै।

प्रज्झटिका छन्द :—

अति निपट कुटिल गति यदपि आप।
तउ देत शुद्ध गति छुवत आप॥
कछु आपुन अध अधगति चलन्ति।
फल पतितन कहँ ऊरध फलन्ति॥

अरिल्ल छन्द :—

देखि बाग अनुराग उपज्जिय।
बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय॥

पादाकुलक छन्द :—

शुभ सर शोभै। मुनि मन लोभै।
सरसिज फूले। अलि रस भूले॥

केशवदास ने कहीं-कहीं प्रसंगानुकूल कुछ ऐसे छन्दों का प्रयोग किया है, जिसके पढ़ने से ही वह दृश्य स्वयमेव चित्रित

हो जाता है। घोड़े के वर्णन में कवि ने चंचला छन्द को चुना जिसकी गति घोड़े की गति से मिलती है। छन्द को पढ़ने से ऐसा मालूम पड़ता है मानों घोड़ा खूँद रहा हो :—

भोर होत ही गयो सुराज लोक मध्य बाग।
बाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग॥
शुभ्र सुम्भ चारिहून अंश रेणु के उदार।
सीखि सीखि लेतहैं ते चित्त चंचला प्रकार॥

६

केशव की विचारधारा

कवि की रचना में उसके हृदय की अन्तर्निहित भावना तथा उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का पूर्ण प्रस्फुटन होता है। जिस समय केशव हिन्दी साहित्य में अवतरित हुए उससे पूर्व सूर और तुलसी भक्ति की पावन वाणी से समाज के हृदयों को पवित्र कर चुके थे। सूर और तुलसी ने अपने उपास्यदेव की आराधना करने का माध्यम ही काव्य को बनाया, यही कारण है कि उनकी रचनाओं के द्वारा भक्ति भावना का अविरल स्रोत प्रवाहित हुआ। तुलसीदास तो नर-काव्य करने के पूर्ण विरोधी थे।

कीन्हे प्राकृत जन गुण गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥

केशवदास जिस राजसी वातावरण में रहे उसमें यह संभव न था कि वे उपासना मार्ग का अनुसरण करते। राजाओं के यशोगान ही में उन्होंने काव्य की रचना की, केवल तुलसी द्वारा 'प्राकृत कवि केशव' कहे जाने के कारण या वाल्मीकि द्वारा स्वप्न में प्रबोधन दिये जाने पर केशव रामचन्द्रिका की रचना में प्रवृत्त हुए। हृदय की भक्ति भावना के प्रबल वेग से प्रेरित होकर इस काव्य की रचना नहीं की गई है। रामचन्द्रिका में वर्णित उपास्यदेव के प्रति केशव को अनन्य भक्ति न थी। कवि-प्रिया और रसिकप्रिया में कृष्ण के जीवन को आलंबन मान-कर रचना की गई है। शृंगारिक भावना से कवि का हृदय

इतना ओत-प्रोत था कि अपने उपास्यदेव के प्रति भी वह श्रद्धा और सम्मान की भावना न रख सका। कृष्ण और राम को काव्य का विषय बना करके भी केशव भक्तिभाव पूर्ण रचना न कर सके। वैभव और प्रवीण राय पातुरी के नृत्य और संगीत के मादक वातावरण में रहकर केशव का हृदय एक साधक की भाँति भक्ति-भावना से आप्लावित ही कैसे हो सकता था। रामचन्द्र को इष्टदेव मानते हुए भी (कियो रामचन्द्र जू इष्ट) केशवदास ने रामचन्द्रिका में ऐसी उक्तियाँ प्रकट की हैं, जो इस बात की परिचारिका हैं कि केशव के हृदय में राम के प्रति वैसी सम्मान एवं श्रद्धासूचक भावना न थी, जैसी कि एक भक्त से अपेक्षित है। राम वर्णन करते समय केशव ने लिखा है :—

किंधौ मुनि शापहत, किंधौ ब्रह्म दोष रत।
किंधौ कोऊ ठग हौ, ठगौरी लीन्हे...... ॥

राम के सम्बन्ध में इस प्रकार के कथन से यह प्रकट होता है कि केशव के हृदय में भक्ति की भावना को स्थान न था। लोकानुरंजन के लिये अवतार लेने वाले भगवान राम का भी ऐसा शृंगारी चित्र रामचन्द्रिका में खींचा गया है जो केवल कृष्ण काव्य के लिये ही उपयुक्त था। रास क्रीड़ा कृष्ण के जीवन का प्रधान अंग है। गोपिकाओं के मध्य मधुर मुरलि-स्वर में गीत-गाकर कृष्ण ने रास विहार किया; उसी रूप में राम के जीवन को अंकित करने के लिये केशवदास ने बत्तीसवें प्रकाश में जल-क्रीड़ा का वर्णन किया है। जिन राम का यह सिद्धान्त था कि

"मोहि अतिशय प्रतीत इन केरी।
जिन सपनेहुँ परनारि न हेरी॥"

(तुलसी)

वे ही राम सुन्दरियों के साथ एक जलाशय में जल-क्रीड़ा करते हैं। एक रसिक के रूप में ही राम का चित्र अंकित किया गया है। राम के साथ जलक्रीड़ा करने वाली कोई स्त्री हँस रही है और कोई अन्य हाव-भाव दिखा रही है उन्हीं के मध्य में राम भी उपस्थित हैं :—

एक दमयन्ती ऐसी हरैं हसि हंस-वंश,
एक हंसिनी सी बिसहार हिये रोहियो।
भूषण गिरत एकै लेती बूड़ि बीचि बीचि,
मीन गति लीन हीन उपमान टोहियो॥
एकै मत कै-कै कंठ लागि लागि बूढ़ि जात,
जल देवता सी देवि देवता विमोहियो।
केशोदास आसपास भँवर भँवत जल-
केलि में जलजमुखी जलजसी सोहियो॥

क्रीड़ा सरवर में नृपति, कीन्ही बहुविधि केलि।
निकसे तरुणि समेत जनु, सूरज किरण सकेलि॥

रामचन्द्रिका में किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर केशव ने यह प्रकट किया है कि वे राम के उपासक हैं। वाल्मीकि ने स्वप्न में केशव को यह प्रबोधन दिया था कि जब तक वह राम गुणगान न करेगा उसे वैकुंठ की प्राप्ति न हो सकेगी।

भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै॥
न राम देव गाइहै। न देव लोक पाइहै॥

और वाल्मीकि द्वारा उपदेश दिये जाने के उपरान्त ही केशवदास ने राम को उपास्यदेव बनाया—

मुनिपति यह उपदेश दै जबहीं भये अदृष्ट।
केशवदास तहीं कर्यो, रामचन्द्र जू इष्ट॥

सीता अग्नि-परीक्षा के प्रसंग में केशव ने यह प्रकट किया है कि उनके हृदय में राम की भक्ति है। 'हुताशन मध्य सवासन सीता' को देखकर केशव भिन्न-भिन्न रूप में सीता का वर्णन करते हैं उस समय कवि ने यह भी उत्प्रेक्षा की है कि अग्नि की ज्वालाओं के मध्य सीता इस प्रकार बैठी हुई हैं जिस प्रकार कि केशव के हृदय में राम की भक्ति बसती है :—

ज्यौं रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर केशव के शुभ गीता।
त्यौं अवलोकिय आनंद कन्द हुताशन मध्य सवासन सीता ॥

लेकिन यदि केशव के हृदय में निश्चल राम भक्ति की प्रवेग-मयी धारा प्रवाहित होती तब न तो वे 'नर काव्य' की रचना करने की ओर प्रवृत होते और न शृंगारिक भावना ही उनके मन में आ सकती थी।

माध्यमिक काल में यावनी प्रतारणाओं के कारण हिन्दू धर्म प्राय: म्रियमाण हो गया था, हिन्दुओं को न तो सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने दिया जाता था और न उन्हें उपासना करने की ही अनुज्ञा और सुविधा थी। धर्म के इस अव्यवस्थित वातावरण में स्वयं हिन्दू धर्म के अनुयायियों में भी भ्रम और अविश्वास की भावना फैल गयी। कुछ तो अपने को तदीयाकार बतलाकर जनता को गुमराह करके, वैदिक और पौराणिक उपासना के स्थान पर स्वयं की पूजा कराने लगे। भारत में आज भी ऐसे ढोंगी साधुओं की कमी नहीं है। ऐसे ही लोगों के सम्बन्ध में तुलसीदास ने यह कहा था :—

साखी, सबदी, दोहरा, कहि कहिनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निन्दहि वेद, पुरान ॥

ऐसी परिस्थिति में जनसाधारण के हृदय से धर्म का विश्वास उठता जा रहा था। हिन्दू धर्म के सिद्धान्त संस्कृत भाषा में होने

के कारण साधारण जनता उनसे अवगत नहीं हो सकती थी। ऐसे ही जनता के लिये 'रामनाम का महात्म्य' तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना करके समझाया। केशवदास ने भी राम-गुण-स्तवन को मुक्ति का साधन माना है। रामचन्द्रिका के २६ वें प्रकाश में रामनाम महात्म्य वर्णन किया है। वशिष्ठ ने ब्रह्मा से राम नाम के महत्व को प्रकट करने की प्रार्थना की। राम नाम के प्रभाव का वर्णन करते हुए ब्रह्मा जी ने कहा है :—

कहै नाम आधौ, सो आधौ नसावै।
कहै नाम पूरौ, सो बैकुंठ पावै॥
सुधारै दुहूँ लोक; को वर्ण दोऊ।
हिये छद्‌न छाँड़ै कहै वर्ण कोऊ॥
मरण काल काशी विषे, महादेव गुण धाम।
जीवन को उपदेशि हैं, रामचन्द्र को नाम॥
मरण काल कोऊ कहै, पापी होय पुनीत।
सुख ही हरिपुर जाइहै, सब जग गावै गीत॥

यद्यपि केशवदास ने रामोपासना के महत्व को प्रदर्शित किया है लेकिन फिर भी उन पंक्तियों में से कवि का भक्त हृदय झाँकता हुआ दिखलाई नहीं देता। ऐसे कथन तो केवल उपदेश मात्र हैं एक भक्त के हृदय से निसृत हुई भक्ति भावना नहीं। केशवदास के हृदय में तो रूप का विलास; सौन्दर्य और संगीत के प्रति आकर्षण और वैभव का मद था। सौन्दर्यशालिनी परकीया कवि के हृदय को विचलित किया करती थीं।

पावक पाप सिखा बड़वारी।
जारति है नर को परनारी॥

'रसिक प्रिया' में परकीया नायिकाओं का भेद प्रदर्शित करते समय केशव ने लिखा है :—

परकीया द्वै भाँति पुनि, ऊढ़ा एक अनूढ़ ।
जिन्हैं देखि बस होत हैं, संतत मूढ़ अमूढ़ ॥

इन 'अमूढ़' की परिधि के भीतर बहुत से पंडित भी आ सकते हैं और सम्भवत: केशवदास भी इस परिधि के बाहर अपने को न समझते होंगे। यदि उनके हृदय में सच्ची राम भक्ति होती तो वे न तो प्रवीणराय पातुरी को 'रमा', 'वीणा-पुस्तक-धारिनी' और 'शिवा कि रायप्रवीन' के रूप में कभी देखते और न वृद्धावस्था में युवतियों द्वारा 'बाबा' कहकर सम्बोधित किये जाने पर उन्हें अपने सफेद बालों को कोसने की आवश्यकता पड़ती।

केशवदास ने संस्कृत के ग्रंथों का अच्छा अध्ययन किया था और इस प्रकार भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों के और जीवात्मा तथा परमात्मा के सम्बन्ध में उन्हें अच्छा ज्ञान था। सिद्धान्त की दृष्टि से केशव अद्वैतवादी प्रतीत होते हैं। समस्त संसार में उसी एक ब्रह्म का आभास उन्हें दिखायी देता है।

तुम आदि मध्य अवसान एक ।
अरु जीव जन्म समुझै अनेक ॥
तुमही जु रची रचना विचारि ।
तेहि कौन भाँति समुझौं मुरारि ॥
सब जानि बूझियत मोहि राम ।
सुनिये सुकहौ, जग ब्रह्म नाम ॥
तिनके अशेष प्रतिबिंब जाल ।
तेइ जीव जानि जग में कृपाल ॥

वेदान्तवाद के अनुसार केशवदास भी सांसारिक बन्धनों को मिथ्या समझते हैं। न कोई किसी का पिता है, न माता और

न अन्य कोई सम्बन्धी। क्षणभंगुर शरीर में अनासक्ति रखकर ही मनुष्य सुख की साँस ले सकता है :—

आयो कहाँ अब हौं कहि को हौं।
ज्यों अपनो पद पाऊँ सो टोहौं॥
बन्धु अबन्धु हिये महँ आनै।
ता कहँ लोग विचार बखानै॥

केशवदास संसार में दुःख को ही फैला हुआ देखते थे। वे संसार से सन्तुष्ट न थे।

जग माँझ है दुःख जाल।
सुख है कहाँ यहि काल॥

मनुष्य किसी भी स्थिति में क्यों न हो, विपत्ति के भयंकार-आघातों से अपनी रक्षा नहीं कर सकता। साधारण मनुष्य की अपेक्षा राजा की चिन्ता और भी अधिक तीव्र होती है। राजकीय पद अनर्थ का मूल ही है।

'तहँ राज है दुःख मूल।
सब पाप को अनुकूल॥
तब ताहि लै ऋषिराय।
कहि को न नरकहिं जाय॥

धर्म वीरता विनयता, सत्य शील आचार।
राजश्री न गनै कछू, वेद पुराण विचार॥

गर्भ में आने के समय से मृत्यु उपरान्त जीव को भिन्न-भिन्न प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। जब दुःख की ही बहुलता जीवन में हो, तो वह स्पृहणीय कैसे हो सकता है? बाल्यावस्था में हानि-लाभ का कुछ भी ध्यान नहीं रहता और जो भी वस्तु सामने पड़ी हुई मिली उसी को बालक खा लेता है चाहे वह

अशुद्ध और विपाक्त ही क्यों न हो। युवावस्था में युवति जनों के कटाक्षों के प्रबल आघातों से उसका हृदय क्षतिग्रस्त हो जाता है और वृद्धावस्था में शरीर शिथिल पड़ जाता है, हाथ-पैर साथ नहीं देते हैं और सर्वत्र निराशा ही दिखलाई देती है। केशव ने संसार का इस प्रकार कारुणिक और नैराश्यपूर्ण चित्र अंकित किया है।

१. बाल्यावस्था

पोच भलो न कछू जिय जानै।
लै सब वस्तुन आनन आनै॥
है पितु मातन तें दुःख भारे।
श्री गुरु ते अति होत दुःखारे॥

२. युवावस्था

वंक हिये न प्रभा सरसी सी।
कर्दम काम कछू परसी सी॥
कामिनि काम की डोरि ग्रसी सी।
मीन मनुष्यन की बनसी सी॥

३. वृद्धावस्था-जनित दुःख

कँपै उर बानि डगै बर डीठि त्वचाऽति कुचै सकुचै मति वेली।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालक ते संगही संग खेली॥
लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगे सब देह दशा, जिय साथ रहै, दुरि दौरि दुराश अकेली॥

केशवदास ने भिन्न-भिन्न काव्य-ग्रंथों में अपने विचारों को पात्रों के मुख से प्रकट कराया है। रामचन्द्रिका में राम के मुख से राजश्री निन्दा में तथा वशिष्ठ के मुख से विरक्ति कथन में और भारद्वाज आश्रम के वर्णन में केशव ने स्थान-स्थान

पर जगत और परमात्मा के सम्बन्ध में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है, लेकिन विज्ञान गीता में धार्मिक प्रवृत्ति को केशव ने अधिक व्यञ्जित किया है। वैभव और विलास के वातावरण में केशव चाहे जितने रहे हों पर उनका हृदय जगत के जटिल द्वन्द्वों और दुःखों के प्रति करुण चीत्कार कर उठता है। मनुष्य के हृदय में व्याप्त रहने वाली तृष्णा मनुष्य को शान्तिमय जीवन व्यतीत नहीं करने देती। मनुष्य उसके चक्कर में पड़कर दशों दिशाओं में भटकता फिरता है पर सन्तोष नहीं मिलता। इस तृष्णा की अपार नदी को पार करने में किसी को भी सफलता नहीं मिली है :—

कौन गनै यहि लोक तरीन विलोकि बिलोकि जहाजन बोरे।
लाज बिशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमाल न तोरे॥
वंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक, कृष्णा।
पाटु बड़ो कहुँ घाटु न केशव क्यों तरि जाय तरंगिनि तृष्णा॥

काम, क्रोध, मोह और लोभ आदि विकारों में ग्रसित होकर मनुष्य की दशा बड़ी ही संकटापन्न और विषम हो जाती है। इन्हीं मनोविकारों में पड़कर मनुष्य उन्नत अवस्था से पतित होकर विगर्हणा और अनुताप के गहन कूप में गिरता है। इन विकारों के प्रलोभन और आकर्षण इतने प्रगाढ़ होते हैं कि उनके फन्दे से व्यक्ति अपने को मुक्त करने में सर्वथा असमर्थ पाता है :—

खैंचत लोभ दसौं दिसि को गहि मोह महा इत फाँसिहि डारे।
ऊँचे ते गर्व गिरावत, क्रोधहु जीवहि लूहर लावत भारे॥
ऐसे में कोट की खाज ज्यों केशव मारत कामहु बाण निनारे।
मारत पाँच करें पंच कूटहिं कासों कहै जगजीव विचारे॥

संसार में आकर जीव 'मेरे और तेरे' के भेद में पड़ जाता

है। इस मायाजाल में वह तथाकथित सम्बन्धियों की हितैषणा के लिए उचित और अनुचित साधनों का प्रयोग करता है। लेकिन फिर भी वे अपने नहीं होते। जिस घर को बनाकर व्यक्ति निवास करता है, उसे वह भ्रमवश अपना समझता है, लेकिन उसी घर में रहने वाले अन्य जीव भी हैं, जो उस घर पर समान अधिकार रखते हैं। संसार की निस्सारता पर केशव ने यह लिखा है :—

[१]

माछी कहै अपनो घरु, माछर मूसो कहै अपनो घरु ऐसो।
कोने घुसी कहि घूसि घिनोनी बिलारि औ काल बिलै मह वैसो॥
कीटक स्वान मों पच्छि औ भिच्छुक भूत कहैं, भ्रम जाल है जैसो।
हौ हूँ कहौं अपनो घरु तें सहि ता घरु सों, अपनौं घरु कैसो॥

[२]

काँपत सुभग्रीवा सब अंग सीमा देखत चित भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेशति "या जग में कछु नाहीं।"

शिव और वशिष्ठ के सम्वाद के द्वारा केशव ने यह प्रकट कराया है कि रामोपासना ही सर्वश्रेष्ठ और जीव कल्याणकारी है। भक्तिकाल में हिन्दू धर्मावलम्बियों के सामने धार्मिक विप्लव उपस्थित हो गया था। दक्षिणी भारत में तो शैव और वैष्णवों में धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण भीषण झगड़े होते रहते थे। वैष्णव विष्णु की उपासना को सर्वोपरि बतलाते थे और शिव के उपासक शिव की उपासना को। उत्तरी भारतवर्ष में यह धार्मिक उत्पात न फैल सका। राम और शिव को समकक्ष का देवता दिखलाकर तथा मुक्ति के लिये दोनों देवों की स्तुति को अनिवार्य बता देने से विरोध की भावना उत्पन्न ही नहीं होने पायी। रामचन्द्रिका में वसिष्ठ ने महादेव से यह प्रश्न

किया है कि हे देव ! हमें उपासना किसकी करनी चाहिये तो महादेव ने यही उत्तर दिया कि उमापति और रमापति नामक देवों का न तो कोई रंग है और न रूप अतः ये शरीरधारी नहीं हैं। उपासना तो सगुणरूप की ही हो सकती है अतः राम की ही उपासना करना चाहिये :—

सत चित प्रकाश प्रमेव । तेहि वेद मानत देव ॥
तेहि पूजि ऋषि रुचि मंडि । सब प्राकृतन को छंडि ॥

रामचन्द्रिका में स्थान-स्थान पर वैराग्यमूलक भावना से युक्त उक्तियाँ भी प्रकट कराई गई हैं। रावण की सभा में अंगद सांसारिक विभूतियों की नश्वरता की ओर लक्ष्य करके यह प्रकट करता है कि अन्तकाल में संसार की कोई वस्तु मनुष्य के साथ नहीं जाती उसे अकेला ही जाना पड़ता है, इसलिये छल और प्रपंच से सांसारिक पदार्थों का संग्रह व्यर्थ है :—

हाथी न, साथी न, घोरे न, चेरे न, गाउँ न, ठाँव को ठाँव विलैहै ।
तात न मात, न पुत्र, न मित्र, न वित्त न तीय कहीं संग ॥
'केसव' काम को राम विसारत, और निकाम न कामहि ऐहै ।
चेति रे चेति अजौं चित अन्तर, अन्तक लोक अकेलोई जैहै ॥

संयम और नियमादि के पालन के द्वारा जीव सांसारिक प्रलोभनों से मुक्ति पाकर ईश्वर में लीन होता है। संसार में न तो उसे कभी निराशा होती है और न कोई दुःख ही। निष्काम कर्म के सम्बन्ध में केशव ने निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं :—

निशिवासर वस्तु विचार करें, मुख साँच हिये करुना धन है ।
अघ निग्रह धर्म कथा न, परिग्रह साधुन को गन है ॥
कहि केशव जोग जगै हिय भीतर, बाहर भोग नरयों तनु है ।
मन हाथ सदा जिनके तिनकौं, बन ही घरु है, घरु ही बन है ॥

लवकुश विभीषण संग्राम में विभीषण की भर्त्सना में केशव ने कुछ सामाजिक एवं लोक-व्यवहार के सदुपदेश भी व्यक्त किये हैं :—

जेठो भैया अन्नदा, राजा पिता समान।
ताकी पत्नी तू करी पत्नी, मातु समान॥
को जानै कै वार तूँ, कही न ह्वै है माय।
सोई तैं पत्नी करी सुनु पापिन के राय॥

समय की कुछ प्रचलित रूढ़ियों पर उन्होंने आक्षेप भी किये हैं :—

जुआ न खेलिए कहूँ,
जुआ न वेद रक्षिये।

राम विष्णु के अवतार हैं, और सृष्टि के उत्पन्नकर्त्ता हैं। अधर्माचरण संसार में फैल जाने पर भगवान स्वयं नररूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार करते हैं। रामचन्द्रिका में दो स्थलों पर केशवदास ने ब्रह्मा के मुख से श्रीराम की स्तुति कराई है। राम के स्वरूप के सम्बन्ध में ब्रह्मा जी कहते हैं कि तुम अन्तर्यामी हो। कुछ तुम्हें निर्गुण मानते हैं और कुछ सगुण। तुम्हारा न आदि है और न अन्त। तुम अनादि और अजन्मा हो। सत्व, रज, और तमस् वृत्तियों से तुम ही संसार की रक्षा, पालन और संहार करते हो। तुम्हीं संसार हो और सब संसार तुम्हीं में स्थित है। विभिन्न अवतार लेकर तुम्हीं ने पृथ्वी की रक्षा की है :—

राम सदा तुम अन्तरयामी। लोक चतुर्दश के अभिरामी॥
निर्गुण एक तुम्हें जग जानै। एकहि सगुणवन्त बखानै॥
ज्योति जगै जग मध्य तिहारी। जाय कही न सुनी न निहारी॥
कोउ कहै न परिमान न ताकौ। आदि न अन्त न रूप न जाको॥

तुम ही जग हौ जग है तुम ही में। तुमही विरची मरजाद दुनी में ॥
तुम ही धर कच्छप रूप धरो जू। तुम मीन ह्वै वेदन को उधरोजू ॥
यहि भाँति अनेक सरूप तिहारे। अपनी मरजाद के काज सवारे ॥

तेतीसवें प्रकाश में ब्रह्मा जी ने राम की विनय करते हुए उनके गुण और महत्व का वर्णन किया है। यद्यपि 'रामचन्द्रिका में राम को सगुणरूप में वर्णित किया गया है परन्तु केशव निर्गुणवाद से भी अवश्य प्रभावित थे। श्रीराम भगवान विष्णु के अवतार हैं, यह उक्ति ब्रह्मा के मुख से पुनः प्रकट कराई गई है। राम, कृष्ण, शिव और भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की महत्ता उस युग में प्रतिपादित की जा रही थी। अपने उपास्य के महत्व का प्रदर्शन और अन्य देवी-देवताओं का निरादर करना उस समय की मनोवृत्ति थी। तुलसीदास से भी यह कहा गया कि वे कृष्ण की उपासना क्यों नहीं करते जिनमें सम्पूर्ण कला विद्यमान हैं, राम ने तो अपूर्ण कलाओं से अवतार लिया था। मर्यादावादी तुलसी ने यह सुनकर उत्तर दिया कि मुझे आज ही यह विदित हुआ कि मेरे राम अवतार भी हैं। अपूर्ण और पूर्ण कलाओं की उपासना करना हेतु नहीं होना, उपास्यदेव के प्रति निश्छल और प्रगाढ़ भक्ति ही सब कुछ है। राम की भक्ति करना ही तुलसी को अभीष्ट था :—

जो जगदीश तो अतिभलो, जो महीप तो भाग।
तुलसी चाहत रैन दिन, राम चरण अनुराग ॥

केशवदास ने वाल्मीकि मुनि के उपदेश के अनुसार श्रीराम को उपास्यदेव माना। कविप्रिया और रसिकप्रिया में केशव ने कृष्ण और राधा को विषय मानकर कविता की है। रामचन्द्रिका में ही उन्होंने राम के चरित का गान किया है; लेकिन उनमें प्रकट हुई अभिव्यक्तियों से यह ध्वनित नहीं होता कि

केशव हृदय से रामोपासक थे। 'स्वान्तः सुखाय' और हृदय की भक्ति-भावना की अभिव्यंजना के लिये केशव ने रामचन्द्रिका की रचना नहीं की, अपितु प्रबन्ध काव्य की रचना करने के हेतु ही उन्होंने राम के चरित को काव्य का विषय बनाया। यदि केशव के हृदय में सच्ची राम-भक्ति होती तो रामचन्द्रिका में न तो राम का शृंगारिक रूप ही वर्णित किया जाता, जहाँ राम जल-क्रीड़ा कर रहे हैं और विभिन्न हाव-भाव से राम को रिझाती हुई सुन्दरी नर्त्तकियाँ नाच कर रही हैं। यदि केशव के हृदय में सच्ची भगवद्-भक्ति की स्फुरणा हो जाती तो 'गंगातट का वास' कर लेने के उपरान्त उन्हें 'जहाँगीर जस चन्द्रिका, लिखने की आवश्यकता न रह जाती और न नवयौवनाओं के 'बाबा' कहने पर वे सफेद बालों को कोसते :—

> केशव केसनि असि करी, जस अरिहूँ न कराहिं।
> चन्दवदनि मृग लोचनी, बाबा कहि-कहि जाहिं॥

केशव के हृदय में भक्ति की तल्लीनता नहीं है। जिस प्रकार आधुनिक कवियों की कुछ कविताओं में हमें भक्ति और विरक्ति के विचार मिलते हैं, पर हम यह जानते हैं कि उन उक्तिओं के साथ कवि के हृदय का सामंजस्य नहीं है। कल्पना के विस्तार से ही उन भावों की व्यंजना की गई है। केशव की भक्ति एवं विरक्ति में उक्तिओं के साथ उनके जीवन का मिलान नहीं है। केशवदास की गणना भक्त कवियों में नहीं की जा सकती। जिस प्रकार सूर और तुलसी की भक्ति-भावना उनके पूत अनन्तःकरण से निसृत होती दिखायी देती है उस प्रकार केशव की उक्तियाँ नहीं दिखायी देतीं।

केशव पर संस्कृत कवियों का प्रभाव

हिन्दी भाषा का आदि मूल संस्कृत ही है। हिन्दी के कवियों ने संस्कृत काव्य के नियमों और सिद्धान्तों का पूर्ण पालन किया है। भारतीयों की संस्कृति का अगाध भंडार संस्कृत ही है। हिन्दी कविता में प्रारंभ से ही प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न रूप से संस्कृत काव्य की विचारधारा प्रतिबिम्बित होती रही है। भक्ति कालीन कवियों ने राम और कृष्ण सम्बन्धी रचना करते समय संस्कृत के ग्रंथों से अपरिमित सहायता ली है। सूरदास को महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई ही थी और तुलसीदास ने संस्कृत से पुराण और निगमों से भी वर्ण्य-विषय सम्बन्धी सहायता लेना मान्य किया है :—

'नानापुराण निगमागमसम्मत यद्रामायणे क्वचिदन्यतोऽपि
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषानिबन्ध मति
मञ्जुलमातनोति ॥

केशवदास ने संस्कृत का अगाध अध्ययन किया था। वंश परम्परा से उनके पूर्वज संस्कृत-ज्ञान के लिये प्रसिद्ध रहे थे। कवि के अध्ययन का प्रभाव उसकी विचारधारा पर अवश्य पड़ता है। केशवदास ने रामचन्द्रिका की रचना में रामकथा सम्बन्धी संस्कृत ग्रंथों से पूर्ण सहायता ली है। संस्कृत ग्रंथों में जो सुन्दर भाव और उक्तियाँ केशव को मिलीं, उनको कवि ने मुक्त हृदय से स्वीकार किया है। संस्कृत के ग्रंथों के भावों

का ही समावेश नहीं किया गया प्रत्युत संस्कृत के श्लोकों का शब्दशः अनुवाद भी मिलता है। रामचन्द्रिका की रचना का कारण ग्रंथारंभ में कवि ने यह लिखा है।

'वाल्मीकि मुनि स्वप्न में,
दरसन दीन्हो चारु'

इसका यह भावार्थ निकाला जा सकता है कि रामचन्द्रिका की रचना के लिये केशवदास ने वाल्मीकि रामायण को आधार माना है। परन्तु रामचन्द्रिका की शैली और उसमें संस्कृत के अन्य ग्रंथों से ली गई सामग्री को देखकर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाल्मीकि रामायण का प्रभाव केशव पर अधिक नहीं पड़ा है।

रामकथा सम्बन्धी संस्कृत के कवियों की उक्तियों को तुलसी ने भी ग्रहण किया है लेकिन उन भावों को कवि ने इस सुन्दरता के साथ अपनाया है कि वे प्रसंग और विषय में पूर्णतः घुल-मिल गये हैं। गृहीत भावों को तुलसीदास जी ने और भी सुन्दर बना दिया है। मूल ग्रंथों के भावों की त्रुटियों का परिमार्जन और संशोधन भी तुलसी ने किया है। इसके विपरीत केशवदास ने 'प्रसन्नराघव नाटक' और 'हनुमन्नाटक' से भावों और अभिव्यक्तिओं को लिया तो अवश्य है परन्तु उन भावों आदि को प्रस्तुत प्रसंग और विषय से तादात्म्य कराने की चेष्टा नहीं की। वे भावनाएँ प्रसंगों में घुल-मिल नहीं पाई हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि वे प्रसंग उखड़े-उखड़े से लगते हैं। उन श्लोकों को कथा के अनुकूल न बनाते हुए केशव ने शाब्दिक अनुवाद ही किया है। इन उक्तियों में चमत्कार तो है परन्तु रसानुभूति नहीं होने पाती।

संस्कृत के विद्वान् होने के कारण केशव ने उन भावों का ग्रहण शुद्धता और पूर्णता के साथ किया है।

केशवदास ने संस्कृत के श्लोकों का अनुवाद ही नहीं किया है अपितु रामचन्द्रिका के कतिपय प्रसंगों में कथन के प्रमाणीकरण करने के हेतु संस्कृत के श्लोकों को उद्धृत भी किया है। स्वान सन्यासी घटना के प्रसंग में 'मठपति को छूने वाले का भी पुण्यक्षीण हो जाता है' कथन की पुष्टि के लिये केशव ने भिन्न भिन्न ग्रंथों से प्रमाण प्रस्तुत किए हैं :—

रामायणे :—

> ब्रह्मस्वं देवद्रव्यञ्च स्त्रीणां बालधनं च यत्
> दत्तं हरति यो मोहात्स पचन्तर के ध्रुवम्।

स्कन्धपुराणे :—

> हरस्व चान्यदेवस्त केशवस्य विशेषतः
> मठपत्यञ्च यः कुर्यात्सर्व धर्मवहिष्कृतः

पद्मपुराणे :—

> पत्र पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्त्रं मठस्य च
> योऽश्नाति स पचेद्धागन्नरका नेक विशतिः

देवीपुराणे :—

> अभाज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्
> स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्र सवासा जलमाविशेत्

रामाश्वमेधयज्ञ के घोड़े के मस्तक पर जो पत्रिका बाँधी गई है, उसमें श्लोक ही लिखा हुआ है। यदि केशव चाहते तो भाषा में उसको अनूदित कर सकते थे, लेकिन वाल्मीकि के श्लोक के प्रति उनकी अपरिमित आस्था रही होगी इसीलिये उस श्लोक को संस्कृत में ही रहने दिया :—

'एक वीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः ।
तेन रामेण मुक्तोऽसौ बाणो गृह्णातिमं बली ॥

रामचन्द्रिका में संस्कृत की अनेकों सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं। कितने ही श्लोकों का शब्दशः अनुवाद ही रख लिया गया है।

रामचन्द्रिका :—

पंजर कै खंजरीट नैनन को केशोदास,
कैधौं मीन मानस को जलु है कि जारु है।
अंगको कि अंगराग गेडुआ कि गलसुई,
किधौं कोट जीव ही को उरको कि हारु है ॥
बंधन हमारो काम केलि को, कि ताड़िवे को,
ताजनो विचार को, कै व्यजन विचारु है।
मान की जमनिका कै कंजमुख मूँदिवे को,
सीताजू को उत्तरीय सब सुख सारु है।

हनुमन्नाटक :—

धृते पणः प्रणयकेलिषु कंठपाशः
क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते
शय्या निशीथसमये जनकात्मजायाः
प्राप्तं मया विधिवशादिह चोत्तरीयम्

रामचन्द्रिका :—

यौवन अरु अविवेकी रंग।
विनस्यो को न राजश्री संग ॥

संस्कृत :—

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्

संस्कृत के विद्वान् होने के कारण केशव ने उन भावों का ग्रहण शुद्धता और पूर्णता के साथ किया है।

केशवदास ने संस्कृत के श्लोकों का अनुवाद ही नहीं किया है अपितु रामचन्द्रिका के कतिपय प्रसंगों में कथन के प्रमाणीकरण करने के हेतु संस्कृत के श्लोकों को उद्धृत भी किया है। स्वान सन्यासी घटना के प्रसंग में 'मठपति को छूने वाले का भी पुण्यक्षीण हो जाता है' कथन की पुष्टि के लिये केशव ने भिन्न भिन्न ग्रंथों से प्रमाण प्रस्तुत किए हैं :—

रामायणे :—

ब्रह्मस्वं देवद्रव्यञ्च स्त्रीणां बालधनं च यत्
दत्तं हरवि यो मोहात्स पचन्तर के ध्रुवम्।

स्कन्धपुराणे :—

हरस्व चान्यदेवस्त केशवस्य विशेपतः
मठपत्यञ्च यः कुर्यात्सर्व धर्मवहिष्कृतः

पद्मपुराणे :—

पत्र पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्त्रं मठस्य च
योऽश्नाति स पचेद्घारान्नरका नेक विशतिः

देवीपुराणे :—

अभाज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्
स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्र सवासा जलमाविशेत्

रामाश्वमेधयज्ञ के घोड़े के मस्तक पर जो पट्टिका बाँधी गई है उसमें श्लोक ही लिखा हुआ है। यदि केशव चाहते तो भाषा में उसको अनूदित कर सकते थे, लेकिन वाल्मीकि के श्लोक के प्रति उनकी अपरिमित आस्था रही होगी इसीलिये उस श्लोक को संस्कृत में ही रहने दिया :—

'एक वीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः ।
तेन रामेण मुक्तोऽसौ वाजी गृह्णात्विमं बली ॥

रामचन्द्रिका में संस्कृत की अनेकों सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं। कितने ही श्लोकों का शब्दशः अनुवाद ही रख लिया गया है।

रामचन्द्रिका :—

पंजर कै खंजरीट नैनन को केशोदास,
कैंधौ मीन मानस को जलु है कि जारु है।
अंगको कि अंगराग गेडुआ कि गलसुई,
किधौं कोट जीव ही को उरको कि हारु है ॥
बंधन हमारो काम केलि को, कि ताड़िबे को,
ताजनो विचार को, कै व्यजन विचारु है।
मान की जमनिका कै कंजमुख मूँदिबे को,
सीताजू को उत्तरीय सब सुख सारु है।

हनुमन्नाटक :—

धृते पणः प्रणयकेलिषु कंठपाशः
क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनंरतान्ते
शय्या निशीथसमये जनकात्मजायाः
प्राप्तं मया विधिवशादिह चोत्तरीयम्

रामचन्द्रिका :—

यौवन अरु अविवेकी रंग।
विनस्यो को न राजश्री संग ॥

संस्कृत :—

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्

रामचन्द्रिका :—

पढ़ौ विरंच मौन वेद जीव सोर छंडि रे।
कुवेर वेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे॥
दिनेश जाय दूरि बैठ नारदादि संगहीं।
न बोलु चंद मन्द बुद्धि इन्द्र की समानहीं॥

संस्कृत :—

ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समय तूष्णीं वहिः स्थीयतां
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिणः
वीणां संहर नारद स्तुति कथालापैरलं तुम्बरो
सीतारल्लकभल्लभग्न हृदय स्वस्थो न लङ्केश्वरः।

केशव के सम्वादों पर हनुमन्नाटक का प्रभाव है। बहुत से छन्द तो शाब्दिक अनुवाद ही हैं।

कस्त्वं वालितनूद्भवो रघुपतेर्दूतः सः वालीति कः।
को वा वानर राघवः समुचिता ते बालिनो विस्मृतः॥
त्वां बध्वा चतुरम्बुराशिषु परिभ्राम्यन्मुहूर्तेन यः।
सन्ध्यामर्चयति स्म निस्त्रप कथं तातस्त्वया विस्मृतः॥

—हनुमन्नाटक

कौन के सुत ? वालि के, वह कौन बालि न जानिये ?
काँख चाँपि तुम्हे जो सागर सात न्हात बखानिये।
है कहाँ वह वीर ? अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो ? रघुनाथ-बान-विमान बैठि सिधाइयो॥

—रामचन्द्रिका

रामचन्द्रजी के वन चले जाने के पश्चात् भरत ननसाल से

वापिस आकर कैकेयी से समाचार पूछते हैं, इस प्रसंग का चित्रण केशवदास ने हनुमन्नाटक के आधार पर किया है :—

हनुमन्नाटक :—

> मातस्तात: क्व यातः, सुरपतिभुवनं हा कुत: पुत्रशोका-
> त्कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां त्वमवरजतया यस्य जातः किमस्य
> प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिरा किंतथासौ वभाषे
> मद्वाग्वद्धः फलं ते किमिह तव धराधीशता हा हतोऽस्मि

रामचन्द्रिका :—

> मातु कहाँ नृप ? तात गये सुरलोकहिं, क्यों ? सुतशोक लये ।
> सुत कौन सु ? राम, कहाँ हैं अबे ? वन लच्छन ? सीय समेत गये ।
> वन काज कहा कहि ? केवल मो सुख, तोको कहा सुख यामें भये ।
> तुमको प्रभुता, धिक् तोकों कहा, अपराध बिना सिगरेई हये ।

पंचवटी के वर्णन में जो आद्योपान्त 'ट' का अनुप्रास रामचन्द्रिका में रखा गया है, वह भी हनुमन्नाटक के एक श्लोक का शब्दानुवाद ही है ।

हनुमन्नाटक :—

> एषा पंचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पंचावटी ।
> पान्थस्य क्वैघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी ॥
> गोदायत्र नटी तरंङ्गिततटी कल्लोल चञ्चत्पुटी ।
> दिव्यामोदं कुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रिया दुष्कुटी ॥

रामचन्द्रिका :—

> सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी ।
> निघटी रुचि मीचु घटीहु घटी जगजीव जतीन की छूटी तटी ॥

अघ-ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु-ग्यान-गटी ।
चहुँ ओरनि नाचति मुक्ति-नटी गुन धूर्जटी वन पंचवटी ॥

'प्रसन्नराघव' नाटक के बहुत से श्लोक भी केशवदास द्वारा अनुवादित हैं । जनक प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में जो उक्ति केशव ने प्रकट की है वह इसी नाटक के श्लोक का अनुवाद है ।

प्रसन्न राघव :—

आकर्णान्तं त्रिपुरमथनोद्दण्डकोदंडनद्धां ।
मौर्वीमुर्वीवलयतिलकः कोऽपि यः कर्षतीह ॥
तस्यायान्ती परिसरभुवं राजपुत्री भवित्री ।
कूजत्कांचीमुखरजघना श्रोत्रनेत्रोत्सवाद ॥

रामचन्द्रिका :—

कोउ आजु राज समाज में बल संभु को धनुकर्षिहै ।
पुनि श्रौन के परियान तानि सो चित्त में अति हर्षिहै ॥
वह राज होइ कि रंक केसवदास सो सुख पाइहै ।
नृप कन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहिं नाइहै ॥

परशुराम का जो रूप वर्णन किया है वह भी 'प्रसन्न राघव' नाटक के आधार पर ही है ।

प्रसन्नराघव :—

मौर्वीधनुस्तनुरियं च विभर्ति मौञ्जीं ।
वाणाः कुशाश्च विलसन्ति करे सितायाः ॥
धारोज्ज्वलः परशुरेष कमण्डलुश्च ।
तद्वीर शान्तरसयोः किमयं विकारः ॥

रामचन्द्रिका :—

कुस मुद्रिका समर्थें श्रुवा कुस औ कमंडल को लिये ।
कटिमूल श्रोनीन तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिये ॥

अनुवान तिव कुठार 'केशव' मेखला मृग चर्म स्यों।
रघुवीर को यह देखिये रस वीर सात्त्विक धर्म स्यों॥

संस्कृत भाषा का विस्तृत अध्ययन करने के कारण बाण, माघ, भवभूति, कालिदास तथा भास कवि के सुन्दर प्रयोग, अनूठे विचार, गम्भीर और क्लिष्ट अलंकार ज्यों के त्यों अनुवादित किये जाकर रामचन्द्रिका में समाविष्ट किये गये हैं :—

१. रामचन्द्रिका—

भगीरथ पथगामी गंगा कैसो जल है।

कादम्बरी—

गंगा प्रवाह इव भगीरथ पथ प्रवर्त्ती।

२. रामचन्द्रिका—

आसमुद्र क्षितिनाथ।

रघुवंश—

आसमुद्र क्षितीशानां

३. रामचन्द्रिका—

विधि के समान हैं विमानी कृत राजहंस।

कादम्बरी—

विमानी कृत राजहंस मंडलो कमलयोनिरिव।

४. रामचन्द्रिका—

होमधूम मलिनाई जहाँ।

कादम्बरी—

यत्र मलिनता हविधूमेषु।

५. रामचन्द्रिका—

तरुतालीस तमाल ताल हिताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुचकुल नारिकेलवर॥

एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं ।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं ॥

कादम्बरी—

तालतिलकतमालहिन्तालबकुल बहुलैः एलालता कुलित नारिकेलि कलापैः लोल लोध्र धवली लवंग पल्लवैः उल्लसित चूत रेणु पटलै अलि-कुल झंकारै—उन्मद कोकिल कुल कलाप कोलाहलाभिः ।

६. रामचन्द्रिका—

वर्णत केशव सकल कवि, विषम गाढ़ तम सृष्टि ।
कुपुरुष सेवा ज्यौं भई, संतत मिथ्या दृष्टि ॥

भासकृत बालचरित नाटक—

लिम्पती व तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुष सेवेवदृष्टिर्निष्फलतं गता ॥

केशवदास ने संस्कृत भाषा के ग्रंथों के शाब्दिक अनुवाद रामचन्द्रिका में समाविष्ट करते समय यह ध्यान नहीं रखा है कि उन श्लोकों के अनुवाद का समावेश करके उन विषयों में रमणीयता आ जायगी अथवा रस और प्रसंग की दृष्टि से वे अनुपयुक्त होंगे अथवा नहीं। केशव का ध्यान केवल अनुवाद की ओर रहा है, विषय निरूपण की ओर नहीं। हनुमन्नाटक के रावण और महोदर के कथोपकथन का भाव केशव ने ग्रहण किया है: किन्तु उसके कारण वर्णन में रोचकता नहीं आई है अपितु यह आश्चर्य होता है कि रावण का दूत उसी के समक्ष उसके प्रतिपक्षी राम का इतना उत्कर्षपूर्ण और प्रशंसात्मक वर्णन करता है और रावण उसे चुपचाप सुन लेता है—

महोदर—

अङ्के कृत्वोत्तमाङ्गं प्लवगबलपतेः पादमक्षस्य हन्तु-
र्भूमौ विस्तारितायां त्वचि कनकमृगस्याङ्गशेषं निधाय
बाणं रक्षः कुलघ्नं प्रगुणित मनुजेनार्पितं तीक्ष्णमक्ष्णोः
कोणेनोद्वीक्षमाण स्त्वनुजवचने दत्तकर्णोऽयमास्ते।

रामचन्द्रिका—

भूतल के इन्द्र भूमि पौढ़े हुते रामचन्द्र,
मारीच कनक-मृगछालहिं बिछाए जू।
कुंभहर-कुंभकर्ण-नासाहर-गोद सं स,
चरन अकंप-अक्ष-उर लाए जू।
देवान्तक-नरान्तक-अंतक त्यों मुसकात,
विभीषण-बैन-तन कानन रुभाए जू।
मेघनाद - मकराक्ष - महोदर - प्रानहर-बान,
त्यों विलोकत परम सुख पाये जू।

हनुमन्नाटक—

धिग्धिगङ्गद वानेन येन ते निहतः पिता,
निर्माना वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतत्व मागतः।

रामचन्द्रिका—

उरसि अंगद लाज कछू धरौ,
जनक घातक बात वृथा करौ।

हनुमन्नाटक—

आदौ वानरशावकः समतरद्दुर्लंघ्यमम्भोनिधिं।
दुर्भेद्यान्प्रविवेश दैत्य निवहान्संपेष्य लङ्कापुरीम्॥
छित्वा तद्वनरीक्षणो जनकजां दृष्ट्वा तु भुक्त्वा वनं।
दग्ध्वाऽद्यं मदहनपुरीं च स गतो रामः कथं वर्ण्यते॥

रामचन्द्रिका—

श्री रघुनाथ को वानर 'केशव' आयो हो, एक न काऊ ह्यो जू।
सागर को मद झारि, चिकारि त्रिकूट की देह बिहारि गयो जू॥
सीय निहारि संहारि कै राक्षस सोक असोक बनोहि दयो जू।
अक्षयकुमारहिं मारिकै लङ्कहिं जारिकै नीकेहि जात भयो जू॥

निम्नलिखित पद्यांशों में केशव ने हनुमन्नाटक से भाव लेकर रचना की है :—

हनुमन्नाटक-

रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्य रावणादपि।
उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः॥

रामचन्द्रिका—

जानि चल्यौ मारीच मन, मरन दुहूँ विधि आसु।
रावन के कर नरक है, हरिकर हरिपुर वास॥

जयदेवकृत प्रसन्नराघव नाटक से भी केशवदास ने रामचन्द्रिका को निर्मित करने में पर्याप्त सहायता ली है। रामचन्द्रिका के तीसरे, चौथे, पाँचवें और सातवें प्रकाश की सम्पूर्ण कथा का क्रम, प्रमुख स्थल और सुन्दर उक्ति सब प्रसन्नराघव के अनुसार है। रामचन्द्रिका में धनुर्यज्ञ की प्रस्तावना में दो वन्दीजन आये हुए राजाओं के बल-विक्रम का वर्णन करते हैं यह समस्त प्रसंग प्रसन्नराघव नाटक के प्रथम अंक से लिया गया है भेद केवल वन्दीजनों के नाम में है। प्रसन्नराघव नाटक में इनके नाम नूपुरक और मंजीरक हैं तथा रामचन्द्रिका में उनके नाम सुमति और विमति हैं।

सभा मध्य गुनग्राम, वन्दी-सुत द्वै सोभहीं।
सुमति विमति यहि नाम, राजन को बर्ननकरहिं॥

प्रसन्नराघव नाटक—

'वयस्य मंजीरक ! कोऽयंसीताकरग्रहवासना-सन्तलक्ष्मविलसत्पुलक मुकुलजालमण्डितंनिजभुजदण्डकाण्डयुगलं विलोकयन्स्तिष्ठति"

रामचन्द्रिका—

को यह निरखत आपनी, पुलकित बाहु विशाल ।
सुरभि स्वयंवर जनु करी, मुकलित साख रसाल ॥

प्रसन्नराघव नाटक—

आकर्णान्तं त्रिपुरमथनोद्दण्डकोदण्डनद्धा,
मौर्वीमुर्वीवलयतिलकः कोऽपि यः कर्षतीह ।
तस्यायान्ती परिसरभुवं राजपुत्री भवित्री,
कूजत्काञ्ची मुखरजघना श्रोत्रनेत्रोत्सवाय ॥

रामचन्द्रिका—

कोउ आजु राज-समाज में बल संभु को धनु कर्षिहै ।
पुनि स्रौन के परिमान तानि सो चित्त में अति हर्षिहै ॥
वह राज होइ कि रङ्क केशवदास सो सुख पाइहै ।
नृपकन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहि नाइहै ॥

सीता स्वयंवर के अवसर पर रामचन्द्रिका में वाणासुर और रावण का जो वाद-विवाद हुआ है वह प्रसन्नराघव के आधार पर ही है ।

त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठिता धी—
मम न जनकपुत्री पाणिपद्म प्रहाय ।
अपितु बहुलबाहुव्यूहनिर्व्यूढमाला
बलपरिमलहेलाताण्डवाडम्बराय ॥

रामचन्द्रिका—

केशव औरते और भई गति जानि न जाइ कछू करतारी ।
सूरन के मिलिबे कहँ आय मिल्यौ दशकंठ महा अविचारी ॥
बाढ़ि गयौ बकवाद वृथा यह भूलि न भाट सुनावहि गारी ।
चाप चढ़ाइहौ कीरति कौ यह राज वरै तेरी राजकुमारी ॥

स्वयंवर के अवसर पर रावण यह प्रतिज्ञा करता है कि जब तक वह अपने किसी सेवक का आर्त्तनाद नहीं सुनेगा तब तक वह बिना सीता को लिये यज्ञभूमि को छोड़कर नहीं जावेगा । उसी समय किसी राक्षस का करुण स्वर सुनाई पड़ता है और रावण यज्ञशाला छोड़कर चला जाता है। केशव ने यह प्रसंग ज्यों का त्यों प्रसन्नराघव से लिया है :—

अनाहृत्य हठात्सीतां नान्यतो गन्तुमुत्सहे ।
न शृणोमि यदि क्रूरमाक्रन्दमनुजीविनः ।

रामचन्द्रिका—

अब सीय लिये बिन हौं न टरौं,
कहुँ जाहुँ न तौ लगि नेम धरौं ।
जब लौं न सुनौं अपने जन कौ,
अति आरत शब्द हते तन कौ ॥

रामचन्द्रिका के पंचम प्रकाश में विश्वामित्र तथा जनक का जो वार्तालाप है वह कथा भाग प्रसन्नराघव नाटक के तृतीय अंक के अनुरूप है। बहुत से श्लोकों का तो शब्दशः अनुवाद कर दिया गया है।

प्रसन्नराघव—

अंगैरङ्गीकृता यत्र षड्भिः सप्तभिरष्टभिः ।
त्रयी च राजचन्द्रोऽपि योगविद्या न दीव्यति ॥

अंग छै सातक आठक सों भव तीनहु लोक में सिद्ध भई है ।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता शुभ योगमई है ॥
रामचन्द्रिका

जिन अपनो तन स्वर्न, मेलि तपोमय अग्नि में ।
कीन्हो उत्तमवर्न, तेई विश्वामित्र ये

प्रसन्नराघव—

यः काञ्चनमिवात्मानं निक्षिप्याग्नौ तपोमये ।
वर्णोत्कर्षंगतः सोऽयं विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥

रामचन्द्रिका में ऐसे कितने ही स्थल हैं जहाँ प्रत्यक्ष रूप से संस्कृत कवियों की छाप परिलक्षित होती है। दार्शनिक विचार तथा आध्यात्मिक संकेतों के स्थलों पर केशव ने संस्कृत के विद्वानों के मत का ही भाषानुवाद किया है। रामचन्द्रिका में अन्य कितने ही संस्कृत के प्रमुख कवियों की उक्तियों के अनुवाद ग्रथित हैं, यहाँ केवल यह प्रदर्शित करने के हेतु ही कि केशव ने संस्कृत के काव्य-ग्रंथों का कितने अधिक परिमाण में सहारा लिया है, कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, अन्यथा रामचन्द्रिका के अधिकांश प्रसंग संस्कृत के किसी न किसी कवि के चित्रणों की प्रतिच्छाया ही हैं। संस्कृत के कवियों का प्रभाव अन्य भारतीय कवियों पर भी पड़ा है।

११

रामचन्द्रिका के कुछ उद्वेगजनक स्थल

कवि की सुमधुर उद्भावना, प्रखर अन्वीक्षण, चित्रोपमता और बहुज्ञता उसकी रचना को चित्ताकर्षक और श्लाघ्य बनाती है। काव्य में भाव-सौंदर्य होने पर भी यदि अभिव्यक्ति में कौशल प्रकट न किया जाय तो वह अधिक प्रभावशाली नहीं बन सकता। साहित्य शास्त्रियों ने काव्य प्रणयन की रीति नीति की विशद व्याख्या और विस्तृत विवेचन करके गुण और दोषों का निरूपण किया है। काव्यगत दोषों का पूर्णतः परिहार आवश्यक है। छन्द और भावाभिव्यंजन की ओर ही कवि को जागरूक नहीं रहना पड़ता, प्रत्युत वह ऐसे प्रसंग को नहीं आने देता जिससे उसकी रचना का काव्य सौष्ठव, रस निष्पत्ति और कमनीयता नष्ट हो जावे। वाक्य विन्यास तो क्या कवि एक एक अक्षर को खूब सोच-सोच कर प्रयुक्त करता है। कविता के सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी यदि एक भी दोष उसमें समाविष्ट हो जायगा, तो वह रचना चमत्कारहीन हो जायगी। कविता के इस महत्व को केशवदास भली भाँति जानते थे। केशवदास की यह धारणा थी कि जिस प्रकार किसी सुन्दरी का केवल एक अंग खराब हो जाने से सर्वाङ्ग सुन्दर होते हुए भी वह कुरूपा लगती है, उसी प्रकार कविता की भी स्थिति है। शराब की केवल एक बूँद गंगाजल को अपवित्र कर देती है, उसी प्रकार एक दोष समाविष्ट हो जाने पर कविता सौन्दर्य-विहीन हो जाती है :—

गजत रंच न दोष युत, कविता वनिता मित्र।
बुन्द क हाला परत ज्यौं, गंगाजल अपवित्र॥

सिद्धान्ततः केशव यह स्वीकार करते थे कि कविता में समागत हुआ साधारण दोष भी कविता की महत्ता में भीषण आघात पहुँचाता है, परन्तु चमत्कार प्रदर्शन की ओर अभिरुचि होने के कारण उन्होंने अपने इस सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत नहीं किया है। रामचन्द्रिका एक प्रबन्ध काव्य है। उसके कथा-विकास के साथ साथ कवि को केवल उन घटनाओं और प्रसंगों को ही अंकित करना चाहिए, जिससे कथावस्तु रोचक बने और उसमें रसोद्रेक हो। कवि को कोई प्रसंग ऐसा न रखना चाहिये, जिसमें अनौचित्य प्रतीत हो। केशवदास ने अपने प्रतिभाबल से रामचन्द्रिका में ऐसे प्रसंगों का समावेश किया है, जो कथावस्तु से मेल नहीं खाते और परिणामतः उद्वेग-जनक प्रतीत होते हैं।

राम वनगमन के अवसर पर कौशिल्या ने राम के साथ वन जाने का आग्रह किया। उस समय राम ने माता कौशिल्या को पातिव्रत्य का उपदेश दिया। पति की जीवितावस्था में पतिपरायणा नारी उसे अकेला छोड़कर नहीं जा सकती इसीलिए राम ने कौशिल्या को अवध में ही रहने के लिये कहा। राम के द्वारा विश्ववन्दनीया और पतिपरायणा माता कौशिल्या को पातिव्रत्य का उपदेश दिलाना उचित नहीं है। पहिले तो कौशिल्या के लिये ऐसे उपदेश की आवश्यकता ही नहीं थी। और यदि वैसा अनिवार्य बन गया था तो कुलगुरु द्वारा यह उपदेश दिया जाता तो विशेष भावोद्रेकपूर्ण होता। पुत्र द्वारा माता को नारी धर्म की शिक्षा देना अभद्रता और अवज्ञा प्रतीत होती है।

केशवदास ने रामचन्द्रिका में संस्कृत ग्रंथों से अनेकों घटना और प्रसंग ग्रहण किये हैं। यह उपदेश भी वाल्मीकि रामायण के आधार पर रक्खा गया मालूम होता है। जिन परिस्थितियों में यह उपदेश दिलाया गया है, उनमें ऐसा करना आवश्यक हो गया है। रामचन्द्र को चौदह वर्ष के लिए बन में भेजने की बात सुनकर लक्ष्मण बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि "मैं कैकेयी में आसक्त वृद्ध पिता को मार डालूँगा" (हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकयासक्त मानसं)। महाकवि भास ने अपने प्रसिद्ध 'प्रतिमा नाटक' में लक्ष्मण से ऐसी ही उक्ति कहलवाई है :—

यदि न सहसे राज्ञो मोह धनुः स्पृश मा दयां।
स्वजन निभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते॥
अथ न रुचते मुञ्चत्वं मामह कृत निश्चयो।
युवति रहितं लोकं कर्त्तुं यतश्छलितां वयम्॥

इस अवसर पर राम लक्ष्मण को समझा रहे हैं, लेकिन कौशिल्या ने दबे शब्दों में लक्ष्मण की उक्ति का ही अनुमोदन किया। अतः महर्षि वाल्मीकि ने राम के मुख से पातिव्रत्य धर्म का उपदेश दिलाना उचित और आवश्यक समझा। यदि राम के द्वारा कौशिल्या को विरत रहने का उपदेश न दिलाया जाता तो लक्ष्मण के विचारों से राम की सहमति होने का सन्देह हो सकता था। रामचन्द्रिका में केशव ने वाल्मीकि की पद्धति का ही पालन किया है। कौशिल्या के वाक्य भी कुछ-कुछ उसी ढंग के हैं। अतः जब हम कथा-प्रवाह पर ध्यान देते हैं तो कौशिल्या को राम के द्वारा दिया गया उपदेश न तो उद्वेग-जनक हो लगता है और न अप्रासंगिक ही।

रामचन्द्रिका में कुछ ऐसे विषयों और वस्तुओं का उल्लेख

आया है, जो रामचन्द्र के समय में विद्यमान नहीं थी। उन वस्तुओं को ला उपस्थित करना जो उस युग में न हों, कविता में काल-दोष माना जाता है। रामचन्द्रिका में निम्नलिखित प्रसंगों में यह दोष पाया जाता है :—

(१) दंडक वन का वर्णन करते समय केशव ने पांडव, अर्जुन और भीम शब्दों का प्रयोग किया है। कृष्णावतार जो राम से एक युग पश्चात् हुआ था, उस युग से इन नामों का सम्बन्ध है, लेकिन आलंकारिक मनोवृत्ति ने केशव के हृदय को इतना पराभूत कर लिया था कि अलंकार की योजना करने में उन्हें काल-दोष का भी ध्यान नहीं रहा :—

> पाँडव की प्रतिमा सम लेखो।
> अर्जुन भीम महामति देखो॥
> है सुभगा सम दीपति पूरी।
> सिन्दुर औ तिलका वलि रूरी॥

(२) राम के युग में दिवाली के अवसर पर जुआ खेलने की प्रथा नहीं रही होगी। राम के समय में इस प्रकार की द्यूत क्रीड़ा की कल्पना भी न की जा सकती। महाभारत काल में द्यूत-क्रीड़ा का अवश्य ही अधिक प्रचार हो गया था। उसी भाँति फाग (होली) के अवसर पर अश्लीलता आज के समय की ही प्रथा है, त्रेता युग में ऐसा नहीं होता होगा। केशवदास ने अपने समय की परिस्थितियों का ही राम-युग में वर्णन कर दिया है :—

> फागुन निलंज लोग देखिये।
> जुआ दिवारी को लेखिये॥

(३) कृष्णावतार में भगवान ने नृसिंह रूप धारण करके अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा करके उसके वचनों का निर्वाह किया

था। रामावतार में नृसिंह और प्रह्लाद नामों का भगवान के दीन रक्षण कार्यों से कोई सम्बन्ध न था। ये घटना तो एक युग के पश्चात् घटित हुई हैं। लेकिन केशवदास ने उनको राम के युग में वर्णित किया है :—

श्री नृसिंह प्रहलाद की, वेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आसु ही झूँठो है है नाथ॥

इस प्रसंग में एक बात और भी द्रष्टव्य है। प्रबन्ध कवि कथावस्तु के निर्वाह के साथ साथ कथा के पूर्वापर सम्बन्ध को मिलाता चलता है। जो बात पहिले कह दी गई हो, उसका समर्थन बाद की घटनाओं से भी किया जाता है। जिस समय रावण सीता के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने के अभिप्राय से आता है, उस समय वह अपने मन्तव्य में कृतकार्य नहीं होता। पतिपरायणा सीता ने उसके हृदय को वाक्य बाणों से जर्जरित कर दिया। हार कर रावण ने उन राक्षसिनियों से (जो सीता के चारों ओर पहरा देती थीं) कहा कि मैं दो मास की अवधि देता हूँ, इसे (सीता को) डराकर, धमकाकर तथा किसी भी अन्य रीति से राजी कर लेना—

अवधि दई द्वै मास की कह्यो राक्षसिन बोलि।
ज्यों समुझै समुझाइयो युक्ति बुरी सों खोलि॥

लेकिन पूर्व वर्णित दोहे में हनुमान ने यही कहा कि यदि एक मास के भीतर सीता का उद्धार नहीं कर लिया गया तो अनर्थ हो जाने की आशंका है। इस प्रकार केशव ने कथा की पूर्वापर घटनाओं का सम्बन्ध मिलाने की चेष्टा भी कहीं नहीं की है।

(५) रामचन्द्रिका के उन्नीसवें प्रकाश में कवि ने चौगान के खेल का वर्णन किया है। रामचन्द्र हाथ में धनुष बाण और

और संग में सेवकों को लेकर चौगान खेलने जाते हैं। 'चौगान' शब्द फारसी भाषा का है और उससे तात्पर्य पोलो (Polo) खेल से है। मुसलमान काल से इस खेल का प्रचार हुआ। राजा और धनवन्तों का यह खेल है। यह खेल राम के समय में नहीं खेला जाता था। भगवानदीन जी ने भी इसके सम्बन्ध में यह लिखा है कि "सन्देह है कि यह खेल राम के समय में खेला जाता था या कवि की कल्पना मात्र है" राजसीय वैभव में रहकर केशवदास को राजाओं के आमोद-प्रमोद और व्यसनों का पर्याप्त ज्ञान था। उस समय चौगान का खेल खेला जाता रहा होगा, उसी का वर्णन कवि ने राम के सम्बन्ध में कर दिया है। चौगान के खेल का केशव ने सविस्तार से वर्णन किया है। एक कोस की लम्बी चौड़ी समतल भूमि है। एक ओर तो रामचन्द्र हैं और दूसरी ओर भरत। वे हाथ में रंग बिरंगी छड़ियों को लिये हुए हैं, फिर एक गोला भूमि पर डाल दिया जाता था और जिस ओर वह गोला जाता उधर ही खेल होने लगता था। इन्द्रजीतसिंह के चौगान के मैदान में केशव ने जो खेल देखा या खेला होगा उसी का वर्णन किया गया है। वर्तमान राजाओं में भी इस खेल का बहुत अधिक प्रचार है :—

एक काल अति रूप निधान।
खेलन को निकरे चौगान॥

हाथ धनुष शर मन्मथ रूप।
संग पयादे सोदर भूप॥

यहि विधि गये राम चौगान।
सावकाश सब भूमि समान॥

शोभन एक कोस परिमान।
रची रुचिर तापर चौगान॥

एक कोद रघुनाथ अपार ।
भरत दूसरी कोद विचार ॥
सोहत हाथे लीन्हे छरी ।
कारी पीरी राती हरी ॥
गोला जाय जहाँ जह जवै ।
होत तहीं तितहो तित सवै ॥

(५) ऐतिहासिक दृष्टि से यवनों का प्रवेश भारतभूमि में ईसा की सातवीं शताब्दी के लगभग हुआ है। राम के युग में यवन नाम की कोई जाति न थी। उस समय अत्याचारी और धर्म विरुद्ध आचरण करने वाले राक्षस ही थे। केशव ने सीता-निर्वासन प्रसंग में भरत के मुख से "यवन और गाय" के विषय का वर्णन कराया है। यवनों का प्राबल्य केशव के समय ही में था, राम के युग में तो उनका चिन्ह भी न था, परन्तु कवि ने अपने समय की बात को राम के युग में वर्णित कर दी है :—

यमनादि के अपवाद क्यों,
द्विज छोड़िहै कपिलादि ।

(६) राम के युग में केशव ने जैनियों के नाम को भी ला दिया है। जैन जाति का प्रादुर्भाव तो ईसा की कुछ शताब्दी पूर्व ही हुआ था। अपने युग की जातियों के सिद्धान्तों और आचार विचारों को कवि ने काल विरोध होते हुए भी राम के समय में उल्लेख किया है :—

[illegible] जैन सदा शुभ [illegible] ।
[illegible] [illegible] युग [illegible] ॥

(७) पुरी जगन्नाथ के मठधारियों तथा वाममार्गियों का वर्णन राम के समय में किया जाना काल-दोष ही है।

ग्यारसि निंदत हैं मठधारी।
भावति है हरि भक्त न भारी॥
निन्दत हैं तव नामहिं वामी।
का कहिए तुम अन्तर्यामी॥

कवि की रचनाओं में काल-दोष की उद्भावना उचित नहीं है। काव्य, इतिहास नहीं है जिसमें केवल उन्हीं बातों का वर्णन किया जावे जो ऐतिहासिक दृष्टि से उस समय विद्यमान हों। परिस्थितियाँ एवं सामाजिक भावनाएँ कवि को बाधित नहीं कर सकतीं। जिस समय में कवि उत्पन्न हुआ है उस समय का प्रभाव उस पर बिना पड़े नहीं रह सकता। कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में इन्दुमती के स्वयंवर के अवसर पर सुनन्दा से सूरसेन देश के राजा सुषेण का वर्णन करते हुए मथुरा का वर्णन कराया है :—

यस्यावरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालना द्वारि विहार काले।
कलिन्दकन्या मथुरां गतापि गङ्गोर्मिसंसक्त जलेव भाति
(रघुवंश सर्ग ६ श्लोक ४८)

मथुरा तो लवणासुर वध के पश्चात् शत्रुघ्न ने बसाई थी उसका वर्णन दो पीढ़ी पहिले 'अज' के समय में कराया गया है, यही नहीं सुनन्दा ने तो भगवान श्रीकृष्ण का भी नाम लिया है जो एक युग पश्चात् हुए हैं।

"वक्षः स्थल व्यापि रुचं दधानः सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णन्"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में ऐसे प्रसंगों को रक्खा है कि जिसे हम यदि आलोचना की इसी कसौटी पर कसें तो काल-दोष ही मानना पड़ेगा। जब हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं तो वहाँ एक गृह में उन्हें तुलसी के वृक्ष दिखलाई दिये :—

'राम नाम अंकित गृह, शोभा वरणि न जाय ।
नव तुलसी के वृन्द बहु, देखि हर्ष कपिराय ।।'

त्रेता युग में तुलसी के वृक्ष का माहात्म्य नहीं था। तुलसीदास जी ने अपने काल में प्रचलित तुलसी वृक्ष की पूजा को देखकर ही राम भक्त विभीषण के घर में तुलसी का बिरवा लगा दिया है। इस प्रकार के वर्णन सभी भाषाओं के कवियों की रचनाओं में पाये जाते हैं। होली तथा दिवाली की कल्पना उद्वेगजनक मानना उचित नहीं है। कवि अपनी कल्पना का प्रयोग काव्य में इसलिए भी करता है। जिससे अतीत और वर्त्तमान में समुचित सामञ्जस्य की प्रतीति हो। गीतावली में गोस्वामी जी ने भी राम की फाग का वर्णन किया है, और अश्लील गालियों भी प्रथा की भी चर्चा की है।

'ऋतु सुभाइ सुठि शोभित, होइ विविध विधि गारि'।

कवि के काव्य में तात्कालिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब पड़ता है और उसी में पाठकों के लिये आकर्षण भी रहता है। काव्य इतिहास नहीं है कि हम उसमें छोटी-छोटी रसात्मक बातों के लिए काल-दोष की कल्पना करने लगें। इस सिद्धान्त का यदि कठोरता के साथ पालन किया जावे तो अपनी कृति में अपने व्यक्तित्व को अंकित करने के लिये कवि को स्थल ही न मिलेगा। यदि किसी ऐसी गंभीर घटना का वर्णन कर दिया जावे जो पूर्ण अनैतिहासिक हो उसे अवश्य कालदोष में परिगणित किया जाना चाहिये।

केशवदास ने रामचन्द्रिका में मठाधीशों की निन्दा कई स्थलों पर की है। इसके सम्बन्ध में शुक्ल जी ने यह लिखा है कि :—

"मठधारियों से केशवदास जी बहुत अप्रसन्न रहते थे।

इसका वास्तविक कारण क्या था यह तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु मठाधीशों की निन्दा उन्होंने स्थान-स्थान पर की है और स्वान वाले प्रसंग की कल्पना तो संभवतः इसीलिये की गई है। मठों की स्थापना बहुत पिछले समय में बौद्धों के अनुकरण पर स्वामी शंकराचार्य के समय से होने लगी थी। अतः मठाधीशों का वर्णन त्रेतायुग में ठीक नहीं हुआ।"

स्वान वाले प्रसंग में केशव ने मठाधीशों को इतना दुरात्मा बतलाया है कि उनका स्पर्श भी वर्ज्य है। उनको छूने से ही पातक लग जाता है :—

लोक कर्‌यौ अपवित्र वहि, लोक नरक को वास।
छुये जु कोऊ मठपतिहि, ताको पुन्य विनास॥

भयो कोटिधा नर्क संपकी ताकौ।
हुते दोष संसर्ग के शुद्ध जाकौ॥

मठाधीशों की निन्दा करने में केशव का लक्ष्य बौद्ध भिक्षुओं की ओर कदापि नहीं है। जो मठाधीश महन्त होते थे उनकी निन्दा की गई है। श्वान वाले प्रसंग की कल्पना मठाधीशों की निन्दा के लिए नहीं की गई है, क्योंकि यह भावना मूलतः केशवदास की नहीं है। श्वान का प्रसंग वाल्मीकि रामायण के अनुसार रखा गया है। मठ से केशवदास का आशय सन्यासियों के मठ से नहीं बल्कि स्कन्दपुराण और पद्मपुराण के अनुसार देव मन्दिर से ही है।

केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण थे। अपने वंश और जाति का गौरवास्पद रूप केशव ने रामचन्द्रिका के प्रारम्भ में ही अंकित किया है। बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' में, भवभूति ने 'उत्तरराम-चरित नाटक' में और जयदेव ने 'गीत गोविन्द' में आत्मश्लाघा

के रूप में बहुत कुछ लिखा है। बाणभट्ट ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :—

यद्गुर्गृहेऽभ्यस्त समस्त वाङ्मयैः ।
ससारिकैः पञ्जर वर्तिभिः शुकैः ।
निगृह्यमानाः वटवः पदे पदे ।
यजूंषि सामानि च तत्प्रमोदिताः ।
उवास यस्य श्रुति शांत कल्मषे ।
सदा पुरोडासपवित्रताधरे ।
सरस्वतीसोमकषायितोदरे,
अशेष शास्त्र स्मृतिबन्धुरे मुखे ।

बाणभट्ट के यहाँ की शारिका और शुक सामवेद की ऋचाओं का गान करते थे और जिसके यहाँ शास्त्रों का परिशीलन ही होता रहता था।

अपनी काव्य प्रतिभा पर भवभूति को भी गर्व था उसने लिखा है :—

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्त्तते ।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयुज्यते ।

जयदेव को भी अपनी श्रुतिमधुर वर्णमैत्री पर अपरिमित विश्वास था :—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो, यदि विलास कलासुकुतूहलम् ।
मधुरकोमलकान्त पदावलिं, शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम् ॥

इस प्रकार संस्कृत के इन प्रख्यात विद्वानों ने अपने आत्म-विश्वास और गौरव का उल्लेख किया है। इन कवियों की कृतियों से उनके कथन की पूर्णतः सम्पुष्टि होती है। केशवदास को भी अपनी कविता पर पूर्ण विश्वास था। कविप्रिया के सम्बन्ध में केशव ने स्वयं लिखा है :—

"कविप्रिया है कवि प्रिया,
कवि संजीवनि जानि"

अपनी रचना के सम्बन्ध में स्व प्रशंसा ही केशव ने नहीं कि अपितु उन्हें अपनी जाति का बड़ा गर्व था। जाति के गौरव का उल्लेख बुरा नहीं है, लेकिन उसकी भी सीमा और मर्यादा है। रामचन्द्रिका के प्रारंभ ही में वंश-परिचय में कवि ने लिखा है :—

सनाढ्य जाति गुणाढ्य है, जगसिद्ध शुद्ध स्वभाव।
सुकृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं, महि मिश्र पंडित राव॥
गणेश सो सुत पाइयो, बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै जिन जान्यो मत साध॥

अपनी जाति और पूर्व पुरुषों की प्रसिद्धि का यह कथन समीचीन ही है। लेकिन रामचन्द्रिका में सनाढ्य-वर्णन इतना आया है कि उससे कवि के हृदय की सनाढ्य प्रशंसा की भावना ही प्रकट होती है। रामचन्द्रिका में उक्त ब्राह्मणों की आवश्यकता से भी अधिक प्रशंसा की गई है। प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से ऐसे प्रसंगों के अत्यधिक समावेश का स्थल भी तो रामचन्द्रिका में नहीं था; परन्तु इससे क्या कवि तो अपनी मनोनीत भावनाओं को प्रकट कर ही देना चाहता था। ऐसे प्रसङ्गों की कल्पना भी कर ली गई है, जहाँ जाति गौरव-गाथा गाई जा सके। राम के समय में समाज में वर्ण विभेद ही था उसके भेद और प्रभेद तो समाज में क्रम से फैलने वाली विशृंखलताओं के दुष्परिणाम स्वरूप ही प्रादुर्भूत हुए हैं। राम के समय में ब्राह्मणों के छोटे-छोटे भेद—सनाढ्य, कान्यकुब्ज आदि न बने होंगे। यह सब न होते हुए भी केशवदास ने ब्राह्मणों की अन्य जातियों पर अपनी जाति की महत्ता सिद्ध की

है। अपनी जाति के इस प्रख्यातिमय और पुनर्कथन के कुछ वैयक्तिक कारण हो सकते हैं, उसके लिये कवि एक पृथक ग्रंथ की रचना करने के लिये स्वतंत्र था। प्रबन्ध कथा में ऐसे प्रसंग बार-बार ला देने से, जो प्रबन्ध कथा आलंकारिक रूपों और घटना निरूपणों के कारण टूट टूट गई है। उसमें और भी अधिक व्याघात पहुँचाया गया है। रामचन्द्रिका में कवि ने अपनी जाति का जिस महत्ता और प्रचुरता के साथ वर्णन किया है वह स्वयं ही कवि के हृदय के भावों का परिचायक है।

(१) श्रीराम ने भरद्वाज ऋषि से यह प्रश्न किया कि किस वस्तु का दान दिया जाना उत्तम है और कौन से ब्राह्मण ऐसे हैं, जिन्हें दान दिया जाना उचित है। जब भरद्वाज ऋषि ने उन समस्त पदार्थों का वर्णन कर दिया, जो दान में दिये जा सकते हैं, तब श्रीराम ने यह कहा कि कितने ही ऋषिराज हैं अतः किसको दान दिया जाय तब ऋषि ने यह कहा कि सनाढ्यों को ही दान देना चाहिये :—

कहा दान दीजे। सु कै भाँति कीजे ॥
जहाँ होई जैसो। कहौ विप्र तैसो ॥

भरद्वाज :—

केशव दान अनन्त हैं, बनैं न काहू देत।
यहै जान भुव भूप सब भूमि दान ही देत ॥

राम :—

कौनहि दीजै दान भुव, हैं ऋषिराज अनेक।

भरद्वाज :—

देहु सनाढ्यन आदि दै, आये सहित विवेक ॥

सनाढ्योत्पत्ति वर्णन

श्रीराम :—

कहौ भरद्वाज सनाढ्य को हैं। भये कहाँ ते सब मध्य सोहैं॥
हुतै सबै विप्र प्रभाव भीने। तजे ते क्यों? ये अति पूज्य कीने॥

भरद्वाज :—

गिरीश नारायण पै सुनी ज्यों।
गिरीश मोंसो जु कही कहौं त्यों॥
सुनौ सु सीतापति साधु चर्चा।
करौ सु जाते तुम ब्रह्म अर्चा॥

नारायण :—

सोते जल नाभि सरोज बढ्यो।
ऊँचो अति उग्र अकाश चढ्यो॥
ताते चतुरानन रूप रयो।
ब्रह्मा यह नाम प्रगट्ट भयो॥
ताके मन तें सुत चारि भये।
सोहैं अति पावन वेद भये॥
चौहूँ उन के मन ते उपजे।
भू देव सनाढ्य ते मोंहि भजे॥

भरद्वाज :—

तातैं ऋषिराज सबै तुम छाड़ौ।
भू देव सनाढ्यन के पद माड़ौ॥
सनाढ्य पूजा अघ ओघहारी।
अखंड आखण्डल लोकधारी॥
अशेष लोकावधि भूमि चारी।
समूल नाशै नृप दोषकारी॥

सनाढ्यों की उत्पत्ति का ऐसा जाज्वल्यमान रूप कवि ने

अंकित किया है और श्रीराम को यह उपदेश कराया है कि दान के सच्चे पात्र सनाढ्य ब्राह्मण ही हैं। यह दानविधान वर्णन और सनाढ्योत्पत्ति वर्णन अप्रासंगिक ही है। केशव ने अपनी जाति का महत्व दिखलाने के लिये ही ज़बरदस्ती इन प्रसंगों का समावेश किया है।

(२) श्रीराम ने राजतिलक हो जाने के उपरान्त अनेकों व्यक्तियों को भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुएँ प्रदान कीं। उस समय सनाढ्यों के लिये भी मथुरा प्रदेश में गाँव दिये :—

विधि सों पाँय पखारि कै, राम जगत के नाँह।
दीन्हे ग्राम सनोढियन, मथुरा मंडल माँह॥

(३) सत्ताइसवें प्रकाश में भिन्न-भिन्न देवताओं ने उपस्थित होकर श्रीराम की वंदना की, उस समय श्रीराम ने सब ऋषि मुनियों को छोड़कर सनाढ्यों के चरणों का स्पर्श किया :—

छाँड़ि द्विज, द्विजराज, ऋषि, ऋषिराज अति हुलसाइ।
प्रकट समस्त सनोढ़ियन के प्रथम पूजे पाँय॥

(४) तीसवें प्रकाश में राम के प्रातः कृत्यों का वर्णन करते हुए यह लिखा कि स्वस्थ गायों को, जिसके सींग सोने से मढ़े होते थे और एक काँसे की दोहनी और रेशम की नोई सहित श्रीराम सनोढियन को दिया करते थे :—

निपट नवीन रोग हीन बहु छीर लीन,
बच्छ पनि थन पीन हीयन हरतु है।
ताँबे मढ़ी पीठ लागे रूप के सुरन डीठि,
देखि स्वर्ण सींग मन आनन्द भरतु है॥
काँसे की दोहनी श्याम पाट की ललित नोईं,
घंटन सों पूजि पूजि पाँयन परतु है।

शोभन सनोढियन रामचन्द्र दिन प्रति,
गो शतसहस्र दे. कै भोजन करतु है ॥

(५) तेंतीसवें प्रकाश में जब ब्रह्मा ने भगवान राम से सृष्टि रचना के कार्य से सन्त्रस्त होकर प्रार्थना की उस समय ब्रह्मा ने यह कहा कि मेरे सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार पुत्र सब अच्छे मुनि हैं, मननशील विद्वान हैं, तपबल से पूर्ण हैं, और वे सनाढ्य जाति के नाम से प्रसिद्ध हैं :—

सब वै मुनि रूरे, तपबल पूरे, विदित सनाढ्य सुजाति ।

(६) जिस समय श्वान मठधारियों की निन्दा कर रहा था, उसी समय द्वारपाल ने आकर यह सूचना दी कि मथुरा निवासी ब्राह्मण पधारे हैं, तब श्रीराम ने उनका चरणोदक लिया और अपना अहोभाग्य माना :—

तब बोलि उठो दरबार बिलासी,
द्विज द्वार लसैं यमुना तटवासी ।
अति आदर सों ते सभा महँ बोल्यो,
बहु पूजन कै मग को श्रम खोल्यो ॥

राम :—

धाम पावन ह्वै गयो पद-पद्म को पय पाय ।
जन्म शुद्ध भयो छुए कुल, दृष्टि दी मुनिराय ॥

(७) लवणासुर का वध हो जाने पर देवताओं ने दुन्दुभी बजाई और आकाश से पुष्प वर्षा की। शत्रुघ्न से प्रसन्न होकर देवताओं ने वर माँगने के लिये कहा। उस समय शत्रुघ्न ने यही कहा :—

सनाढ्य वृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै ॥
अकाल मृत्यु सो मरै। अनेक नर्क सो परै ॥

सनाढ्य जाति सर्वदा। यथा पुनीत नर्मदा
भजैं सजैं ते सम्पदा। विरुद्ध ते असंपदा॥

रामचन्द्रिका के उत्तरार्ध में केशवदास ने सनाढ्य जाति के महात्म्य का बार बार वर्णन किया है। कवि ने उक्त ब्राह्मणों के चरणों का स्वयं श्रीराम द्वारा प्रक्षालन कराया है, इसका वैयक्तिक कारण हो सकता है परन्तु प्रबन्ध काव्य में ऐसे वर्णनों के लिये कोई स्थान नहीं है। इन्द्रजीतसिंह के दरबार में अपनी विद्वत्ता की धाक ही केशव ने नहीं जमाई होगी अपितु श्रेष्ठ कुलोत्पन्न होने का यश और गौरव भी प्राप्त करना चाहा होगा। तात्कालिक परिस्थितियों में अपनी महत्ता को इस प्रकार से प्रतिपादित करने से काव्यत्व को अपकर्ष ही मिला है। केशवदास के समय में ही तुलसी ने समाज का ऐसा चित्र खींचा है, जिसमें वर्णाश्रम व्यवस्था का अतिक्रमण किया जाने लगा था। शूद्र ब्राह्मणों को आँख दिखाने लगे थे। वेद और पुराणों की निन्दा की जाती थी। उपदेशक स्वयं की पूजा कराने लगे थे।

बादहिं शूद्र द्विजन सन, हम तुम्हतें कछु घाटि।
जानहि ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि दिखावहिं डाटि॥
साखी सबदी दोहरा, कहि कहिनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निन्दहिं वेद पुरान॥
श्रुति-सम्मत-हरि-भगति-पथ, संयुत विरतिविवेक।
तेहि परिहरहिं विमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक॥

अपने समय की सामाजिक अस्तव्यस्तता का रूप चित्रित करते हुए तुलसी ने वर्णाश्रम व्यवस्था के पालन पर जोर दिया है। ब्राह्मण जाति के महत्व का प्रतिपादित करके तुलसी ने वर्णाश्रम व्यवस्था की महत्ता के स्वरूप को आभासित किया है। "पूजिय विप्र रूप गुन हीना" रूप और ज्ञान रहित ब्राह्मण भी

पूजनीय बतलाया है। परन्तु तुलसीदास ने यह बात समस्त ब्राह्मणों के लिये कही है। केशवदास ने इस प्रकार के दृष्टि-सङ्कोच से प्रबन्ध काव्य में अनावश्यक प्रसङ्गों का समावेश कर दिया है। प्रबन्ध काव्य में इस प्रकार की एकांगी भावनाओं का प्रदर्शन उचित नहीं माना जा सकता।

रावण के यज्ञ को विध्वंस करने के लिये अंगदादि वानर लंका भेजे गये। अंगद रावण के राजमहल में घुसकर मन्दोदरी को ढूँढ़ने लगा। मन्दोदरी को पकड़कर अंगद ने उसके कपड़े फाड़ डाले। केशव ने मन्दोदरी की कारुणिक परिस्थिति पर ध्यान नहीं दिया है प्रत्युत विस्तार से उसके वस्त्र रहित वक्ष-स्थल का वर्णन किया है। उस वर्णन में श्लीलता का भी कम ध्यान रक्खा गया है। इस प्रकार के शृंगारिक वर्णनों के लिये रामचन्द्रिका उपयुक्त स्थल नहीं है। इस प्रकार की भावनाओं का प्रकटीकरण सामाजिकों को विक्षुब्ध ही बनाता है। करुण रस में शृंगार का समावेश किया भी तो नहीं जा सकता। रस और प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से यह वर्णन दोषपूर्ण है। वस्त्रहीन उरोजों का केशव ने इस प्रकार वर्णन किया है:—

बिना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं।
किधौं साँचहू श्रीफलै शोभ साजैं॥
किधौं स्वर्ण के कुंभ लावण्य पूरे।
वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे॥
किधौं इष्टदेवै सदा इष्ट ही के।
किधौं गुच्छ द्वै काम संजीवनी के॥
किधौं चित्त चौगान के मूल सोहैं।
हिये हेम के हाल गोला विमोहैं॥

इस प्रकार के श्रृंगारिक वर्णनों में केशव की रुचि अधिक लीन रही है। उपयुक्त स्थल पाकर, रस और मर्यादा का ध्यान न रखकर केशव ने श्रृंगार के ऐसे चित्र भी अंकित कर दिये हैं। राम-कथा में जहाँ श्रृंगारिक वर्णनों के लिये स्थान है वहाँ केशव ने बलपूर्वक ऐसे प्रसंगों की कल्पना कर ली है। सीता की दासियों का नख-शिख निरूपण भी रीतिकालीन भावना की संवर्धना ही है। श्रृंगारिक वर्णन वहाँ अलंकारों के बोझ से दब सा रहा है। दासियों के अंग-प्रत्यंग का वर्णन और मन्दोदरी का उक्त वर्णन प्रबन्ध कथा की दृष्टि से उचित नहीं है।

आत्मशुद्धि का परिचय देने के लिए सीता ने अग्नि में प्रवेश किया। उस समय स्वयं अग्नि ने यह साक्षी दी कि हे रामचन्द्र ! यह सीता सदैव शुद्ध है, ब्रह्मादि देवता इसकी प्रशंसा करते हैं। अब आप इसे स्वीकार कीजिए, तब श्रीराम ने आलिंगन करके सीता को अंगीकार किया :—

श्रीराम यह संतत शुद्ध सीता।
ब्रह्मादि देव सब गावत शुभ्र गीता॥
ह्वै कृपालु गहि जै जनकात्मजाया।
योगीश ईश तुम हौ यह योगमाया॥
श्रीरामचन्द्र हँसि अंक लगाइ लीन्हो।
संसार साक्षि शुभ्र पावक आनि दीन्हो॥

जब सीता अग्नि परीक्षा दे रही थीं, उस समय इन्द्रादि देवता दशरथ को लेकर आये थे :—

इन्द्र, वरुण, यम, सिद्ध सब, धर्म सहित धनपाल।
ब्रह्म, रुद्र लै दशरथहिं, आय गये तेहि काल॥

रामचन्द्र ने उक्त देवता और दशरथ के समक्ष सीता का

आलिंगन किया, यह उचित तो नहीं है, परन्तु यह भावना मूलत: केशवदास की नहीं है। केशव ने यह प्रसंग अध्यात्म रामायण से लिया है। वहाँ लिखा है कि "लक्ष्मीपति भगवान राम ने अपने से कभी विलग न होने वाली जगज्जननी सीता को गोद में बिठा लिया।" रामचन्द्रिका में उक्त दृश्य इसी के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

—:o:—

१२

रामचन्द्रिका प्रबन्ध काव्य है ?

केशवदास जी महाकवि माने जाते हैं। यद्यपि महाकवि का शाब्दिक अर्थ 'बड़े कवि' से है किन्तु साहित्य शास्त्र की रूढ़ि के अनुसार 'महाकवि' से तात्पर्य 'महाकाव्य के रचयिता' से है। केशवदास के ग्रंथ 'कवि प्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' के कारण केशवदास को आचार्यत्व भले ही प्राप्त हो गया हो किन्तु उनका महाकवित्व तो रामचन्द्रिका पर ही निर्भर है।

संस्कृत साहित्य में कविता को अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ था। दर्शन, ज्योतिष, व्याकरण या वेदान्त आदि विषय पर ही ग्रंथ रचना चाहे क्यों न की गई हो लेकिन इनके निरूपण में पद्य का ही सहारा लिया जाता था। गद्य का प्रचार संस्कृत साहित्य में कम था। 'गद्यः कवीनां निकषः' से यह ध्वनित होता है कि गद्य लेखन की ओर कवियों की प्रवृत्ति नहीं थी। यद्यपि साहित्य में वे समस्त ग्रंथ परिगणत किये जाने चाहिये जिनमें काव्यत्व हो चाहे वे पद्य में हों या गद्य में, लेकिन बहुत समय तक संस्कृत साहित्य में 'साहित्य' शब्द से आशय केवल पद्य का ही लिया जाता रहा।

साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के तीन प्रमुख विभाग किए हैं १. प्रबन्ध, २. दृश्य और ३ मुक्तक। दृश्य काव्यों में नाटक और मुक्तक काव्य में वे रचनाएँ आती हैं जिसमें जीवन की किसी एक भावना का ही चित्रण किया गया हो। प्रबन्धकार किसी उच्चकुल के व्यक्ति को नायक बनाकर उसके जीवन की

व्यापकता को लेकर रचना करता है। उसमें जीवन की विविध समस्याओं एवं घात-प्रतिघातों का निरूपण किया जाता है। प्रबन्ध काव्य की रचना के लिये साहित्यकारों ने नियमों की रचना की है, जिसका पालन करना प्रबन्धकार को आवश्यक है।

रामचन्द्रिका में राम के जीवन को आधारित करके रचना की गई है। राम का जीवन करुण एवं कर्तव्य के भीषण संघर्ष का विशाल क्षेत्र है। यज्ञादि करने के पश्चात् ही राजा दशरथ ने वृद्धावस्था में चार पुत्र प्राप्त किये, जिनमें राम सर्वप्रिय थे जब राम बालक ही थे उसी समय विश्वामित्र राक्षसों का संहार करने के हेतु राम और लक्ष्मण को तपोवन में ले जाते हैं, उस समय राजा दशरथ का पितृ-हृदय करुण-क्रन्दन करता है।

चारों पुत्रों के विवाहोपरान्त राजा दशरथ रामचन्द्र को युवराज पद देने का विचार करते हैं और फिर कैकेयी के कारण अनर्थकारी घटनाएँ घटित हुईं—राम का वनवास और पुत्र के वियोग में दशरथ का मरण—राम को वन में भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा—यही नहीं सीता का हरण हुआ। रावण के वंश का विनाश करने के पश्चात् सीता सहित अवधपुरी लौटकर राम कुछ समय सुखपूर्वक विता भी न पाये थे कि जन-प्रवाद के कारण गर्भवती सीता का निष्कासन हुआ। राम के जीवन में करुण एवं विषाद से संयुक्त घटनाएं पुंजीभूत होकर ही उपस्थित हुई। कितना कारुणिक जीवन था राम का। इसी कारण आधुनिक कवि सम्राट मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है :—

राम तुम्हारा जीवन स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।

प्रबन्ध काव्य में कथानक के निर्वाह पर पूर्ण ध्यान न रखा जाना चाहिये।

कथावस्तु के मनोरम स्थलों पर ध्यान रखकर कथा का प्रवाह ऐसा होना चाहिये जिससे कथासूत्र ढीला न पड़ने पाये। कथावस्तु के उन स्थलों की व्यापक व्यंजना के अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण हों उनका वर्णन कथा की श्रृंखला को मिलाने के अनुरूप ही होना चाहिये। कवि अपनी अनुभूति एवं अगाध ज्ञान से कथानक को जितना हृदयग्राही बनावेगा और जीवन के घात-प्रतिघातों का जैसा सजीव समावेश करेगा उतनी ही उसकी कवित्व शक्ति का परिचय प्राप्त होगा।

प्रबन्ध काव्य में कथानक का क्रमिक विकास होना चाहिये। केशवदास ने विश्वामित्र को बालकांड के आरम्भ में ही रख दिया है और इस प्रकार राम जन्म का कारण तथा उनकी शैशवावस्था का कोई वर्णन नहीं किया। प्रबन्ध काव्य में कवि को यह सुविधा आवश्यक है कि वह उस कथानक के अनुरूप जीवन की विविध भूमियों का दर्शन करा सकता है। तुलसीदास ने यद्यपि राम की बाललीला संक्षेप में रखी है परन्तु राम जन्म का वर्णन यथोचित विस्तार से किया है, इसीलिये पाठकों को पहले से ही यह ज्ञात हो जाता है कि :—

> विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
> निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार॥

केशवदास ने ये प्रसंग रामचन्द्रिका में रक्खे ही नहीं हैं जब तक राम जन्म का कारण नहीं बतला दिया जावेगा तब तक उनके द्वारा किये गये आगे के कार्य भूमि-भार को उतारने के लिये किये हुए समझने में बाधा ही होती है। पंचवटी के अवसर

पर जब राम और सीता बैठे हुए हैं उस समय रामचन्द्र सीता से कहते हैं :—

राज सुनो इक मंत्र सुनौ अब ।
चाहत हौं भुव भार हर्‌यौ सब ॥
पावक में निज देहहिं राखहु ।
छाय सरीर मृगं अभिलाखहु ॥

इस वार्तालाप के परिणामस्वरूप रामकथा के कारुणिक स्थलों में सच्ची अनुभूति नहीं हो सकती और जब सीताहरण के पश्चात् राम विलाप करते हैं उस समय वह सब मिथ्या ही लगता है, क्योंकि पाठक को यह विदित है कि सच्ची सीता का हरण ही नहीं हुआ है। प्रबन्ध कवि को रचना में कोई भी ऐसा स्थल न रख देना चाहिये जिसके कारण रसानुभूति में व्याघात पड़ जावे ।

राम वनगमन के प्रसंग में केशवदास ने प्रासंगिक उपकथाओं का अधिक संकोच किया है। वहाँ न तो कैकेयी वरदान का प्रसङ्ग है और न मंथरा द्वारा कैकेयी के मात्सर्य को प्रज्वलित करने का वर्णन । इसके अभाव में कैकेयी के चरित्र का पतन तो हुआ ही है कथावस्तु की दृष्टि से भी यह ठीक नहीं है। प्रबन्ध कवि प्रमुख कथा-प्रसंगों की केवल सूचना ही न देगा, किन्तु वहाँ पर मनोवैज्ञानिक चित्रणों के द्वारा उस स्थल को सजीव बनावेगा। इस स्थल पर केशवदास दशरथ की उस दयनीय दशा का वर्णन कर सकते थे जो कि प्रतिज्ञा-पालन तथा पुत्र-स्नेह के कारण उत्पन्न हो रही थी। यही नहीं, केशवदास ने दशरथ मरण की घटना का भी समावेश रामचन्द्रिका में नहीं किया है।

इस प्रकार केशवदास ने रामचन्द्रिका के प्रमुख स्थलों का

भी परित्याग किया है और कितने ही स्थलों पर केवल सूचना मात्र से ही प्रबन्ध-शृंखला जोड़ने का प्रयास किया है।

रामचन्द्रिका में प्रबन्ध काव्य के नियमों का तो यथायोग्य वर्णन किया गया है, किन्तु कुछ स्थलों को केशवदास ने केवल इसलिये रख दिया है कि या तो वे प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक या वाल्मीकि रामायण में दिये हुए हैं अथवा उनमें चमत्कार प्रदर्शन का उपयुक्त स्थल प्राप्त हो गया है। 'कालिका कि वर्षा हरषि हिय आई है" ऐसे ही प्रसंगों में से है। प्रबन्ध कवि को प्रकृति-वर्णन करना चाहिये, लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि वह प्रकृति के वर्णन को इतना प्राधान्य दे दे कि प्रमुख कथावस्तु पीछे रह जाय, या प्रकृति का ऐसा चित्रण करे जिसका कथावस्तु से अधिक सम्बन्ध न हो।

रामचन्द्रिका के कथा-प्रवाह में व्याघात इस कारण और भी पहुँचता है कि छन्द इतने जल्दी परिवर्तित होते हैं कि पाठक उनके चमत्कार में पड़ जाता है और कथावस्तु में तल्लीन नहीं हो पाता। छन्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में जो नियम साहित्य शास्त्रियों ने बनाये हैं उनके अनुसार एक सर्ग में केवल एक ही प्रकार का छन्द प्रयुक्त होना चाहिये। केवल सर्गान्त में पृथक छन्द की योजना की जा सकती है। केशवदास शायद यह प्रकट करना चाहते थे कि विविध प्रकार के छन्दों में छन्द रचना करने की वे क्षमता रखते हैं इसीलिये साहित्य के नियमों का उन्होंने अतिक्रमण किया है। एक ही प्रकार के छन्द-प्रयोग से रसानुभूति में सहायता मिलती है, इसका ज्ञान संस्कृत में कवियों को था इसीलिये जितने भी प्रबन्ध-काव्य संस्कृत में लिखे गये हैं उनमें इस नियम का पालन किया गया है। केशवदास ने इतने छोटे छोटे छन्दों का प्रयोग किया है जो

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं ऐसे छन्दों के लिये उपयुक्त स्थान छन्द शास्त्र ही हो सकता है।

रामचन्द्रिका में केशव ने न तो पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर ही ध्यान दिया है और न कथा-प्रसंगों का ऐसा सन्तुलित एवं आनुपातिक वर्णन किया है जिससे राम के जीवन का पूर्ण ज्ञान केवल रामचन्द्रिका के पाठक को हो जावे।

यह सब होने पर भी यही कहा जा सकता है कि रामचन्द्रिका प्रबन्ध काव्य है। निस्संदेह इसकी रचना प्रबन्ध काव्य की पृष्ठभूमि पर हुई है, कवि उन स्थलों के प्रति विशेष आकर्षित हुआ है जहाँ उसे चमत्कारिक उक्तियाँ प्रकट करने का अच्छा अवसर मिला है; अन्य प्रसंगों को चलता कर दिया है। कथानक की शृंखला को मिलाने में कठिनाई अवश्य होती है; परन्तु कथासूत्र प्रच्छन्न रूप से सर्वत्र विद्यमान रहता है। कथा-प्रवाह टूट जाना और बात है और उसकी कठिनाई से लड़ियाँ मिलाना और बात। केशवदास ने रामचन्द्रिका में राम के चरित का ही वर्णन किया है, और इन न्यूनताओं के होते हुए भी उसकी गणना प्रबन्ध काव्यों ही में होगी।

अलंकारों के प्रति अत्यधिक रुचि होने के कारण केशव ने रामचन्द्रिका में केवल वे ही प्रसंग रखे जिनमें आलंकारिक योजना और चमत्कार प्रदर्शन किया जा सकता है। अन्य प्रसंगों को या तो केशव ने लिया ही नहीं है अथवा उनका संकेत भर कर दिया है। रामचन्द्रिका के बीसवें प्रकाश तक तो यत्किंचित रूप से कथावस्तु चलती रहती है परन्तु आगे के प्रकाशों में केशव ने बहुज्ञता प्रदर्शनार्थ ऐसे प्रसंग रखे हैं, जिनका प्रबन्ध कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन्द्रजीतसिंह के

दरबार में रहकर केशव ने राजसी जीवन का जो अनुभव किया था, उसे भी प्रकट किया है, यद्यपि राम के जीवन से इन बातों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। राजसभाओं में नृत्य और गान हुआ करते थे वही रूप 'रामचन्द्रिका' में भी समाविष्ट कर दिया गया है। बत्तीसवें प्रकाश तक केशव ने ऐसे ही प्रसंगों को रक्खा है। इनमें से यदि तेईस, चौबीस, पच्चीस, सत्ताईस और उन्तीस से लेकर बत्तीस प्रकाश तक यदि निकाल दिये जावें तो प्रबन्ध की कथावस्तु का कोई अंश नहीं छूटेगा। केशव ने प्रबन्ध काव्य की रचना करते समय कथावस्तु पर ध्यान नहीं रखा है। वे प्रसंग जिनमें कवि की रुचि अधिक थी, समाविष्ट कर दिये गये हैं। इन्द्रजीतसिंह के दरबार में होने वाले संगीत और नृत्य का चित्र खींचा गया है। ओरछे के राजमहल और उद्यानों तथा राजमहल में रहने वाली दासियों के सौन्दर्य की ओर भी केशव का ध्यान गया है। स्वजाति प्रशंसा की ओर भी केशव की रुचि थी अतः इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कितने ही अनावश्यक प्रसंगों की कल्पना की है।

केशव दरबारी कवि थे। अपने आश्रयदाता की प्रशंसा और अपनी काव्य रचनाओं से उसे प्रसन्न करना उनका लक्ष्य था। हृदय की सुकुमार अनुभूतियों को ही प्रकट करना ऐसे कवियों का ध्येय नहीं होता वह तो ऐसी रचना करना चाहते हैं, जिससे उनके आश्रयदाता सन्तुष्ट हों। यही कारण है कि रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में ऐसे प्रसंगों का आवश्यकता से अधिक समावेश हुआ है। प्रत्यक्ष रूप से तो ये वर्णन राम से ही सम्बन्ध रखते हैं, अतः कथावस्तु की शृंखला मिली रहती है। संस्कृत के शास्त्रियों द्वारा प्रबन्ध काव्य के लिये निरूपित किये गये नियमों का केशव ने अधिकांशतः पालन किया है। प्रकृति वर्णनों का

रामचन्द्रिका में यथेष्ट समावेश हुआ है। राम की कथा इतनी व्यापक हो चुकी थी कि यदि उसके थोड़े से अंश को छोड़ भी दिया जाय या संक्षेप में ही उसका वर्णन कर दिया जाय तो भी पाठक को वह कथा ज्ञात हो जाती थी, इसीलिये केशव ने इतनी स्वतन्त्रता का प्रयोग किया है।

—:०:—

१२

उपसंहार

केशवदास रीति काल के प्रथम आचार्य थे। कविप्रिया और रसिकप्रिया की रचना द्वारा केशव ने अलंकार और रस का विवेचन किया है। रामचन्द्रिका में छन्दों का निरूपण किया गया है। प्रारंभिक छन्दों को देखकर इस विचार की पुष्टि हो जाती है कि आचार्य केशव ने रामचन्द्रिका की रचना छन्दों की शिक्षा देने के हेतु की है। वर्णिक छन्दों की प्रचुरता इसी की द्योतक है कि केशव सब प्रकार के छन्दों के उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते थे। काव्य दोषों के उदाहरण भी जानबूझ कर रख दिये गये हैं। केशव चाहते तो उन दोषों को न आने देते पर काव्य-शिक्षा के लिये दोषों के उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिये, इसीलिये केशव ने उनका समावेश किया है। केशव कवि ही नहीं, काव्याचार्य थे। केशव की कल्पना-शक्ति प्रखर और विलक्षण थी; रामचन्द्रिका में स्थान स्थान पर केशव ने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। एक विशेष धारणा से प्रेरित होकर ही केशव ने 'रामचन्द्रिका' की रचना की है। केशव ने यह समझकर कि राम कथा से जनसाधारण अवगत है इसलिये राम के जीवन के केवल उन्हीं अंगों का प्रदर्शन किया है जहाँ वे उक्ति-वैचित्र्य का चमत्कार प्रदर्शित कर सकते थे। केशव की तुलना अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि मिल्टन से की जा सकती है। मिल्टन ने अपने काव्य में कठिन शब्दों का प्रयोग किया है और कवि-परम्पराओं का पालन किया है। उन्होंने

लवा पक्षी को गृहों के वातायनों पर लाकर बिठा दिया है, उसी प्रकार केशव ने भी कवि-परम्परा के पालनार्थ ही "एला ललित लवंग" के वृक्षों को मगध के वन में उगा दिया है।

संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी केशव ने पर्याप्त रूप से किया है। केशवदास की उद्भावना शक्ति इतनी प्रबल थी कि एक ही प्रसंग का वे अनेकों प्रकार से वर्णन कर सकते थे। कुछ अलंकार केशव को इतने प्रिय थे कि उनकी पुनरावृत्ति में भी वे दोष नहीं समझते थे। प्राकृतिक सौन्दर्य के निरूपण में कवि की काव्य-प्रतिभा को अनुरंजन होता था इसलिये उनके चित्र रामचन्द्रिका में प्रचुर मात्रा में अंकित किए गये हैं। वन, बाग, तड़ाग और नदी का दो-दो बार वर्णन किया गया है। केशव ने काव्य-रचना अपनी धारणा और मनोवृत्ति के अनुकूल ही की है; यही कारण है कि रामचन्द्रिका में वे ही स्थल पूर्णता के साथ अंकित किए गये हैं जो कवि को अच्छे लगे हैं। हनुमान जब रावण के महल में पहुँचा तो उसने अनेकों सुन्दरियों को देखा। कोई गा रही है; कोई नाच रही है। कोई मदोन्मत्त होकर माला को गूँथ रही है। तोता मैना भी कोकशास्त्र की कारिकाओं का पाठ कर रहे हैं। राजदरबार के ऐसे भव्य-चित्र हिन्दी में केशव के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने अंकित नहीं किये। राज दरबार का प्रत्यक्षानुभव केशव को था, उसी को केशव ने ओजपूर्ण ढंग से प्रदर्शित किया है :—

कहूँ किन्नरी किन्नरी ले बजावें।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावें॥
कहूँ यक्षिणी पक्षिणी लै पढ़ावें।
नगीकन्यका पन्नगी को नचावें॥
पियें एक हाला गुहें एक माला।
बनी एक बाला नचै चित्रशाला॥

कहूँ कोकिला कोक की कारिकाको ।
पढ़ावे सुआ ले सुकी सारिका को ॥

भाषा पर केशव का अपरिमित अधिकार था। रामचन्द्रिका में कितने ही छन्द ऐसे हैं, जिनके एक से अधिक अर्थ होते हैं। इस शब्द-लाघव से कहीं-कहीं तो केशव ने बड़ा चमत्कार प्रदर्शित किया है। रावण जब सीता के समक्ष अशोक वाटिका में राम की निन्दा करता है तो कवि ने उन्हीं शब्दों के द्वारा एक भिन्नार्थ प्रकट कराया है, जिससे राम की स्तुति का स्पष्ट बोध होता है। केशव के पांडित्य ने कहीं-कहीं तो काव्य के ऐसे सुन्दर चित्र अंकित किए हैं, जिन्हें देखकर हृदय मुग्ध हो जाता है। केशव में अवश्य ही असाधारण काव्य-प्रतिभा थी।

कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै ।
हितू नग्न मुंडी नहीं को सदा है ॥
अनाथै सुन्यौ मैं अनाथानुसारी ।
बसै चित्त दंडी जटी मुंडधारी ॥
तुम्हैं देवि दूपै हितू ताहि मानैं ।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानैं ॥
महानिर्गुणी नाम ताकौ न लीजै ।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै ॥

रावण ने सीता को जो प्रलोभन दिया उसमें भी जगन्माता सीता की स्तुति ही गाई गई है। रावण कहता तो यह है कि हे सीते यदि तुम मेरे राजमहल में रहने लगो तो तुम सब की पटरानी बनोगी। सरस्वती, इन्द्राणी, और पार्वती भी तुम्हारी सेवा करेंगी। लेकिन भक्त के पक्ष में भी उसका अर्थ यह ध्वनित होता है कि हे सीता! तुम दैत्य-कन्याओं और राजरानियों की

भी रानी हो, तुम्हारी सेवा सरस्वती, शची और पार्वती भी करती हैं। ऐसा वाक्-चातुर्य साधारण कवि की रचनाओं में दृष्टिगत नहीं होता। केशव के अमित शब्द-भांडार और कवित्व-शक्ति के परिणामस्वरूप ही ऐसी सुन्दर कविता की सर्जना संभव है :—

अदेवी नृदेवी न की होहु रानी।
करैं सेव बानी मघौनी मृडानी॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावें।
सुकेशी नचैं उर्वशी मान पावें॥

केशव ने प्रस्तुत प्रसंग के लिये सादृश्य-मूलक ऐसे उपमान भी प्रस्तुत किये हैं, जिनसे उस प्रसङ्ग का स्पष्ट चित्र अंकित हो गया है। राम के वियोग में सीता का वर्णन करते हुए केशव ने उसकी तुलना उस कमल नाल से की है जो कीच युक्त है और जल से निकाल कर बाहर डाल दी गई है। जल से बाहर कर देने से कमल नाल मुरझा जाती है उसी प्रकार राम से बिछुड़ने के कारण सीता की दशा है :—

धरे एक बेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मनों पंक तें काढ़ि डारी॥
सदा राम नामैं ररै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी॥

केशव का प्रादुर्भाव हिन्दी काव्य क्षेत्र में उस समय हुआ जब भक्ति-काल का अवसान हो रहा था राजनीतिक परिस्थितियों के कारण राजा आमोद-प्रमोदमय जीवन व्यतीत करने लगे थे। कवियों को भी राजाश्रय प्राप्त होने लगा था। भक्ति काल की अन्तिम आभा को देखकर भी केशव के हृदय में भक्ति की वह पावन भागीरथी प्रवाहित न हो सकी, जहाँ सांसारिक सुखों

और भौतिक आकर्षणों से जीव की मुक्ति हो जाती है। काव्य में प्रकट की गई विरागमूलक भावनाओं में कवि के हृदय का साम्य न था। भक्ति-भावना भी कवियों के हृदय के अन्तराल से प्रसूत न होती थी वह तो 'कविता करने का बहाना' मात्र थी। इन परिस्थितियों में केशव ने राम की कथा को लिखा है। रीतिकालीन भावना का सीता-वियोग-वर्णन में इसीलिये समावेश हो गया है। विरह में उद्दीपन की समस्त सामग्रियाँ दुःखदायिनी हो जाती हैं। उन पदार्थों की ओर विरहिणी आँख उठाकर भी नहीं देखती। सीता की भी यही दशा है :—

भौंरिनी ज्यौं भ्रमत रहत वन वीथिकानि,
हंसिनी ज्यौं मृदुल मृणालिका चहति है।
हरिनी ज्यौं हेरति न केशरि के काननहि,
केका सुनि व्याल ज्यों विलान ही चहति है॥
पीउ पीउ रटति रहति चित चातकी ज्यौं,
चंद चितै चकई ज्यौं चुप ह्वै रहति है।
सुनहु नृपति राम विरह तिहारे ऐसी,
सूरति न सीता जू की मूरति गहति है॥

आस-पास की परिस्थितियों का प्रभाव कवि के हृदय पर अवश्य पड़ता है। यही नहीं, केशव के हृदय में शृङ्गार रस की प्रबल धारा प्रवाहित हो रही थी, इसीलिए समय पाकर वह फूट निकलती थी। रामचन्द्रिका में कवि की मनोवृत्ति शृङ्गारिक एवं पाण्डित्य-प्रदर्शन थी। अभिलाषा और आलंकारिक प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। केशवदास ने कितनी ही घटनाओं के शब्द-चित्र खींचे हैं। उनके वर्णनों में चित्रोपमता है।

केशव के स्वयं के विशिष्ट काव्य-सिद्धान्त थे, उन्हीं का प्रतिपालन रामचन्द्रिका में किया गया है। ऐसे शब्दों का भी

प्रयोग 'रामचन्द्रिका' में मिलता है जो न तो केशव के समय ही में प्रचलित थे और न आज ही। रामचन्द्रिका में वस्तु-वर्णन के बजाय प्रसङ्गों का ही विशिष्ट निरूपण है। कवि कथा लिखने में उतने लीन नहीं हैं, जितना अप्रासंगिक वस्तु वर्णन में। रुचि के अनुकूल प्रसङ्ग पाकर केशव मूल-कथा को भूल गये हैं।

रामचन्द्रिका की पृष्ठभूमि प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्ध काव्य के विशिष्ट नियमों का भी पालन किया गया है। लेकिन छन्दों के अमित ज्ञान और उनकी रचना करने की अद्वितीय क्षमता का परिचय कवि देना चाहता है, इसलिये रामचन्द्रिका की कथा में रस की निष्पत्ति नहीं हो पाई। रामचन्द्रिका के करुण से करुण स्थल में भी वह आर्द्रता नहीं है जो पाठकों के हृदय को शोकाभिभूत कर सके। बहुज्ञता-प्रदर्शन के कारण कथा-शृंखला बीच-बीच में टूट जाती है। केशव की परिस्थितियाँ और उनके काव्य सम्बन्धी सिद्धान्त इसके लिये उत्तरदायी हैं, केशवकी काव्य-रमणी सदा अलंकृत रहकर राजप्रासादों में ही प्रवेश करने की इच्छुक रहती है; जनसाधारण की छाया से वह दूर भागती है। केशव की कविता का रसास्वादन काव्य मर्मज्ञों तक ही सीमित है। कवि ने क्लिष्टता का समावेश करके अपनी कविता के प्रसार क्षेत्र को अत्यन्त सीमित और संकुचित कर दिया है। राजदरबार की प्रसिद्धि ने केशव के हृदय को जनसाधारण से पराङ्मुख कर दिया, इसीलिये उनकी कविता में क्लिष्ट कल्पना और आलंकारिक संविधान प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

१४

तुलसी ससी, उडुगन केशवदास

आलोचना की वैज्ञानिक पद्धति हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में आने के कारण ही प्रचलित हुई है। इसका यह आशय कदापि नहीं है कि प्राचीनकाल में आलोचना की ओर संस्कृत के कवियों का ध्यान ही नहीं गया। उस समय आलोचना होती अवश्य थी किन्तु जिस विश्लेषणात्मक पद्धति पर आलोचना की परिपाटी आज विद्यमान है उसका अभाव था। एक श्लोक में ही चार-चार कवियों के गुणों का प्रदर्शन कर दिया जाता था। जैसे

'उपमा कालिदास्य, भारवेरर्थ गौरवं ।
दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयोगुणाः'

इस छोटे से श्लोक में क्रमशः कालिदास, भारवि, दण्डिन तथा माघ की आलोचना ही नहीं तुलनात्मक आलोचना की गई है। जिस प्रकार दर्शन, व्याकरण, ज्योतिप आदि गंभीर विपयों पर विशद व्याख्यात्मक ग्रंथ लिखे गये उसी प्रकार आलोचना शास्त्र पर सुन्दर ग्रन्थ क्यों न प्रस्तुत हुए, इस प्रश्न का समाधान उस समय के व्यक्तियों की मनोवृत्ति एवं धारणाओं के अध्ययन से हो जाता है। भारतीयों का ध्यान सर्वदा से आध्यात्मिक उन्नति की ओर ही प्रवृत्त रहा है, अतः इस असार संसार में जन्म ग्रहण करके वे भगवत्भजन में अपने समय का सदुपयोग करते थे किसी संसारी व्यक्ति से उनका कोई सरोकार न था। यही कारण है कि किसी कवि की कृति के

गुण-दोषों के प्रदर्शन में उनकी रुचि नहीं थी। एक युग संस्कृत साहित्य में ऐसा आया जब कि कालिदास आदि महाकवियों की रचनाओं की संस्कृत में टीका की गई। रघुवंश महाकाव्य की टीका करते समय मल्लिनाथ ने लिखा था 'नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते।' इन टीकाओं को आलोचना के आधुनिक सिद्धान्तों पर हमें नहीं कसना चाहिये, लेकिन इनका रूप आलोचना के समान ही है।

आलोचना के द्वारा किसी कवि की कृति में अन्तर्निहित भावना को प्रकाश में लाया जाता है तथा उसकी रचना में कवि का क्या हेतु है उस पर भी सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाता है। आलोचक का यह कर्तव्य है कि कवि के विचारों से सहानुभूति रक्खे और निष्पक्ष होकर उस काव्य के निष्कर्षों पर विचार करे तभी वह आलोचना उपयोगी होगी, अन्यथा संकुचित मनोवृत्ति के कारण जो आलोचना की जावेगी उससे लाभ होने की कोई आशा नहीं है।

जब दो रचनाकार एक ही विषय पर पृथक-पृथक ग्रंथों की रचना करें तो उन दोनों के महत्व के निदर्शन के लिये उनके द्वारा वर्णित की गई कथावस्तु पर तुलनात्मक विचार करके जो विचार प्रकट किये जाते हैं वही समालोचना कहलाती है। उन्हीं कवियों की समालोचना की जा सकती है जिनकी विचार धारा में साम्य है और जिन्होंने उसी विषय पर रचना की हो। समालोचना के लिये, विभेद के साथ समानता की आवश्यकता है, क्योंकि भिन्न-भिन्न मार्ग से जाने वाले व्यक्तियों की कोई तुलना नहीं हो सकती।

बाबा वेणीमाधवदास ने मूल गुसाईं-चरित में जो उल्लेख किया है उससे यह विदित है कि गोस्वामी तुलसीदास तथा

केशवदास समकालीन थे। यद्यपि केशवदास की मृत्यु तुलसीदास के जीवन काल में ही हो गई थी। केशवदास ने रामचन्द्रिका की रचना तुलसीदास से उत्तेजना प्राप्त करने के उपरान्त ही की है। स्वयं केशवदास ने भी रामचन्द्रिका की रचना वाल्मीकि मुनि के उपदेश के अनुसार किया जाना लिखा है। केशव और तुलसीदास ने राम के जीवन को ही कथावस्तु माना है। दोनों की भक्ति-भावना भी सगुणोपासक की है लेकिन यह उपर्युक्त वर्णन से ही स्पष्ट है कि केशव ने आत्मप्रेरणा पाकर इस ग्रंथ की रचना नहीं की। उन्होंने तो विद्वत्ता प्रकट करने के लिये ही महाकाव्य की रचना की, तुलसीदास के समान 'स्वान्तः सुखाय' नहीं। जब तक कवि आत्मविभोर होकर अपनी कृति में तल्लीन नहीं होता, उस समय तक उसकी रचना में वह सप्राणता नहीं आ पाती, जो कि महाकवियों में सहज ही में दृष्टिगोचर होती है। एक ओर तुलसीदास हैं, जो राम के अनेक भक्त हैं 'जानकी जीवन को जन ह्वै जरि जाय सो जी ह्वै जो जाँचत औरहि' तो केशव केवल रामचन्द्रिका में ही 'रामचन्द्र को इष्ट' कहते हैं अन्यथा अपने अन्य ग्रन्थ 'कविप्रिया' तथा 'रसिक प्रिया' में वे कृष्ण सम्बन्धी रचना करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी स्मार्त वैष्णव थे जो राम के अनन्य भक्त होने के साथ-साथ अन्य देवी देवताओं के प्रति श्रद्धा रखते थे। उनका भक्त हृदय किसी भी देवरूप के प्रति अश्रद्धा की भावना नहीं रख सकता था। केशवदास ने यद्यपि राम तथा कृष्ण सम्बन्धी काव्य रचना की है लेकिन वहाँ उनकी भक्ति-भावना विद्यमान नहीं है। केशव ने कृष्ण को इतना रसिक बना दिया है कि वे देवत्व के पद को छोड़कर साधारण विलासी के रूप में ही समाज में विचरण करते हैं। जो कृष्ण गीता में यह उपदेश करते हैं। कि 'ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः'। वही कृष्ण वृषभानु

के घर में आग लग जाने पर, जब सब व्यक्ति आग बुझाने में अत्यन्त व्यग्र हैं, उसी समय एकान्त में कृष्ण को राधिका मिल जाती है और वह—

'ऐसे में कुँवर कान्ह सारी-सुक बाहिर कै,
राधिका जगाई और युवती जगाइ कै।
लोचन विशाल चारु चिबुक कपोल चूमि,
चंपे की सी माला लाल लीन्हीं उर लाय कै॥

कोई भी भक्त कवि अपने आराध्य देव का इतना अभद्र चित्र अंकित नहीं कर सकता। तुलसीदास ने काव्य-रचना अपनी भक्ति-भावना प्रकट करने के लिये ही की है। काव्य के माध्यम के द्वारा कवि आराध्य देव की उपासना ही करना चाहता है। तुलसी ने स्वयं लिखा भी है "कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ। प्रेम मगन होइ राम जस गाऊँ।" तुलसी ने जहाँ-जहाँ भी वैयक्तिक वर्णन किया है वहाँ अपने को अति तुच्छ ही समझा है, लेकिन अपने बुद्धि बल पर विश्वास करने वाले केशव को यह प्रिय न था वे अपने ग्रंथ 'कविप्रिया' की प्रशंसा में स्वयं लिखते हैं—

'कविप्रिया है कविप्रिया कवि संजीवनि जाहि।'

जिस समय तुलसीदास ने काव्य-रचना प्रारम्भ की उस समय हिन्दी में न तो काव्य-भाषा ही निर्धारित की गई थी। और न शैली ही निश्चित हुई थी। तुलसीदास से पूर्व प्रेमाख्यानक काव्य-कर्त्ता सूफी कवि ग्रामीण अवधी में दोहे और चौपाइयों की रचना कर चुके थे। कबीर भी अपनी 'सधुक्कड़ी' भाषा में पदों की रचना करके 'हिन्दू' और 'तुर्की' को राह बता चुके थे। लेकिन जहाँ तक भाषा और शैली का

प्रश्न है वह अनिश्चित ही रहा। सूरदास ने अवश्य ब्रजभाषा की कोमलकान्त पदावलि में पदों की रचना द्वारा कृष्ण के माधुर्य की व्यंजना की, किन्तु जीवन की कठोर परिस्थितियों की कर्कश व्यंजना ब्रज की मिठासभरी 'बोली' में होना सम्भव न था। तुलसीदास ने भाषा एवं शैली दोनों की दृष्टि से अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का सफल परिचय दिया। अवधी भाषा में उन्होंने रामचरितमानस, बरवै रामायण, दोहावली आदि की रचना की तथा ब्रजभाषा में गीतावली, विनयपत्रिका, कवितावली आदि की रचना की। ब्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं पर तुलसी का समान अधिकार था। भाषा का इतना उत्कृष्ट एवं परिष्कृत रूप तुलसी ने रखा जो उनके महान बौद्धिक विकास के कारण ही हो सका। भाषा की भाँति तुलसीदास ने उस समय प्रचलित समस्त शैलियों में काव्य की रचना की। उस समय प्रधानतः निम्नलिखित शैलियाँ प्रचलित थीं।

१—वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति।
२—विद्यापति तथा जयदेव की गीत पद्धति।
३—भाट एवं चारणों की कवित्त एवं सवैया पद्धति।
४—नीति ग्रंथकारों की दोहा पद्धति।
५—प्रेमाख्यानकारों की दोहे-चौपाई की पद्धति।

तुलसीदास ने उक्त पाँचों शैलियों में काव्य की सफल रचना की है। लेकिन जब हम भाषा और शैली की दृष्टि से केशव का अध्ययन करते हैं तो विदित होता है कि केशव ने केवल ब्रजभाषा ही में रचना की है। अवधी भाषा के ऊपर उनका अधिकार न था। यही नहीं, उनकी ब्रजभाषा में संस्कृत की तत्सम क्लिष्ट पदावलियों के प्रयोग से वह माधुर्य नहीं है जो कवितावली और गीतावली की भाषा में है। तुलसीदास ने सरल

से सरल रीति में अपनी भक्ति के उद्गार प्रकट किये हैं, क्योंकि जिस ईश्वर के चिन्तन में उन्होंने काव्य-रचना की। उसके समक्ष निश्छल रूप में, बिना किसी बनावट के ही उपस्थित हो सकते हैं, इसके विपरीत राजदरबारों में रहकर केशव अपने आश्रयदाताओं की अभिलाषा की पूर्ति में ही काव्य-रचना करते थे और अपनी चमत्कृत उक्तियों के द्वारा सभासदों से साधुवाद लेते थे। तुलसी के सिद्धान्त 'कीन्हें प्राकृत जनगुन गाना। शिर धुनि गिरा लागि पछताना' के विपरीत ही केशव ने तत्कालीन राजाओं के यशोगान में भी काव्य की रचना की है।

प्रबन्ध-कल्पना

चिर परम्परा से चली आती हुई राम की कथा को तुलसीदास तथा केशवदास ने अपने काव्य का विषय बनाया। साधारण कथानक में श्रेष्ठ कवि अपने प्रतिभा-बल से ऐसे मनोरम स्थलों का समावेश कर देता है, जिससे वह कथानक न केवल एक इतिवृत्त होता है अपितु जीवन की विविध दशाओं और मानव-धर्म की विविध क्रियाओं का उसमें सुन्दर दिग्दर्शन करा दिया जाता है। भक्त-कवि तुलसीदास जी राम के चरित्र को इतनी सुन्दरता के साथ आदर्शरूप में अंकित करना चाहते थे, जिससे साधारण नर-नारी भी उनके चरण-चिह्नों पर चल कर अपने जीवन को सफल बना लें। तुलसीदास ने प्रारम्भ में गुरुवन्दना, संत-असज्जन महिमा तथा रामावतार की कथा का इतनी पूर्णता के साथ वर्णन किया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी अपनी धारणा के अनुसार रामचरितमानस में राम के जीवन का व्यापक एवं संश्लिष्ट चित्र अंकित करना चाहते थे। राम के जन्म से लेकर उत्तरकांड

की घटनाओं तक का इतना सुन्दर समावेश किया गया है, जिससे पाठक राम के जीवन के क्रमिक विकास का ज्ञान करता हुआ, तथा रस की पूर्ण अनुभूति करता हुआ कथा में तल्लीन हो जाता है। कथा के मनोरम स्थलों को चुन चुनकर उनका आनुपातिक विकास करने की क्षमता महाकवि का प्रथम लक्षण है। काव्य में रमणीयता का समावेश करने का भी यह साधन है। रामजन्म के अवसर पर ही तुलसीदास ने यह प्रकट कर दिया है कि रामचन्द्र पूर्ण परब्रह्म हैं और पृथ्वी के संकटों का अवश्य हरण करेंगे। माता कौशल्या को राम ने अपने ईश्वरत्व के दर्शन कराये हैं। फिर—

'माता पुनि बोली, सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा।
कीजै शिशु लीला, अति प्रिय शीला, यह सुख परम अनूपा॥

रामचरितमानस में राम की कथा का प्रवाह ऐसा किया गया है कि पाठक एक क्षण को भी ऐसे प्रसंगों को नहीं देखता जहाँ कि उसे कथासूत्र टूटा हुआ दिखलाई दे।

भक्त-हृदय तुलसीदास ने उन स्थलों का सम्यक् वर्णन किया है जो राम कथा के महत्वपूर्ण अंग हैं। उन स्थानों पर मुख्य कथा के साथ-साथ तुलसीदास ने लोकनीति, धर्मनीति तथा राजनीति एवं व्यावहारिकता का ऐसा मिश्रण किया है कि वे स्थल विशेष हृदयग्राही, सजीव एवं उपयोगी हो गये हैं। जीवन के व्यापक दृष्टिकोण को लेकर रामचरितमानस की रचना की गई है; कोई भी परिस्थिति ऐसी नहीं है, जिसका उल्लेख राम कथा में न मिले। बालकांड की कथा में रामजन्म से लेकर रामसीता विवाहोपरान्त की घटनायें हैं और इस प्रकार राजा दशरथ और अवधपुरवासियों के सुख की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है, लेकिन अयोध्याकांड में उनके सुख की वह भावना

महाशोक में परिवर्तित होती चली गई है। घटनाओं का ऐसा व्यवधान किया गया है, जो स्वयंमेव एक के बाद एक आती हुई ज्ञात होती हैं। राजा दशरथ रामचन्द्र को युवराज पद प्रदान करना चाहते हैं। कैकयी आदि समस्त रानियों को प्रसन्नता हो रही है, लेकिन नैहर से साथ आई हुई मन्थरा द्रोह वश कैकयी को आसन्न-संकट का संकेत कराती है। तुलसीदास ने इस प्रसंग को भी रखा है कि देवताओं ने कैकयी की मति ऐसी कर दी थी जिससे वह अपने वरदानों को माँगने में स्थिर चित्त हो जावे अन्यथा देवताओं का कार्य पूरा न हो सकेगा। दशरथ की अवस्था का चित्रण तुलसीदास की कोमल लेखनी ने बड़ी कुशलता के साथ किया है। इस प्रकार के प्रसंगों से दशरथ तथा कैकयी के चरित्रों का विकास हुआ है और राम के वनवास का कारण होने पर भी कैकयी क्रूरकर्मा नहीं प्रतीत होती। केशवदास ने न तो वरदान का प्रसंग रखा और न मंथरा की कल्पना। बस—

"यह बात भरत्थ की मातु सुनी।
पठहूँ बन रामहिं बुद्धि गुनी॥"

और :—

"बिभिन्न भारत राम बिराजहीं।"

इन तीन पंक्तियों में केशव ने राम के वनगमन की कथा का वर्णन कर दिया है। इससे कैकयी के चरित्र की विकृति तो हुई ही है, दशरथ के हृदय की मर्मान्तक वेदना और राम वनगमन करते समय अवधपुरवासियों को जो सन्ताप हो रहा है और स्वयं रामचन्द्र के हृदय में उस समय जो भावनाएँ कार्य कर रही हैं वह प्रकट नहीं हो सकी। इस प्रकार "प्राण जाय बरु

वचन न जाहीं" जो रघुवंशियों का स्वभाव सा है, वह केशव ने अंकित ही नहीं किया।

भरत ननिहाल से आने पर श्रीविहीन अयोध्या को देखते हैं। कैकयी के अतिरिक्त और कोई प्रसन्न नहीं है। उस समय माता के मुख से राम वनगमन तथा दशरथ-मरण का दुखद समाचार सुनकर भरत को जो भीषण आत्म-ग्लानि हुई, वह स्वाभाविक ही है। भरत की अनुपस्थिति में उसकी माता ने अपने पुत्र को राज्य और राम को चौदह वर्ष का बनवास माँगा। जनता में इस प्रकार का प्रवाद फैल गया कि इस कुमन्त्रणा में भरत का हाथ अवश्य होगा। स्वयं भरत इस बात को समझ गये थे कि चाहे वे कितने ही निरपराध क्यों न हों लेकिन संसार दोषारोपण किये विना न मानेगा। क्षुब्ध होकर भरत अपनी माँ से कहते हैं कि प्रभु की कृपा से दशरथ जैसे मुझे पिता मिले जिन्होंने पुत्र-वियोग में प्राण देकर अपनी प्रीति की रक्षा की और जन-मनरंजक तथा आज्ञाकारी राम लक्ष्मण से भाई मिले, लेकिन ईश्वर ने तुझ जैसी माता भी दी जिसने न केवल राज परिवार पर किन्तु समस्त अयोध्या नगरी पर भीषण विपत्ति की वर्षा करायी।

"हंस-वंश में जन्म मम, राम लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई, विधि से कहा बसाइ।"

कौशिल्या के पैरों पर गिरकर भरत इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि इस कुमन्त्रणा में मेरा कोई हाथ नहीं है। विशाल-हृदया माता कौशिल्या भरत को समझाती हैं लेकिन फिर भी भरत का हृदय धैर्य नहीं धारण करता। भरत राम को लौटा लाने के लिये पुरवासी तथा माताओं सहित पंचवटी को जाते हैं, मार्ग की अन्य मर्मस्पर्शिनी घटनाओं को व्यंजित करते

हुए तुलसीदास ने राम और भरत का जो वार्तालाप कराया है वह लोकनीति, राजनीति तथा धर्मनीति का उत्कृष्ट नमूना है। भरत लौटने के लिये राम से कहते हैं। लेकिन कथा का मर्मस्पर्शी स्थल उस समय उपस्थित होता है। जब राम भरत पर ही इस निर्णय के भार को छोड़ देते हैं। राम जानते हैं कि धर्मधुरीण भरत लोकमर्यादा के प्रतिकूल विचार प्रकट नहीं कर सकता।

केशवदास ने इस प्रसंग को भी अत्यन्त सूक्ष्मता से वर्णित किया है और गङ्गा से उपदेश कराकर वे भरत को अयोध्या लौट आने का आदेश करा देते हैं। केशवदास चमत्कारवादी थे इसलिये उन्हीं प्रसंगों की उन्होंने अवतारणा की है जहाँ वे वाग्वैदग्ध्य प्रदर्शित कर सकते थे। करुण स्थलों में केशव की प्रवृत्ति को आकर्षण न था, यही कारण है कि रामायण की करुण से करुण घटनाएँ केशव के हृदय को द्रवीभूत न कर सकीं, लेकिन जिन प्रसङ्गों पर केशव उक्ति-वैचित्र्य दिखला सकते थे, वहाँ के प्रसङ्ग साधारण होने पर भी उनका वर्णन विस्तार-पूर्वक किया गया है।

प्रबन्धकार अपनी कृति से पाठक को भी उसी भावना से अभिभूत करा देता है, जिससे प्रेरित होकर कि उसने रचना की है। केशवदास के कारुणिक स्थल पाठक के हृदय में करुणा की भावना का उद्रेक नहीं करा पाते। यही नहीं, घटना-परिवर्तन इतनी शीघ्रता से 'रामचन्द्रिका' में कराया गया है कि पाठक एक प्रसङ्ग में रम ही नहीं पाता कि दूसरा प्रसंग आ जाता है।

तुलसीदास ने अवधी भाषा में तथा दोहे चौपाई की पद्धति पर रचना की। दोहा, चौपाई अवधी भाषा के प्रिय छन्द हैं और उनके प्रयोग की सफलता का प्रदर्शन प्रेमाख्यानक कवि कर

चुके थे। अवधेश जिनके चरित्र का गुणगान तुलसी को करना था वे भी अवध के निवासी थे इसलिये अवधी को तुलसी ने काव्य-भाषा बनाया, जिस प्रकार कृष्ण कवि व्रजभाषा में कृष्ण का चरित्र अंकित कर रहे थे। प्रबन्ध काव्य के लिये जिस छन्द का प्रयोग तुलसी ने किया, वह सर्वथा समीचीन है, क्योंकि एक छन्द को लेकर एक कांड की रचना करना ही प्रबन्ध काव्य के लिये नियमानुकूल है, तथा रसोद्रेक की दृष्टि से भी आवश्यक है। केशवदास के जल्दी-जल्दी बदलते हुए छन्द रसानुभूति में बाधा पहुँचाते हैं।

अलंकार

कविता-कामिनी के सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिये अलंकार योजना ठीक ही है। लेकिन काव्य की रमणीयता की वृद्धि के लिये अलंकार साधन हैं, साध्य नहीं। अलंकारों का यदि अत्यधिक प्रयोग किया जावेगा अथवा अलंकारों का समावेश करने के लिये ही यदि रचना की जावेगी तो कविता रूपी-वनिता अलंकारों के भार से दब जायगी। तुलसीदास भक्त कवि थे। यदि उन्हें कुछ प्रिय था तो राम-गुण वर्णन। काव्य रचना भी किसी को प्रसन्न करने या साधुवाद लेने की इच्छा से न करके अपनी आत्मा के परितोष के लिये ही की है। अतः उनकी रचना में सरलता, स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता तथा आकर्षण है। विविध अलंकारों का सहसा दर्शन हमें तुलसीदास की कृतियों में होता है, लेकिन कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इन अलंकारों को समाविष्ट करने में तुलसी को कोई प्रयत्न करना पड़ा हो।

अलंकार यदि साधन से साध्य बना दिये जायें और रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, निदर्शना आदि एक के पश्चात् दूसरे अलंकार

का प्रयोग यदि प्रवन्ध काव्य में कर दिया जावेगा तो इस बुद्धि व्यायाम से पाठक शीघ्र ही ऊबने लगेगा और उसे न तो कथा प्रसंग की अनुभूति होगी और न वह रसास्वादन ही कर सकेगा। केशव ने जिस परम्परा का प्रचलन किया उसमें 'भूपण विनु न विराजहीं, कविता वनिता मित्र' ही उनका मूल सिद्धान्त है। वस कविता अलंकारों के लिये ही की जाने लगी। राज-परिवार में रहने के कारण केशव की रुचि वनाव, शृङ्गार की ओर थी तथा कविता भी आश्रय प्रदान करने वालों के मन-वहलाव के लिये की जाती थी अतः उसमें आत्म-परितोप के स्थान पर अन्य परितोप की ही भावना थी। केशवदास अपनी चमत्कृत उक्तियों से औरों को प्रसन्न करना चाहते थे। यही कारण है कि उनकी रामचन्द्रिका अलंकार-मंजूपा वनी।

काव्य की आत्मा 'रस' है। कोई भी प्रसंग ऐसा न आना चाहिये जिससे रसानुभूति में वाधा पहुँचे। अलंकार तो काव्य के वाह्य-रूप हैं। यदि अलंकारों का ही निरूपण किया जायेगा तो यह काव्य निष्प्राण होगा, हृदय वहाँ न होगा।

जहाँ तक अलंकार ज्ञान का प्रश्न है वहाँ तक हम यह कह सकते हैं कि तुलसी अलंकार शास्त्र के पंडित थे। संस्कृत के प्रकांड विद्वान् तथा 'नाना पुराण निगमागम' का उन्होंने अध्ययन किया था। संस्कृत में भी तुलसी ने रचना की है, लेकिन अपने इस ज्ञान वाहुल्य को तुलसी ने रचना में वलपूर्वक प्रदर्शित करने की चेष्टा नहीं की। जहाँ जैसा प्रसङ्ग आया वहाँ अत्यन्त सन्तुलित रूप से प्रत्येक वस्तु रखी गई है। इसके विपरीत केशवदास ने प्रतिकूल स्थलों पर भी निरन्तर अलंकारों का प्रयोग किया है जिससे स्वाभाविक सरसता का प्रस्फुटन नहीं हो सका।

रस

साहित्य दर्पणकार ने प्रबन्ध-काव्य में शृङ्गार, वीर और शान्त रस का प्राधान्य होना आवश्यक बतलाया है। इसी सिद्धान्त के अनुसार महाकाव्यकारों ने इन्हीं ४ रसों की प्रमुखता काव्यों में रक्खी। अन्य रसों का समावेश गौणरूप से ही हुआ है। तुलसीदास ने इसी व्यापक सिद्धान्त का पालन रामचरित मानस में किया है। तुलसीदास ने प्रत्येक शब्द का प्रयोग बहुत सोच-विचार करके किया है। भाषा के ऊपर गोस्वामी जी का अपरिमित अधिकार था। रस और परिस्थिति के अनुरूप भाषा का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। 'रामचरित मानस' में करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है। तुलसीदास ने रामचरित के करुण स्थलों के ऊपर विशेष दृष्टि रक्खी है। रामवनगमन, दशरथ मरण, सीताहरण, लक्ष्मण के शक्ति का लगना आदि रामायण के करुण स्थल हैं। जिन महानुभावों ने रामचरित मानस का स्वयं अध्ययन किया है, उन्हें विदित कि इन स्थलों पर शोक एवं विषाद की भावनाओं का ऐसा उद्रेक हुआ है कि पाठक का हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रहता। राम के वनगमन का दुःख राजपरिवार को ही नहीं है, प्रत्युत सभी अयोध्यावासियों और पशु-पक्षियों तक को है राम-वनगमन का शोक 'रामचरित मानस' में सर्वभूतात्मक है। इन परिस्थितियों में तुलसी ने धर्म और कर्तव्य की महान भूमियों का सम्यक विवेचन किया है। गोस्वामी जी ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से इन प्रसङ्गों में ज्ञान, धर्म, दर्शन एवं नीति का सांगोपांग विवेचन किया है। केशवदास की प्रवृत्ति पांडित्य प्रदर्शन की ओर थी। इन करुण स्थलों पर चमत्कार प्रदर्शन के लिये स्थल नहीं था इसीलिए इन कारुणिक स्थलों को केशव ने अल्परूप में

प्रकट किया है और उनमें भी केशव की प्रवृत्ति चमत्कार-प्रदर्शन की ओर ही रही इसलिये करुण रस का पूर्ण परिपाक केशव की रचना में नहीं हुआ है। वस्त्र रहित मन्दोदरी के संकट की ओर कवि का ध्यान नहीं जाता और वह उसके अंग-प्रत्यङ्ग के शृङ्गारिक वर्णन में प्रवृत्त हो जाता है। इस प्रकार करुण रस के अंकन में केशव की रुचि न थी।

रीतिकालीन कवियों ने शृङ्गार को रसराज कहा है। इस परम्परा के प्रवर्त्तक तथा प्रथम आचार्य केशव थे। कविप्रिया तथा रसिकप्रिया में तो शृंगारिक रचनाएँ ही हैं और वहाँ शृङ्गार का आदर्श भी अत्यन्त नीचा है।

'आजु याहौं हँसि खेल बोलि चालि लेहु लाल,
काल्हि एक बाल ल्याऊँ काम की कुमारी सी।'

रामचन्द्रिका में भी केशव ने शृङ्गारिक वर्णनों की प्रधानता रक्खी है। सीता के सौंदर्य, उसकी सखियों का नख-शिख वर्णन और मन्दोदरी का रूप वर्णन किया है। शृंगारिक वर्णन में केशव ने इस औचित्य पर ध्यान नहीं दिया कि गुणी जनों के सौंदर्य का वर्णन श्रद्धालु को करना चाहिये अथवा नहीं। सीता जी भी रीतिकालीन नायिका के समान भ्रू-विक्षेप करती हैं। 'चंचल चारु दृगंचल" से राम के हृदय को प्रसन्न करती हैं। रामचरित मानस में दो स्थलों पर गोस्वामी जी शृङ्गार रस का समावेश कर सकते थे (१) महादेव-पार्वती विवाह में पार्वती का। (२) पुष्पवाटिका में सीता जी का। लेकिन इन दोनों स्थलों पर मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखने वाले तुलसीदास शृंगार को बचा गये हैं। पार्वती के लिये तुलसीदास कहते हैं—

जगत मातु पितु शंभु भवानी।
तेहि शृङ्गार न कहौं बखानी॥

सीता के सौन्दर्य को तुलसीदास जी सृष्टि में अद्वितीय बतलाते हैं। इस शैली के प्रयोग से शृंगारिक भावनाओं को तुलसी ने प्रकट नहीं किया है। अपने गुरुजनों का शृंगारिक वर्णन उचित भी तो नहीं है। रामचरित मानस में जहाँ भी शृंगार का वर्णन आया है वहाँ मर्यादा का पालन किया गया है, उच्छृङ्खलता कहीं भी नहीं आने पायी है।

राम असाधारण वीर हैं। उन्होंने अपने प्रबल पराक्रम से बालि को मारा तथा रावण का सकुल नाश किया। राम में हम दानवीर, दयावीर, धर्मवीर तथा युद्धवीर के समस्त गुणों को देखते हैं। वीर रस का वर्णन लंकाकांड में प्रधान है वहाँ ओज गुण प्रधान वाक्यों का प्रयोग किया गया है। वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति में युद्ध की भयंकरता वर्णित है। केशव ने वीर रस के स्थलों को अच्छाई से निभाया है। लवकुश युद्ध, राम-रावण युद्ध में वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है केशव की ओजपूर्ण भाषा वीर रस के लिये बहुत उपयुक्त प्रमाणित हुई है।

तुलसीदास जी ने कथा की क्रमबद्धता पर ध्यान रख कर रसों के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग किया है। उसी कवि की रचना सफल है जो पाठकों के हृदय में भी उस भावना की अनुभूति करा दे जिससे प्रेरित होकर उसने रचना की है। इस गुण की प्रधानता हमें केशव की अपेक्षा तुलसी में अधिक दृष्टि-गोचर होती है।

प्रकृति वर्णन

संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि ने शरद, वर्षा आदि

ऋतुओं का स्वतन्त्र वर्णन किया है लेकिन रामचरित काव्यकारों ने वाल्मीकि की कथा को आधार मान लेने पर भी प्रकृति के चित्रण में उस मनोवृत्ति का परिचय नहीं दिया। हिन्दी के कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन के रूप ही में लिया। आलंबन के सौन्दर्य के उत्कृष्ट वर्णन में करोड़ों कामदेव न्यौछावर किये जाने लगे। 'कंज सकोच दहे जल वीचहि।' प्रवन्ध काव्य के कथानक की क्रमबद्धता बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें कोई अन्य प्रसंग ऐसा न आ जाना चाहिये जिसका कि ऐसा प्राधान्य हो जावे जिससे मुख्य-कथा दब जाय। प्रकृति का स्वतन्त्र्य वर्णन यदि वह अति विस्तार से किया जावे तो कथा की क्रमबद्धता में आघात पहुँचा सकता है। तुलसीदास जी ने वस्तु-परिगणन शैली पर ही प्रकृति का वर्णन किया है। प्रकृति को कवि मानव सापेक्ष्य मानता है। प्रकृति में घटित होने वाली भिन्न-भिन्न घटनाओं से गोस्वामी जी ने अपनी प्रतिभा बल से मनुष्य के स्वभाव व परिस्थितियों का तादात्म्य प्रकट किया है। प्रकृति-वर्णन रामचरित मानस में है अवश्य लेकिन वह गौण रूप से ही है। एक तो उस समय में प्रकृति के स्वच्छन्द वर्णन की परिपाटी ही न थी दूसरी प्रबन्ध-रचना पटु तुलसी को यह भय था कि यदि प्रकृति वर्णन को प्राधान्य दिया जावेगा तो कथावस्तु का सूत्र ढीला पड़ जायगा। इसीलिये उन्होंने प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण नहीं किया है। केशवदास जी ने कुछ स्थलों पर प्रकृति का अच्छा वर्णन किया है लेकिन उनकी अनूठी उक्तियों के साथ कहीं-कहीं घृणोत्पादक उक्तियों का समावेश हो गया है जिससे पाठक का मन क्षुब्ध हो जाता है और वह सुन्दर उक्ति का भी आनन्द नहीं ले पाता। सूर्य को कापालिक का रक्त भरा खप्पर कहना घृणोत्पादक ही है। वर्षा केशव को कालिका के रूप के समान लगती है।

'कालिका कि बरखा हरखि हिय आई है।' कमल और चन्द्र भी केशव के लिये निरर्थक हैं।

देखे मुख भावे अनदेखेहि कमल चन्द,
तासे मुख मुखै कमलो न चन्द री।'

तुलसीदास जी ने स्थल की उपयुक्तता को ध्यान में रखकर प्रकृति के पदार्थों का वर्णन किया है। केशवदास ने विश्वामित्र के तपोवन वर्णन में 'एला ललित लवंग' के वृक्ष लगा दिये हैं जो वहाँ नहीं उगते। नदियों का वर्णन भी केशव ने किया लेकिन विरोधाभास की ही योजना वहाँ की गई है।

विषमय यह गोदावरी, अमृतन वे फल देत।
केशव जीवनहार वे दुख अशेष हर लेत॥

नियमानुसार केशव ने प्रकृति के पदार्थों का वर्णन तो किया है, लेकिन आलंकारिक योजना के कारण तथा भौगोलिक त्रुटियों के कारण उन वर्णनों में सजीवता नहीं आने पाई है। तुलसीदास जी ने भी प्रकृति के प्रति विशेष रुचि नहीं दिखलाई। प्रबन्ध काव्य में प्रकृति वर्णन के लिये उतना उपयुक्त स्थल ही नहीं है। मुक्तक काव्य में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र खींचना समीचीन है।

सम्वाद

यद्यपि कथोपकथन का महत्व नाटकों में ही है, लेकिन यदि उपयुक्त स्थानों पर उनका समावेश प्रबन्ध काव्य में भी किया जावे तो चरित्र-चित्रणों में अच्छी सहायता मिलती है। रचनाकार अपनी ओर से वर्णनात्मक शैली में चाहे जितना कहे लेकिन पात्र के चरित्र का विकास उतना नहीं होता जितना कि पारस्परिक कथोपकथन से। भरत राम-वनगमन की घटना में अपने को

निरपराध सिद्ध करने के लिये वार-वार शपथ करते हैं कि यदि इस अप्रिय घटना का ज्ञान मुझे हो तो—

लोभी लम्पट लोल लबारा । जे ताकहिं परधन परदारा ॥
पाऊँ मैं तिनकी गति घोरा । जो जननी यह सम्मत मोरा ॥

लेकिन जब माता कौशिल्या यह कहती हैं कि हे पुत्र ! तुम बान्धव प्रेम के अग्रणी हो और ऐसी निंद्य घटनाओं में तुम सहयोग नहीं दे सकते, तो भरत का चारित्रिक विकास पूर्णता से होता है। मानव स्वभाव ही ऐसा है कि जब हम किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा वर्णन सुनते हैं, उसी समय हमारे हृदय पर उसका प्रभाव पड़ता है।

रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने मुख्यतः चार सम्वाद रक्खे हैं। लक्ष्मण-परशुराम संवाद, दशरथ-कैकयी संवाद, राम और भरत सम्वाद तथा अंगद और रावण सम्वाद। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे सम्वाद तो कथा-प्रसंग में कितने ही स्थलों पर आये हैं, जैसे भरत और निषादराज सम्वाद, रावण विभीषण सम्वाद, राम-बालि सम्वाद आदि। उपर्युक्त चार सम्वादों ने रामचरित मानस को एक लोक पथप्रदर्शक तथा कल्याणकारी ग्रंथ बना दिया है। इन स्थलों में तुलसी ने सर्वतोमुखी प्रतिभा से जीवन की विविध परिस्थितियों का विशेष विवेचन किया है तथा दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते हुए लोकनीति, धर्मनीति तथा राजनीति की संस्थापना की है। धर्म की ऊँची-नीची जितनी भूमि हो सकती है उन सबका प्रदर्शन करते हुए तुलसीदास ने अपने प्रतिभा-बल से उस मार्ग का उद्घाटन किया है जिसका शील तथा मर्यादावान व्यक्ति को अनुसरण करना चाहिये। लक्ष्मण-परशुराम संवाद तथा अंगद-रावण सम्वाद में आपस में चुभने वाली बातों का वर्णन

'कालिका कि बरखा हरखि हिय आई है।' कमल और चन्द्र भी केशव के लिये निरर्थक हैं।

देखे मुख भावे अनेदेखेहि कमल चन्द,
तासे मुख मुखै कमलो न चन्द री।'

तुलसीदास जी ने स्थल की उपयुक्तता को ध्यान में रखकर प्रकृति के पदार्थों का वर्णन किया है। केशवदास ने विश्वामित्र के तपोवन वर्णन में 'एला ललित लवंग' के वृक्ष लगा दिये हैं जो वहाँ नहीं उगते। नदियों का वर्णन भी केशव ने किया लेकिन विरोधाभास की ही योजना वहाँ की गई है।

विषमय यह गोदावरी, अमृतन वे फल देत।
केशव जीवनहार वे दुख अशेष हर लेत॥

नियमानुसार केशव ने प्रकृति के पदार्थों का वर्णन तो किया है, लेकिन आलंकारिक योजना के कारण तथा भौगोलिक त्रुटियों के कारण उन वर्णनों में सजीवता नहीं आने पाई है। तुलसीदास जी ने भी प्रकृति के प्रति विशेष रुचि नहीं दिखलाई। प्रवन्ध काव्य में प्रकृति वर्णन के लिये उतना उपयुक्त स्थल ही नहीं है। मुक्तक काव्य में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र खींचना समीचीन है।

सम्वाद

यद्यपि कथोपकथन का महत्व नाटकों में ही है, लेकिन यदि उपयुक्त स्थानों पर उनका समावेश प्रवन्ध काव्य में भी किया जावे तो चरित्र-चित्रणों में अच्छी सहायता मिलती है। रचना-कार अपनी ओर से वर्णनात्मक शैली में चाहे जितना कहे लेकिन पात्र के चरित्र का विकास उतना नहीं होता जितना कि पारस्परिक कथोपकथन से। भरत राम-वनगमन की घटना में अपने को

निरपराध सिद्ध करने के लिये बार-बार शपथ करते हैं कि यदि इस अप्रिय घटना का ज्ञान मुझे हो तो—

> लोभी लम्पट लोल लबारा। जे ताकहिं परधन परदारा॥
> पाऊँ मैं तिनकी गति घोरा। जो जननी यह सम्मत मोरा॥

लेकिन जब माता कौशिल्या यह कहती हैं कि हे पुत्र! तुम बान्धव प्रेम के अग्रणी हो और ऐसी निंद्य घटनाओं में तुम सहयोग नहीं दे सकते, तो भरत का चारित्रिक विकास पूर्णता से होता है। मानव स्वभाव ही ऐसा है कि जब हम किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा वर्णन सुनते हैं, उसी समय हमारे हृदय पर उसका प्रभाव पड़ता है।

रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने मुख्यतः चार सम्वाद रक्खे हैं। लक्ष्मण-परशुराम संवाद, दशरथ-कैकयी संवाद, राम और भरत सम्वाद तथा अंगद और रावण सम्वाद। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे सम्वाद तो कथा-प्रसंग में कितने ही स्थलों पर आये हैं, जैसे भरत और निषादराज सम्वाद, रावण विभीषण सम्वाद, राम-बालि सम्वाद आदि। उपर्युक्त चार सम्वादों ने रामचरित मानस को एक लोक पथप्रदर्शक तथा कल्याणकारी ग्रंथ बना दिया है। इन स्थलों में तुलसी ने सर्वतोमुखी प्रतिभा से जीवन की विविध परिस्थितियों का विशेष विवेचन किया है तथा दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते हुए लोकनीति, धर्मनीति तथा राजनीति की संस्थापना की है। धर्म की ऊँची-नीची जितनी भूमि हो सकती है उन सबका प्रदर्शन करते हुए तुलसीदास ने अपने प्रतिभा-बल से उस मार्ग का उद्घाटन किया है जिसका शील तथा मर्यादावान व्यक्ति को अनुसरण करना चाहिये। लक्ष्मण-परशुराम संवाद तथा अंगद-रावण सम्वाद में आपस में चुभने वाली बातों का वर्णन

करके तुलसी ने पात्रों में क्रोध का संचार कराया है तथा दशरथ-कैकयी सम्वाद में करुण रस ही मूर्तिमान बनकर आ गया है।

तुलसीदास जी राम के भक्त थे, उन्होंने पात्रों की शील तथा मर्यादा का सर्वत्र ध्यान रखा है, किन्तु जहाँ पात्र राम विरोधी हैं वहाँ कवि ने इस पर विचार नहीं किया। अंगद राजदरबार में रावण को "हैं तव दसन तोरिवे लायक' कहता है, यह उक्ति दूत के मुख से कहलाना उचित नहीं है। केशवदास ने सम्वादों की योजना उन्हीं स्थलों पर की है जहाँ वे उक्ति-वैचित्र्य एवं चमत्कारपूर्ण वर्णन कर सकते थे। रामचन्द्रिका के संवादों में पात्र अधिक सजीवता एवं चंचलता लिये हुए हैं। केशवदास ने ज़िन जिन स्थलों पर सम्वाद रखे हैं वहाँ उन्हें निस्संदेह सफलता मिली है। भक्त-हृदय तुलसी के सम्वादों में हम शान्त रस की ही प्रधानता पाते हैं।

तुलसीदास एवं केशव के व्यक्तित्व की अमिट छाप उनके काव्यों में अन्तर्निहित है। गोस्वामी जी ने भक्ति-भावना के प्राकट्य के लिये कविता को माध्यम बनाया। वे भक्त पहिले हैं, कवि बाद में। भक्ति-भाव उनका ध्येय और साध्य है और कविता उसका साधन मात्र ही है। इसके विपरीत केशव-दास जी प्रधानतया कवि और पंडित थे और भक्त गौण रूप से। राजघरानों से संबंध होने के कारण उनके वर्णनों में ऐश्वर्य की मात्रा अधिक है। केशवदास जी की काव्य-रचना में कलापक्ष की ही प्रधानता है। हृदय पक्ष गौण है। सूर और तुलसी ने जिस प्रकार अपने हृदय को खोलकर कविता में प्रकट किया है, जो भावुकता तथा तल्लीनता हम इन कवियों की रचना में प्राप्त करते हैं वह चमत्कारवादी केशव के काव्य में दिखलाई

नहीं देती, केशव में न तो तुलसीदास जी के समान भावुकता है और न उनकी भाँति प्रकृति के अन्तर और बाह्य-चित्रण में ही सफल हुए हैं। तुलसी के भक्त-हृदय से भक्ति की जो पावन-धारा प्रवाहित हुई उसने नगर और ग्राम की भारतीय जनता के हृदयों को समानरूप से घोपित किया है। रामचरितमानस का हिन्दू घरों में वही सम्मान एवं स्थान है जो प्राचीन धार्मिक ग्रंथों को है। केशवदास अपनी क्लिष्टता के कारण जनसाधारण के हृदय को आकर्पित न कर सके। उनके काव्य में हृदय पक्ष की कमी है, कोमल भावना का अभाव है तथा जीवन से संबंध रखने वाली उन परिस्थितियों का समावेश नहीं है जो पाठक के हृदय को तल्लीन तथा रसमग्न करती है। केशव तथा तुलसी की सैद्धान्तिक पृथकता के कारण ही उनके राम-काव्य में अन्तर उपस्थित हुआ है। तुलसी नर काव्य के पूर्ण विरोधी थे।

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछताना॥

उसके विपरीत केशव तात्कालिक राजाओं के अतिरंजित वर्णनों से ही अपने वैभव की वृद्धि कर रहे थे। वेश्याओं के सौन्दर्य से अभिभूत तथा आकृष्ट होकर केशव उन्हें 'रमा' और 'वीणा-पुस्तक-धारिणी' के समान समझते हैं।

केशवदास जी प्रतिभावान थे और उनकी कल्पना शक्ति भी अत्यन्त तीव्र थी। रस के अनुकूल भापा तथा छन्दों के प्रयोग में उन्होंने रस-ज्ञान का पाण्डित्यपूर्ण परिचय दिया है। उनके काव्य में कुछ विशिष्ट गुण ऐसे हैं, जो हमें हिन्दी के अन्य कवियों में दृष्टिगोचर नहीं होते।

आलोचना में भावुकता का समावेश हानिकर ही है। केवल सूक्ष्म उक्ति द्वारा किसी व्यक्ति के ज्ञान, भावना तथा गुणों का

प्रदर्शन होना असंभव ही है। संस्कृत की आलोचना संबंधी प्राचीन परिपाटी का अनुकरण हिन्दी में भी किया गया था। किसी कवि ने अनुप्रास के लोभ में आकर ही यह दोहा लिखा है :—

'सूर सूर तुलसी शशी, उडुगन केशवदास।'

यदि इस पंक्ति में उल्लिखित प्रत्येक कवि के बतलाये हुए गुण का आरोप हम उनकी रचनाओं पर करें तो हमें यह उक्ति यथार्थ प्रतीत न होगी। महाकवि सूरदास को काव्य का 'सूर' माना गया है। 'सूर्य' की प्रखर रश्मियों से प्रकट होने वाली भीषण गर्मी असह्य हो जाती है। इसके विपरीत कृष्ण के जीवन की माधुर्यपूर्ण भावनाओं को लेकर ब्रजभाषा की कोमल कान्त पदावलि में जिन पदों की रचना सूर ने की है वे हृदय को शीतलता तथा सान्त्वना प्रदान करते हैं। यह निस्संदेह है कि सूर के पदों में जो कोमलता, सरलता तथा माधुर्य है वह तुलसी के गीत-काव्य में भी नहीं है। फिर भी सूरदास को सूर्य तथा तुलसी को 'शशि' कहना इन कवियों की कृतियों से अनभिज्ञ होने का परिचय देना है। वास्तव में महाकवि सूरदास, तुलसीदास तथा केशवदास अपने-अपने क्षेत्रों में विभिन्न व्यक्तित्व रखते हैं।

—:०:—

१५

केशव और जायसी की प्रबन्ध-कल्पना

भक्ति तथा रीति काल के लगभग चार सौ वर्षों में निर्माण किए गये साहित्य का पर्यवेक्षण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन दोनों युगों में जो रचनाएँ हुईं वे अधिकतर मुक्तक की कोटि में ही रक्खी जा सकती हैं। हृदय की किसी एक सुकुमार अनुभूति की ही अथवा जीवन के केवल एक पक्ष का ही चित्रण कवियों ने अपने काव्यों में किया है। इस युग के प्रमुख प्रबन्धकार केवल तीन ही कवि हैं। १. जायसी, २. गोस्वामी तुलसीदास ३. केशवदास। राम के जीवन को अपने काव्य का विषय बनाकर गोस्वामी जी तथा केशवदास ने क्रमशः रामचरित मानस तथा रामचन्द्रिका प्रबन्ध-काव्यों की रचना की, अतः विषय एवं शैली की दृष्टि से इन दो महाकवियों की तुलनात्मक आलोचना किया जाना समीचीन है।

प्रेमाख्यानक सूफी कवियों ने हिन्दुओं के घर की कहानियों को लेकर उसमें अपने सिद्धान्तों का मधुर सम्मिश्रण करके जो रचनाएँ कीं, वे इस बात की परिचायका हैं कि एक ही माननीय तत्व हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के हृदय के भीतर समानरूप से विद्यमान है। सूफी कवियों ने प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति अत्यन्त सहृदयतापूर्वक अपने आख्यानों में की है। प्रेमाख्यान काव्य के रचयिताओं में मलिक मुहम्मद जायसी का स्थान अग्रगण्य है। पद्मावत प्रबन्ध काव्य है और इसी आधार पर केशव और जायसी के प्रबन्धकत्व की तुलना की जा सकती है।

केशवदास ने चिरपरम्परा से प्रचलित राम-गाथा को अपने काव्य का विषय माना तथा कथावस्तु के वर्णन में उन्होंने वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक तथा प्रसन्नराघव नाटकों से तथा संस्कृत के अन्य कवियों से पर्याप्त सहायता ग्रहण की है।

पद्मावत की कथा को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। इसका पूर्वार्द्ध भाग कल्पित है तथा उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक। कथावस्तु की मौलिकता का जहाँ तक प्रश्न है वहाँ हमें जायसी के ग्रंथ की ही प्रशंसा करनी पड़ती है।

प्रबन्ध-काव्य के लिये एक उद्देश्य का होना आवश्यक है। कुछ कवि तो इसमें एक आदर्श पद्धति का पालन करते हैं और एक निर्दिष्ट उद्देश्य की ओर काव्य की धारा को प्रवाहित करते हैं और दूसरे कवि घटनाओं को स्वाभाविक रूप से विकसित होने देते हैं, आदर्श परिणाम की ओर काव्य को नहीं ले जाते। आदर्शपद्धति वह है जिसमें भले को भला और बुरे को बुरा प्रकट किया जाय। इस पद्धति के अनुसरण में सद्गुणी का जीवन सुखमय तथा दुराचारी का जीवन दुःखमय अंकित किया जावेगा। लेकिन संसार में कभी कभी इसके विपरीत दृश्य दिखलाई देते हैं। पद्मावत में आदर्श पद्धति की ओर कोई लक्ष्य नहीं है। राघव चेतन का कोई भी बुरा परिणाम नहीं प्रकट किया गया। भारतीय-परम्परा के अनुसार काव्य सुखान्त होना चाहिये। दुःखान्त की सृष्टि भारतीय सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। पद्मावत की कथा दुःखान्त है। नायक रत्नसेन की मृत्यु के पश्चात् उसकी दोनों रानियाँ नागमती एवं पद्मावती सती हो जाती हैं, पर काव्य के उपसंहार में कवि ने शान्त रस की योजना की है; इससे हम यह संकेत ले सकते हैं कि कवि जीवन की अन्तिम परिणति दुःख में नहीं देखता। हाहाकार की

अन्तिम परिणति चरमशान्ति में है। रत्नसेन की मृत्यु पर नागमती तथा पद्मावती शोक प्रकट नहीं करतीं परन्तु शान्तरूप से परलोक की मंगल कामना करते हुए चितारोहण करती हैं। इसका प्रभाव अलाउद्दीन पर भी पड़ा।

'छार उठाइ लीन्ह इक मूठी।
दीन्ह उठाइ पिरथिवी झूठी॥'

रामचन्द्रिका भारतीय काव्य-प्रणाली के अनुसार लिखी गई है और पद्मावत में फारसी तथा भारतीय दोनो पद्धतियों का सम्मिश्रण पाते हैं। पद्मावत का प्रारम्भ भी भारतीय काव्यों के अनुसार न होकर मसनवी पद्धति पर हुआ है।

प्रबन्ध काव्य में घटनाओं की योजना शृङ्खलाबद्ध होनी चाहिये उसमें भावुकता उत्पन्न करने वाले रसात्मक प्रसंग बीच-बीच में आने चाहिये। जो भावुक कवि जीवन की जितनी व्यापक परिस्थितियों का अनुभव कर सकता है वही सफल प्रबन्धकार है। प्रबन्धकार को इतिवृत्त के सहारे भावात्मक स्थलों की योजना करनी पड़ती है। पद्मावत में इतिवृत्तात्मक अंश थोड़ा ही है, पर जायसी ने भावुकता के सहारे बीच-बीच में पात्रों की भाव-भंगिमा पर ध्यान दिया है। यह कहानी रसात्मक कोटि की है। बीच-बीच में ऐसी घटनाएँ हैं। जिनमें भावों का स्फुरण हुआ है। प्रेम, वियोग, माता की ममता आनन्दोत्सव के साथ छल, वीरता, पातिव्रत धर्म आदि का भी समावेश है। जायसी का मुख्य लक्ष्य प्रेम-पथ का निरूपण है।

रामचन्द्रिका में केशव की चमत्कार एवं अलंकारप्रियता का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है, परन्तु उसमें ऐसे स्थलों का अभाव है जहाँ कवि ने हृदय के भावों को स्वतन्त्रता के साथ अंकित किया

हो। चमत्कृत वर्णमैत्री तथा अलंकार-योजना केशव के हृदय को अत्यधिक प्रभावित किये हुए थी और फलतः रामचन्द्रिका में हृदय पक्ष गौण ही रह गया।

पद्मावत को स्वयं जायसी ने एक अन्योक्ति माना है। इसका तात्पर्य यह है कि पद्मावत के कथानक में प्रच्छन्न रूप से एक दूसरी कथा भी प्रवाहित है, जो रहस्यात्मक रूप से मुख्य कथानक का आरोप ईश्वर पक्ष में करती है। प्रवन्धकार अपनी रचना में ऐसे एक भी स्थल को स्थान न देगा जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध कथानक से नहीं। आद्योपान्त अन्योक्ति की योजना प्रवन्ध कला की दृष्टि से ही अनुपयुक्त न होती अपितु वह पद्मावत को एक क्लिष्ट काव्य तथा गूढ़ पहेली बना देती। पद्मावत में रहस्यात्मक संकेत सर्वत्र नहीं है। कहीं-कहीं श्लेष के द्वारा कवि ने अपने प्रतिभा-बल से मुख्य वस्तु वर्णन को परोक्ष के ऊपर घटाया है। रहस्यात्मक संकेतों में भी कथासूत्र नहीं छूटने पाया है। उन स्थलों का वर्णन मुख्य रूप से तो कथा प्रवाह के लिये ही है। पद्मावत में अत्यन्त सरसता के साथ कथा की क्रमवद्धता की ओर ध्यान दिया गया है।

रामचन्द्रिका में मुख्यतः वे ही स्थल पूर्णता के साथ प्रदर्शित किए गये हैं जहाँ उक्ति-वैचित्र्य का समावेश किया जा सकता है। कवि ने घटनाओं को इतनी शीघ्रता के साथ परिवर्तित किया है कि पाठक एक दृश्य में मग्न ही नहीं होने पाता कि दूसरा दृश्य आ जाता है। रामकथा की करुण एवं भावुक घटनाओं की ओर कवि उदासीन है। जायसी का दृष्टिकोण केवल प्रेम की अभिव्यंजना में ही तल्लीन होने के कारण संकुचित तो है पर प्रेम की पीर को इतनी तीव्रता एवं व्यापकता के साथ कवि ने वर्णित किया है कि उसका प्रभाव पड़े विना नहीं रह सकता।

करुण स्थलों की उक्तियाँ पद्मावत में इतनी स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शिनी हैं कि सहसा ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। राम की कथा में मनुष्य जीवन के व्यापक दृष्टिकोण को रखने का सुयोग है, लेकिन कलापक्ष ही में केशव की बुद्धि उलझती रही, यहाँ कवि ने न तो प्रबन्ध की क्रमबद्धता की ओर ध्यान दिया है और न भावोद्रेक करने वाले प्रसंगों की ओर। रामचन्द्रिका में राम कथा का सम्यक निर्वाह नहीं किया गया है। स्थान-स्थान पर कथासूत्र ढीला पड़ गया है शायद केशव दास ने यह समझकर कि रामकथा के लिये तो वाल्मीकि रामायण हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव नाटक आदि ग्रंथ हैं ही, इसलिये रामचन्द्रिका में केवल चमत्कृत एवं पाण्डित्यपूर्ण स्थलों को समाविष्ट करने का ही लक्ष्य बनाया हो।

प्रबन्ध काव्यों में छन्दों का परिवर्त्तन अधिक न होना चाहिये, अन्यथा कथा की रसानुभूति तथा एकता में व्याघात पहुँचने की संभावना है। एक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग किया जाना चाहिये केवल सर्गान्त में भिन्न छन्द रखा जा सकता है। रामचन्द्रिका में केशवदास जी ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है। एकाक्षरी से लेकर अष्टाक्षरी छन्दों तक के छन्द रामचन्द्रिका में प्रयुक्त हुए हैं और पग पग पर इन छन्दों में परिवर्तन किया गया है, जिससे पाठक कथा के प्रवाह की अनुभूति नहीं कर पाता है, और बार बार बदलते हुए छन्दों के चमत्कार में ही पड़ जाता है। प्रबन्ध की धारा अवरुद्ध ही है।

प्रबन्ध की एकता पर विचार करते समय जायसी में कुछ विराम अवश्य मिलते हैं जैसे तोता खरीदने वाले ब्राह्मण का वृत्तान्त, राघव चेतन, बाघ का प्रसंग। माध्यमिक काल के कवि अपनी बहुज्ञता प्रकट करने के लिये किसी विषय का अति

विस्तार से वर्णन करते थे। जायसी ने भी कहीं-कहीं ऐसी वहुज्ञता प्रकट की है ; जैसे सिंहल द्वीप के वर्णन में फल फूलों के नाम, भिन्न-भिन्न घोड़ों के प्रकार, तथा विवाहादि के अवसरों पर पकवानों की सूची। लेकिन पद्मावत में कथा-प्रवाह केशव दास की भाँति कहीं भी खंडित नहीं है, वह शृंखलाबद्ध है। अपनी काव्य-रचना के लिये केवल दोहे चौपाई छन्द को ही जायसी ने चुना है। प्रबन्ध-रचना में अवधी भाषा में दोहे चौपाइयों का रचना की इतनी उत्कृष्टता प्रमाणित हुई कि आगे गोस्वामी जी ने भी रामचरित मानस की रचना के लिये इसी छन्द को अपनाया। जायसी ने अपने हृदय की कोमलता को अपने हृदय की सुकुमार मनोवृत्तियों को अत्यन्त सजीवता के साथ पद्मावत में अंकित किया है। कवि अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हुआ है। नागमती का विरह वर्णन सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। नागमती के करुणा-क्रन्दन में प्रकृति भी सहानुभूति प्रकट करती है। पिय वियोग में नागमती दुःखित होकर करती है :—

कमल जो विगसा मानसर, बिनु जल गयेहु सुखाय।
अबहिं वेलि पुनि पलुहै, जो पिय सींचहिं आय॥

प्रेमी अपने प्रिय के सुख के लिये अत्यन्त उत्सुक होता है। वन को जाते हुए सीताराम के चरणों की कोमलता को लक्ष्य करके ही गोस्वामी जी ने लिखा था।

जौ विधि जानि इनहिं बन दीन्हा।
कस न सुमनमय मारग कीन्हा॥

लेकिन नागमती तो अपने शरीर को भस्मसात करके उसकी राख को उस मार्ग में बिछा देना चाहती हैं जिस मार्ग से उसका पति जा रहा है ; कितनी कारुण्यपूर्ण कल्पना है :—

यह तनु जारौं छारि कै, कहौं कि पवन उड़ाव ।
मकु वहि मारग गिरि परै, कन्त धरहि जेहि पाँव ।।

जायसी ने पद्मावत में घटनाओं के पूर्वापर सम्बन्ध की ओर पूर्ण ध्यान रखा है यथा समुद्र से मिले हुए पाँच रत्नों की भी सार्थकता अलाउद्दीन और रत्नसेन के सन्धि प्रस्ताव वर्णन में दिखाई है।

पद्मावत के उत्तरार्ध में वीर, भयानक एवं शान्तरस का परिपाक हुआ है, किन्तु जिस शृंगार—वियोग तथा संयोग-का हृदयाकर्षक प्रवाह काव्य के प्रारम्भ से ही हुआ है वह पर्यवसान तक हमें दृष्टिगोचर होता है। वियोग तथा संयोग शृङ्गार में प्रेमी की जो दशा हो सकती है उन सब की ओर कवि का ध्यान गया है। विरह वर्णन में बारहमासा की योजना करके कवि ने दुःख की व्यापकता का अच्छा निर्वाह किया है। इस विरह वर्णन में स्वाभाविकता, सजीवता एवं सरलता है। नागमती अपने उस प्रियतम के वियोग में रुदन करती है जो एक अत्यन्त दूरस्थ देश को चला गया है; गोपियों की भाँति किसी झाड़ी में छिपे हुए अथवा २ मील दूर चले गये कृष्ण के लिये किये गये विलाप के समान उसका विलाप नहीं है। जायसी का भावुक हृदय था। प्रेम की पीर की कसक उसमें थी और कवि की ये ही भावनाएँ अत्यन्त व्यापकता के साथ हम उसके काव्य में भी प्रतिबिम्बित पाते हैं। प्रकांड पंडित तथा बहुज्ञ होने के कारण यदि केशवदास चाहते तो भावुकता-पूर्ण ऐसे मनोरम काव्य की रचना कर सकते थे, जो हिन्दी साहित्य में अद्वितीय होता। लेकिन राजसीय वातावरण, पांडित्य-प्रदर्शन तथा चमत्कृत शैली ने केशव के हृदय पर अधिकार कर लिया था, इसलिये रसात्मक स्थल रामचन्द्रिका में

है ही नहीं। सीता तथा राम का वियोग भी गहराई के साथ अंकित नहीं किया है वहाँ पर भी कवि ने अलंकृत शैली का ही प्रयोग किया है। जायसी की विरह-वेदना पाठक के हृदय को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। सूर एवं जायसी का विरह वर्णन की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में अत्यन्त महत्व-पूर्ण स्थान है।

अपने-अपने काव्य-ग्रंथों में केशव तथा जायसी दोनों ने समुद्र का वर्णन किया है लेकिन प्रकृति वर्णन की दृष्टि से जायसी ने समुद्र का चित्र सचाई के साथ अंकित किया है :—

उठै लहरि जनु ठाढ़ पहारा।
चढ़ै सरग औ परे पतारा॥
डोलहिं बोहित लहरैं खाहीं।
खिन तर होहिं, खिनहिं उपराहीं॥
उठै लहरि परबत कै नाईं।
फिरि आवैं जोजन सौं ताईं॥
धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा।
सकल समुद्र जानहु या ठाढ़ा॥

केशवदास ने काव्य शास्त्र के प्रतिपादित सभी नियमों का पालन तो किया है, लेकिन चमत्कारपूर्ण शैली के कारण केशव उपमा और सन्देह आदि अलंकारों की योजना में पड़ जाते हैं जिससे प्रस्तुत वर्णन ठीक-ठीक नहीं होता। यह समुद्र केशव को कभी तो नागरिक के रूप में दिखलाई देता है और कभी अपने ब्रह्म ज्ञान का परिचय देता है।

(१)

भूति विभूति पियूपहु की विप ईस सरीर कि पाय वियो है।
है किधौं केसव कश्यप को घर देव अदेवन कों मन मोहै॥

संत हियौ कि बसैं हरि संतत सोभा अनन्त कहै कवि कोहै ।
चंदन नीर तरंग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै ॥

(२)

सेष धरे धरनी, धरनी धरे केसव, जीव रचे विधि जेते ।
चौदह लोक समेत तिन्हैं हरि के प्रतिरोमहि में चित चेते ॥
सोवत तेउ सुने इनहीं मैं अनादि अनन्त अगाध हैं ऐते ।
अद्भुत सागर की गति देखहु सागर ही यह सागर केते ॥

कवि करना तो चाहता है समुद्र वर्णन; लेकिन समुद्र के रूप का और उसमें उठती हुई पर्वताकार हिलोरें का कहीं संकेत भी नहीं है। केशव में यदि कलापक्ष की प्रधानता है तो जायसी में भावपक्ष की। केशव संस्कृतज्ञ परिवार में उत्पन्न होकर शास्त्रों के प्रकांड विद्वान थे लेकिन जायसी —

'हौं पंडितन केर पछलगा ।
कछु कहि चला तवल देइ डगा ॥'

जायसी की कविता का किसी समय बहुत प्रचार था। फकीर नागमती के बारहमासे को गाकर भिक्षा माँगते थे। सरल हृदय कवि जायसी की कविता का समादर होना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि काव्य में सरलता, स्वाभाविकता तथा एक ऐसी भावना होनी चाहिये जिसका सामञ्जस्य मनुष्यमात्र के हृदय से हो। काव्य-नियमों से अनभिज्ञ, भाषा पर अधिकार न रखने वाले तथा भौगोलिक ज्ञान की भी परिमिति वाले जायसी ने अपने प्रेम-पीर-जन्य दुःख को काव्य-पटल पर इतनी सजीवता के साथ अंकित किया कि उसे सुनकर—

आधी रात विहंगम बोला ।
तू फिरि फिरि दाहे सब पाँखी ।
केहि दुख रैन न लावसि आँखी ॥

नागमती का विरह दुःख सर्वभूतात्मक है। उसके दुःख को सुनकर प्राकृतिक पदार्थ भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके—

जेहि पंखी के नियर होइ, कहै विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥

प्रबन्ध कवि की दृष्टि से जायसी को अधिक सफलता प्राप्त हुई है; लेकिन अपनी विशिष्ट शैली के कारण केशवदास का भी हिन्दी साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जायसी और केशव हिन्दी साहित्याकाश के उन उज्ज्वल नक्षत्रों में से हैं जिनका यश-प्रकाश अमन्दगति से सर्वदा इस पृथ्वी पर छाया रहेगा। दोनों ही प्रबन्धकार होने के नाते महाकवि माने जाते हैं।

❀ इति शम् ❀